श्री हिन्दी जैनागम प्रकाशन की योजना।

ज्ञान-दान ! महान् पुण्य कार्य्य का सुअवसर !! यश-नाम !!!

श्री जैनसंघको अतीव आनन्द के साथ विनति की जाती है कि महोपाध्यायजी श्री सुमतिसागरजी महाराजके सद्उपदेश से कोटा-छबड़ा आदि के संघने आगमों को हिन्दी भावार्थ सहित प्रकाशित करवाने की योजना की है। इसलिये यहां 'जैन छापाखाना' खोला है. उसमें अल्प खर्च व अल्प समयमें ही अच्छा कार्य होरहा है. दशवै कालिक सूत्र, कल्पसूत्र, पर्वकथा संग्रह, लघुदीक्षाविधि, साधु आराधना व अंतःक्रिया विधि आदि छप चुके हैं. कल्पसूत्रकी सरल व संक्षेप नई टीका, श्रीपालचरित्र श्लोकबद्ध और हिंदी भाषा में छप रहे हैं. उत्तराध्ययन, उववाई, विपाक, उपासकदशा आदि छपने वाले हैं. प्रत्येक सूत्रकी ५००-५०० प्रतियां छपेंगी. हिन्दी आगमों के लेने की इच्छा वाले अपने २ नाम ग्राहक श्रेणिमें पहिले से ही लिखवा लें. पीछे से दश-वीस गुणा अधिक मूल्य देने परभी नहीं मिल सकेंगे. जिस २ शास्त्र की छपाई में द्रव्यकी सम्पूर्ण सहायता मिलेगी वे अमूल्य भेट दिये जावेंगे और अन्य अल्प मूल्यसे दिये जावेंगे. इस छापाखाने की आमदनी ज्ञान-प्रचार, जीव-दया आदि शुभ कार्यों में खर्च की जावेगी. आप लोग छपाईका अपना २ कार्य यहांपर अवश्य भेजें. आपका काम अच्छा, सुन्दर और सस्ता होगा तथा बचतमें परोपकारका पुण्य होगा. यह कार्यालय ज्ञान-प्रचार और परोपकार की दृष्टिसे ही खोला गया है, इससे हर प्रकारसे इस काममें मदद करना आपका कर्त्तव्य है।

हिन्दी जैनागम प्रकाशक सुमति कार्य्यालय,
श्री जैन छापाखाना, कोटा. [राजपूताना]

॥ जरूरी सूचना ॥

जैन श्वेतांबर संघमें कल्पसूत्रकी बडी महिमा है, हरवर्ष पर्युषणा पर्वमें गांव २ में यह सूत्र बांचा व सुना जाता है. साधु-साध्वियों के पासमें पूजा-प्रभावनादि महोत्सव सहित लोग बडे उत्साहसे सुनते हैं. जिस जगह साधु-साध्वियों के चौमासे नहीं होते हैं, वहांपर यतियों के पास सुनते हैं अथवा कोई समझदार श्रावक स्वयं गुजराती भाषांतर बांचकर सुनाताहै, परंतु इसका हिंदी भाषान्तर न होने से हिन्दी भाषा भाषियों के समझमें नहीं आ सकता. साधु-साध्वी व श्रावक आदि बहुत से लोग हिन्दी-भाषाके कल्पसूत्रकी बडी चाहना कर रहेथे, इस-लिये गुरुमहाराजकी आज्ञानुसार यह हिन्दी भाषामें तैयार कियाहै इससे सबके समझने में सुगमता होगी।

साधु साध्वी तो हरएक शास्त्रकी विनय भक्ति रखते हैं, परंतु कई यतियों में और श्रावकों में विनय विवेक का उपयोग कम रहताहै, उन्हीं महाशयों से हमारी सूचनाहै कि इस महा-आगम की किसी तरह की कभी भी आशातना न होने पावे, इसका खास ध्यान रखना चाहिये और इसको वांचते समय एकासनादि तप करके

सामायिक में बैठकर विनय पूर्वक ऊंचे स्थानपर रखकर उपयोग पूर्वक मुंहपत्तिसे मुंह की यत्ना करके बांचने से बांचने वालोंको और सुनने वालों को विशेष लाभ की प्राप्ति होगी।

इसमें लेखक-दोष, दृष्टि-दोष, या प्रेस-दोष रहे हों अथवा कोई विषय न्यूनाधिक देखने में आवे उसकी सूचना लिखकर भेजने की सज्जन गण अवश्य कृपा करें। दूसरी आवृत्ति में उसका सुधारा किया जावेगा।

विक्रम सम्वत् १९९०, आषाढ शुक्ल ३, चन्द्रवार.

पं० मुनि–मणिसागर. जैन उपाश्रय, कोटा.

॥ जाहिर खबर ॥

॥ ॐ श्री स्थंभनपार्श्वजिनाय नमः ॥

चतुर्दश पूर्वधर श्रुतकेवली श्रीभद्रबाहुस्वामीजी विरचित

श्री कल्पसूत्र (हिंदी भावार्थ).

श्रीमान्—लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय विरचित कल्पद्रुमकालिकादि टीकाओंका हिंदी भाषान्तर ।

(प्रथम नवकार आदि मंगल वाक्य सर्व संघ खडे २ हाथ जोड कर सुने)

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं, एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥ वंदामि भद्दबाहुं, पाइणं चरम सयल सुयनाणिं ॥ सुत्तस्स कारगमिसिं, दसाणु कप्पे य ववहारे॥ २ ॥ अज्ञानतिमिरांधानां, ज्ञानांजनशलाकया ॥ नेत्रमुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अर्हंत, भगवंत, अशरण शरण, भवभय हरण, शिवसुख करण, तरणतारण प्रवहणसमान, उत्पन्न दिव्य विमल केवलज्ञान भास्कर, लोकालोक प्रकाशक, सर्वज्ञ, सर्वऐश्वर्ययुक्त, देवाधिदेव, त्रिजगत्पूज्य, पंचमगतिगामी, चरम तीर्थंकर, शासननायक श्रीवर्द्धमानस्वामीके शासनमें अतुल्य मंगलमाला प्रकाश करनेवाले पर्वाधिराज श्रीपर्युषणापर्व आनेसे गांव २ में, नगर २ में, सर्व संघ में श्रीकल्पसूत्र वांचने में आताहै; इसलिये यहां पर भी संघकी आज्ञासे मंगलके लिये बांचते हैं।

(इत्यादि मंगल वाक्य सुनकर नीचे बैठकर चैत्यवंदन करने जैसे आसनसे एकाग्र चित्तसे पूरा व्याख्यान सुने)

श्रीवर्धमानस्य जिनेश्वरस्य, जयन्तु सद्वाक्यसुधाप्रवाहाः ।
येषां श्रुतिस्पर्शनजप्रसक्ते—र्भव्या भवेयु—र्विमलात्मभासः ॥ १ ॥

शास्त्रके आदिमें टीकाकार महाराज निर्विघ्नता पूर्वक शास्त्र संपूर्ण होनेके लिये तथा बांचनेवाले और सुननेवाले सर्व संघके मंगलके लिये अपने इष्टदेवकी स्तुति करतेहैं। जैसे गंगा नदीका प्रवाह शरीरकी बाह्य मालिनताको दूरकरताहै, वैसेही भगवान्की वाणीका प्रवाह भव्यजीवोंकी अंतर आत्माको पवित्र करने वाला है, इसलिये

टीकाकार महाराज कहतेहैं कि सामान्य केवलियोंमें ईश्वरतुल्य शासननायक श्रीवर्धमान जिनेश्वर भगवान्के श्रेष्ठवचनरूपी अमृतके प्रवाहका जगत् में हमेशा जय हो। जिनवचनामृतरूपी प्रवाहोंका भव्यजीवोंके कानोंमें प्रवेशहोने मात्रसे वे भव्यजीव निर्मल आत्मावाले होते हैं, अर्थात्—भगवान्की वाणीको श्रद्धापूर्वक सुननेवाले अपने अनादि कर्ममलको दूर करके पवित्र आत्मावाले होकर मोक्षका अनंत सुख भोगते हैं। ऐसी परम उपकारिणी भगवान् की वाणी जगत् में सदा जयवंती रहो। यह भगवान् की वाणी की स्तुति होनेसे सर्व तीर्थंकर महाराजोंकी और द्वादशांगीकी अधिष्ठाता सरस्वतीकीभी स्तुति समझलेनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीगौतमो गणधरः प्रकटप्रभावः, सल्लब्धि-सिद्धि-निधिरंचितवाक् प्रबन्धः ॥
विघ्नान्धकारहरणे तरणिप्रकाशः, साहाय्यकृद् भवतु मे जिनवीरशिष्यः ॥ २ ॥

अब गौतमस्वामीकी स्तुति करतेहैं। श्री गौतमस्वामीके पासमें जिस २ ने दीक्षाली; वे सब केवलज्ञान पाकर मोक्षगये और अभीभी प्रातः कालमें स्मरण करनेवालोंको हमेशा आनंद रहताहै इत्यादि प्रसिद्ध प्रभाव वालेहैं और अच्छी २ लब्धिओंके तथा सिद्धिओंके भंडारहैं। तीनजगत्में पूजित द्वादशांगी चौदहपूर्वादि शास्त्रोंकी रचना करने

वाले और विघ्नरूप अंधकारको दूर करनेमें सूर्य समान प्रकाश करने वाले ऐसे श्रीमहावीरस्वामीके शिष्य प्रथम गणधर श्रीगौतमस्वामी महाराज मेरेको कल्पसूत्रकी टीका बनाने में सहायता करने वाले हों। प्रत्येक कार्य में पहिले गौतमस्वामीका नाम स्मरण करनेसे वह कार्य जल्दी पूर्ण सिद्ध होताहै; इसलिये ग्रंथकारने अपना इष्ट कार्य निर्विघ्नतासे जल्दी पूरा होनेके लिये गुरु गौतमस्वामीका स्मरण कियाहै, यहां पर गौतमस्वामीका स्मरण करनेके प्रसंग से सर्व पूर्वाचार्योंका और सर्व गुरुमहाराजोंका स्मरण करनेका समझ लेना चाहिये ॥ २ ॥

कल्पद्रुकल्पसूत्रस्य, सदर्थफलहेतवे ॥ ऋतुराजेव सद्योग्या, कलिकेयं प्रकाश्यते ॥ ३ ॥

अब यहांपर कल्पसूत्र को कल्पवृक्ष की उपमा देते हैं। जैसे– कल्पवृक्ष सर्व लोगोंके मनोरथ पूर्णकरता है, वैसेही यह लोकोत्तर कल्पवृक्षरूपी कल्पसूत्रभी भव्यजीवोंको सर्वप्रकारके मनोवांच्छित इष्टफल देनेवालाहै, इस लिये हे भव्यजीवों ! आप लोग निंदा–ईर्षा–विकथा–प्रमाद--निद्रादि कर्मबन्धन के हेतुओंको छोडकर भक्ति पूर्वक सावधान होकर श्रीकल्पसूत्रको संपूर्ण सुनो। टीकाकार कहतेहैं कि–जिस प्रकार ऋतुराज वसन्तऋतु के आनेसे सबको आनंद दायक मनोहर वृक्षोंमें अच्छे २ फल देनेवाली सुंदर कलिकाएँ निकलती हैं। उसी प्रकार

उत्तम श्रेष्ठ मोक्षरूपी परमानंदके अखंड फलकी प्राप्तिके लिये कल्पवृक्षके सदृश इस कल्पसूत्रकी कलिकारूप " कल्पद्रुमकलिका " नामा टीका मैं श्री गुरु महाराजकी कृपा से करता हूं ॥ ३ ॥ जैसे आम्रकी मांजरके प्रभाव से चैत्र महीनेमें कोयल मधुर बोलतीहै तथा पवनके जोरसे धूल सूर्यमंडलको ढकदेती है और मणिके प्रभावसे मंडूक बडेसर्पके मुखका चुंबन करताहै, याने—सर्पके मस्तकपर जा बैठताहै। वैसेही मैं भी अल्प बुद्धिवाला होकर बहुतबडे गंभीर आशयवाले श्रीकल्पसूत्रके अर्थको प्रकट करताहूं, यह मेरेको ज्ञान देनेवाले श्रीगुरुमहाराज का ही प्रभाव समझना चाहिये। अब यहां कल्पसूत्रके तीन अधिकार बतलाते हैं:—

पुरिम चरिमाण कप्पो, मंगलं वद्धमाण तत्थम्मि। तो परिकहिआ जिण—गणहराइ थेरावलिचरित्तं ॥ ४ ॥

भावार्थः—प्रथम श्रीऋषभदेवस्वामी तथा चौवीशवें श्रीमहावीरस्वामी इनदोनों तीर्थंकरमहाराजोंके साधुओंका आचारहै कि जहां ठहरें वहां सर्व संघके मंगल— कल्याणकी चाहना करें, वर्षा कालमें वर्षा हो या न हो तो भी पर्युषणाकरें, चारमहीने एकजगह ठहरें। और श्री अजितनाथजीसे लेकर श्रीपार्श्वनाथस्वामी तक बाईस तीर्थंकर महाराजोंके साधुओंका यह आचारहै कि वे भी सर्वसंघके मंगल—कल्याणकी चाहना करें, वर्षाकालमें यदि वर्षा

न हो तो वर्षा के अभावमें विहारकर दूसरे गांव चले जावें और पर्युषणाभी करें या न भी करें, उन्होंके कोई नियम नहीं है परन्तु आदीश्वर और महावीर प्रभुके साधु तो वर्षा चौमासेमें एकजगह ठहरकर पर्युषणापर्व अवश्य करें और मंगलके लिये तीर्थंकरोंके चरित्रबांचे, सर्व तीर्थंकरोंके मोक्ष गमनके अंतरकाल कहें, यह पहिला अधिकार; तथा गणधरोंके स्थविर-पूर्वाचार्योंके चारित्रबांचे यह दूसरा अधिकार और 'चरित्त' शब्दसे साधु सामाचारी बांचें यहतीसरा अधिकारहै। अब चौबीसतीर्थंकर महाराजोंके साधुओंके दश प्रकारके आचारका स्वरूप बतलातेहैं

आचेलुक्कु—द्देसिय, सिज्जायर—रायपिंड—कियकम्मे ॥ वय—जिट्ठ पडिक्कमणे, मासं पज्जोसवणकप्पो ॥ ५ ॥

भावार्थः—'अचेलक' श्रीआदीश्वर और महावीर स्वामीके साधु अल्पमूल्यवाले प्रमाणसहित जीर्णप्रायः श्वेतवस्त्र धारणकरें * जीर्ण असार वस्त्र नहीं होनेके ही बराबरहै, इसलिये जीर्णवस्त्र वालोंका अचेलक (वस्त्ररहित)

---

*—दश प्रकार के यति धर्म का पालन करने वाले यति को ही साधु कहते हैं परंतु जबसे श्वेतवस्त्र वाले बहुतसे यतियों के आचरण बिगडनेलगे, द्वेषीलोग यतियोंकी निंदाके बहाने अनादिसिद्ध जिनराजकी मूर्त्तिकी–तीर्थोंकी पूजा-मान्यता उठानेलगे, धर्मकी हानि होने लगी. तब भगवान्‌की मूर्त्तिकी–तीर्थोंकी सेवा–भक्तिकी रक्षा करनेके लिये तथा लोगोंकी धर्मश्रद्धाकी वृद्धिकेलिये और बिगडे हुए यतियों सेभिन्नता दिखलानेकेलिये; जो परंपरानुसार शुद्धसंयमी यतिथे उन्होंनेही संवेगीनाम रखकर पीली चद्दर करनेकी रीति चलायी है, जिसतरह

कहते हैं। और बाईस तीर्थंकरोंके साधु ममत्वरहित होनेसे बहुत मूल्यवाले प्रमाण रहित विविध रंगवाले या नयेश्वेत वस्त्र भी धारण कर सकते हैं॥ १ ॥ 'उद्देशिक' श्री आदीश्वर भगवन् और श्री महावीर स्वामी के शासनमें किसी साधुके लिये बनाये हुए आहार-वस्त्र-उपाश्रय वगैरह सर्व साधुओं को उपयोग में लेना नहीं कल्पे * और बाईस तीर्थंकरोंके शासनमें जिस साधुके लिये आहारादि बनाये हों उनको लेना नहीं कल्पे परंतु दूसरे साधु निर्दोष समझें तो ले सकतेहैं ॥२॥ 'शय्यातर' उपाश्रय देनेवाले मालिकके घरका आहारादि चौवीसही तीर्थंकरोंके सर्व साधुओं को लेना नहीं कल्पे × परंतु पाहिले दिन इन्द्रका, दूसरे दिन देशके मालिकका,

---

शास्त्रीय बातें मान्यहैं। उसीतरह पर्युषणामें कल्पसूत्रका संघ समक्ष वांचन तथा चौथकी संवत्सरी करना इत्यादि द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावानुसार विशेष लाभकी बातेंभी मान्यहैं; जिससे संवेगियोंकी प्रवृत्तिभी लाभकी हेतुहोनेसे सब देशों में, सब जैनों में मान्य हुई है।

*—धार्मिक मकान बनानेमें कई श्रावक; साधुके ठहरनेके काममें आवेगा, ऐसे विचारसे बनातेहैं उसमें साधु ठहरते हैं जिससे साधु श्रावक दोनों दोषके भागीहोतेहैं, धार्मिक मकान आदि बनाते समय साधुकी भावना कभी नहीं करनी चाहिये, गृहस्थलोग अपने सामायिक, प्रतिक्रमणादि धर्मकार्य करनेकेलिये बनावें उसमें साधु साध्वी ठहरें तो उनको दोष नहीं, परन्तु इस कालमें दोलेबंधी और गच्छपक्ष से खास अपने २ गुरुके लिये बनवानेवाले और उसमें ठहरनेवाले दोषके भागीहोते हैं।

× श्री जिन प्रतिमा को नहीं मानने वाले साधु साध्वी मकानमें ठहरनेकी आज्ञा देनेवाले नौकर या पडोसी आदि अन्यका घर

तीसरे दिन गांवके मालिकका घर शय्यातर करसकतेहैं, ऐसा गीतार्थ पूर्वाचार्य कहतेहैं ॥३॥ 'राजपिंड' छत्र-चामरादि राज्य ऋद्धि सहित राजाके घरका आहार आदीश्वर-महावीरप्रभुके साधुओंका लेना न कल्पे। क्योंकि राजाओंके अच्छे २ आहारसे प्रमादादि दोष वढतेहैं, स्वाध्याय-ध्यानादि में हानि पहुंचती है। साधारण घरोंमें आहारके लिये जानेमें अप्रीति होती है और राजऋद्धिके मोहसे नियाणादि दोष होनेके हेतु होते हैं इत्यादि कारणोंसे आदीश्वर-वीरप्रभुके साधुओंको राजपिंड लेना मना कियाहै और वाईस तीर्थंकरोंके साधु निर्ममत्वी अवसरके जाननेवाले होनेसे राज्यपिंड लेतेहैं ॥ ४ ॥ 'कृतिकर्म' चोवीसही तीर्थंकरोंके सर्वसाधुओंमें छोटा साधु वड़ेसाधुको वंदनाकरे×॥ ५ ॥ 'व्रत' आदीश्वर-वीरप्रभुके साधुओंके पांचमहाव्रत; छठा रात्रिभोजन विरमण यह छ व्रत होंवे और वाईस तीर्थंकरोंके साधुओं के चारमहाव्रत होतेहैं, परिग्रह ममत्वसे स्त्रीका संगहोता है,

---

शय्यातर करके मकानके मालिकके घरका आहारादि लेतेहैं,वडेआदमीके अनेक नौकर होतेहैं, एक नौकरका घर शय्यातर मानकरके आहारादि लेनेसे दृष्टि रागसे सदोष आहार, प्रमाद वृद्धि और मकान मिलनेकी दुर्लभता आदि अनेक दोष आतेहैं, यह प्रवृत्ति सुधारने योग्य है।

×-जैनशासनमें धर्मका मूल विनयहै इसलिये साधु साध्वी श्रावक और श्राविकाओंको उचितहै कि व्यवहारमें शुद्ध संयमी साधुको देखकर गच्छ आदिका भेद छोडकर वंदना अवश्य करें।

इसलिये परिग्रह त्याग करनेवालोंको स्त्रीका त्याग हो ही चुका तथा रात्रिभोजन जीवहिंसाका हेतुहोनेसे पहले महाव्रतमें आजाता है ऐसे समझदार होने से उन्हों के चार महाव्रत होते हैं ॥ ६ ॥ 'ज्येष्ठ' पुरुष प्रधान धर्म होनेसे सौ वर्षकी दीक्षा ली हुई साध्वी अभी दीक्षा लिये हुए साधुको वंदना करे ❀। आदीश्वर—महावीर स्वामीके साधुओंकी दीक्षा दो प्रकारकी होतीहैं, एक छोटीदीक्षा, दूसरी वडीदीक्षा, छोटे तथा वडेकी गिनती वडी दीक्षासे होती है और वाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके एकही प्रकारकी दीक्षाहोतीहै, इसलिये दीक्षाके समय

❀:—कई लोग पुरुपप्रधान धर्म समझकर साध्वियों को श्रावक-श्राविकाओं की सभामें व्याख्यान वांचनेकी मनाई करते हैं, यह अनुचित है। श्री हरिभद्र सूरिजी कृत "संबोध प्रकरण" में गुरु और कुगुरु के अधिकार में छपे हुए पृष्ठ १५ वें में "केवलथीणं पुरओ, वक्खाणं पुरिस अग्गाओ अज्जा ॥ कुव्वंति जत्थ मेरा, नड पेडक संनिहा जाण ॥ ७२ ॥ " इस गाथा में अकेली स्त्रियों की सभा में साधु को और अकेले पुरुषों की सभा में साध्वी को व्याख्यान वांचने की मनाई की है. इससे जिस तरह पुरुष-स्त्री दोनों की सभा में साधु व्याख्यान वांच सकता है। उसी तरह श्रावक-श्राविकाओं की सभा में साध्वी भी व्याख्यान वांच सकती है, उसमें कोई दोष नहीं है, जिस पर भी "केवलथीणं पुरओ वक्खाणं" इत्यादि सम्पूर्ण गाथाको छोडकर "वक्खाणं पुरिस अग्गाओ अज्जा" ऐसा अधूरा वाक्य लिख कर आनंद सागरजी (सागरानंद सूरिजी) ने "सुबोधिका" की नयी आवृत्ति में टिप्पणी लगाकर साध्वी को व्याख्यान वांचने का सर्वथा निषेध किया सो उचित नहीं है और अभी साधु बहुत कम है, साध्वियों का समुदाय अधिक है बहुतसे गांवोंमें लोगों को साधुओं के दर्शन और उपदेश का लाभ नहीं मिल सकता, वहां पर साध्वी के व्याख्यान वांचने से वडा लाभ होता है। मारवाड, माल-

से ही छोटे बडेकी गिनती होती है ॥७॥ 'प्रतिक्रमण' आदीश्वर-महावीरप्रभुके साधु दोष लगे या न लगे तो भी हमेशा देवसी-राई प्रतिक्रमण करें, तथा पाक्षिकादिभी करें, और बाईस तीर्थंकरोंके साधु अप्रमादी होनेसे जब दोष लगे तब देवसी या राई प्रतिक्रमण करें नहींतो हमेशा स्वाध्याय ध्यानादि करते रहें ॥ ८ ॥ 'मासकल्प' आदीश्वर-महावीर प्रभुके साधु वर्षाचौमासे सिवाय आठ महीने * मासकल्प करतेहुए विचरें, एकमहीना एक उपाश्रयमें ठहरकर दूसरी जगहजावें, मार्गसिरसे आषाढतक एकजगह न ठहरें, कभी रोगादि कारणोंसे ठहरना पडे तो स्थान बदलते रहें, एकजगह अधिक रहनेसे दृष्टिरागका प्रतिबंध, लघुता, प्रमाद, परिग्रहवृद्धि वगैरह अनेक दोष आतेहैं। और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके मास कल्पका कोई नियम नहीं, यदि विशेष

वा आदि देशों में साध्वी के व्याख्यान के प्रभाव से बहुत लोगोंने मिथ्यात्व और कुलिंग को छोड कर शुद्ध सम्यक्त्व अंगीकार किया है तथा जबतक साध्वी व्याख्यान वांचेगी तबतक हजारों श्रावक-श्राविकाएँ १७-१८ पाप स्थानकों का सेवनकरना छोडकर भगवान् की वाणी सुनने का लाभ लेवेंगे, व्रत पच्चक्खांण करेंगे, प्रतिबोध पावेंगे, इस लिये देश काल और लाभालाभ का विचार किये विना और स्थानक वासी साध्वियों के उपदेश का कैसा प्रभाव फैल रहा है उसको समझे विना साध्वियों को श्रावक-श्राविकाओं की सभामें व्याख्यान वांचने की मनाई करना यह धर्म कार्योंमें अंतराय भूत एवं समाज को हानिकारक होने से सर्वथा अनुचित है।

* अधिक महीना नहीं होवे तब आठ मास कल्पका नियमहै, परंतु पौष-चैत्रादि अधिक होनेसे नव मास कल्पका विहार होताहै।

लाभ देखें तो अधिक भी ठहरें नहींतो मासकल्पके अन्दरही विहार करें ॥९ ॥ 'पर्युषणा कल्प' वर्षा कालमें एकजगह ठहरना तथा संवच्छरी पर्व करना उसको पर्युषणा कहते हैं, सो श्री आदीश्वर-महावीर स्वामीके साधु वर्षा हो या न हो तो भी योग्य क्षेत्र मिलनेसे चौमासा ठहरें × कदाचित् योग्यक्षेत्र न मिले तो भी संवच्छरी करनेपर भाद्रपदशुदी पंचमीसे सत्तर (७०) दिन ❀ कार्तिक चौमासे तक एकजगह अवश्यठहरें. जि-

×वर्षा चौमासे में जीवों की उत्पत्ति बहुत होने से जीव दया के लिये साधुओं को विहार करने की मनाई है, धर्मी श्रावक भी चौमासे में निज गांव को छोड कर दूसरे गांव नहीं जाते तथा उत्तम हिन्दुओं में और जैनों में भी तीर्थ यात्रा, प्रतिष्ठा, महोत्सव आदि विशेष कार्य्य चौमासे में नहीं करते हैं, जिसपर भी बडे दयालु नाम धारण करने वाले साधु लोग अपनी मान्यता बढाने के लिये, तपस्या के पूर के नाम से अथवा वन्दना के नाम से अपने भक्तों के पास प्रत्येक गांव में पत्रिका पहुंचा कर हजारों लोगों को वर्षा कालमें बुलवाते हैं जिस से आने वाले लोग रास्ता में कीडे, मेंढक, हरीघास, कच्चा जल, लीलन फूलण आदि अनन्त जीवों की हिंसा करते हुए आते हैं। बैल घोडे आदि को वर्षा के कीचड में महान् कष्ट पहुंचता है तथा भट्टी खानेमें और जीवाकुल बाजार की भोजन सामग्री आदि में हिंसाका पार नहीं है इसमें लाखों रुपयों का व्यर्थ खर्च होता है यह रिवाज सर्वथा शास्त्र विरुद्ध होनेसे सुधारने योग्यहै।

❀ जैन पंचांगकी रीतिसे अधिक महिनेके अभावसे जब ५० दिने पर्युषणा करतेथे, तब कार्तिकतक ७० दिन रहतेथे, इसलिये शास्त्रोंमें ७० दिन रहनेका लेख देखा जाताहै, परन्तु अभी उसके अभाव में लौकिक पंचांग मुजब श्रावण भाद्रपद या आसोज बढनेसे ५० दिने पर्युषणा करने में आतेहैं, उससे पर्युषणाके बादमें कार्तिक तक १०० दिन होतेहैं। यह बात प्रत्यक्ष अनुभवसिद्ध, जगत व्यवहारके अनुसार

समेंभी रोग–दुष्काल–राजप्रकोपादि कारणोंसे ७० दिनमेंभी विहारकर सकते हैं और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओं के चौमासेका तथा पर्युषणापर्व करनेका कोई नियम नहीं, वर्षाहोतो ठहरें नहींतो विहारकरें ॥ १० ॥

यह दशकल्प आदीश्वर तथा वीरप्रभुके सर्व साधुओंके होते हैं और अचेलक, उद्देशिक, राजपिंड, प्रतिक्रमण, मासकल्प व पर्युषणा यह छ कल्प बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके नहीं होते इसलिये अनियत कल्प कहे जाते हैं तथा शय्यातरपिंड, चारमहाव्रत, पुरुषज्येष्ठधर्म, कृतिकर्म यह चारकल्प बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके भी होतेहैं इसलिये नियतकल्प कहलाते हैं और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंके जैसा आचार होता है, वैसाही महाविदेहक्षेत्र में सर्व तीर्थंकरोंके सब साधुओंका आचार जानलेना चाहिये।

अब एकहीप्रकारके मोक्षमार्ग साधन करनेवाले सबसाधुओंके आचारमें भेदहोनेका कारण बतलातेहैं:—

पुरिमाणदुव्विसोज्झो, चरिमाण दुरणुपालओ कप्पो ॥ मज्झिमगाण जिणाणं, सुविसोज्झो सुहणुपालो य ॥६॥

सत्य होने से उसमें कोई दोष नहींहैं, इसलिये श्रावणादि अधिक महिने होनेपरभी पर्युषणाके बाद ७० दिन ठहरनेका आग्रह करना तथा १०० दिन ठहनेमें दोष बतलाना सर्वथा अनुचित हैं। इसका विशेष खुलासा "बृहत्पर्युषणा निर्णय" नामा ग्रंथमें देख लेना।

प्रथम तीर्थंकरके शासनमें साधुओंको साधुधर्म समझना कठिनथा परन्तु समझनेसे वे उसे अच्छी तरह से पालन करते थे। महावीरस्वामीके शासनमें साधुओंको साधुधर्म समझना सहज है परंतु पालन करना कठिनहै और बाईस तीर्थंकरोंके शासनमें साधु साध्वियोंको साधुधर्म समझना व पालन करना दोनोंही सुलभथे.

उज्जुजडा पढमा खलु; नडाइनायाओ हुंति नायव्वा ॥ वक्कजडा पुण चरिमा, उज्जुपण्णा मज्झिमा भणिआ ॥ ७ ॥

प्रथम तीर्थंकरके शासनमें—साधु ऋजु—जड (सरल और मूर्ख) होते थे, उनको जितना समझाते थे उतनाही समझते थे परन्तु अधिक नहीं समझतेथे तथा महावीरस्वामीके शासनमें साधु वक्र-जड (उद्धत और मूर्ख) होतेहैं वे समझानेसे समझते नहीं परन्तु उल्टी कुतर्क करने लगते हैं और बाईस तीर्थंकरोंके शासनमें साधु ऋजु-प्राज्ञ (सरल व बुद्धिमान्) होते थे उनको थोडासा समझानेसे वे बहुत समझलेते थे। इस लिये २४ तीर्थंकरोंके साधुओंके आचारमें भिन्नता बतलाई है ॥ ७ ॥ अब उनके यहांपर दृष्टांत कहते हैं:—

एक नगरमें साधु लोग गौचरी गयेथे, बाजारमें पुरुषोंका नाटक देखने लगे, बहुत देरीसे आहार लेकर उपाश्रममें आये। गुरुने पूछा आज तुमको इतनी देर क्यों लगी? साधुओंने कहा आज नाटक देखने लगे

थे, जब गुरुने कहा कि साधुओंको नाटक देखना योग्य नहीं, तब साधुओंने गुरुका वचन मान्यकर मिच्छामि-दुक्कडं दिया। फिर भी एक रोज वे ही साधु गौचरी गयेथे रास्तेमें स्त्रियोंका नाटक देखने लगे, देरीसे गुरुके पासमें आये, तब गुरुने पूछा आज भी तुमको बहुत देरी लगी? साधुओंने कहा महाराज आजतो हम स्त्रियों का नाटक देखनेको खड़ेथे। गुरुबोले हे मुनियों! हमने तुमको पाहिले भी नाटक देखनेका मना कियाथा फिर आज क्यों देखा, तब साधुओंने कहा आपने उस रोज पुरुषोंका नाटक देखनेकी मनाई कीथी परन्तु स्त्रियों का नहीं, ऐसा जानकर आज हमने स्त्रियोंका नाटक देखा। गुरुने कहा साधुओंको नाटक मात्र देखना मना है, तब साधुओंने मिथ्यादुष्कृत दिया और कहा आगेसे ऐसा न करेंगे. ऐसे भद्र स्वभाव वाले साधु आदीश्वर भगवान् के शासन में होतेथे, जितना समझाते उतनाही समझतेथे और जो कार्य करते वह गुरुके सामने निष्कपट कहदेते थे।

अब दूसरा दृष्टांत बतलाते हैः—कोंकण देशका साधु एकसमय इरियावही करके काउसग्ग ध्यानमें अपने पुत्रोंका प्रमाद विचारने लगा कि—इस समय अनुकूल हवा चलती है परन्तु प्रमादी मेरे पुत्र क्षेत्रोंमें सूड

न करेंगे, घास वृक्षादि न जलावेंगे तो वर्षा होनेसे कुछ भी धान्यादि न होंगे। जब मैं घरमें था तब सर्व कार्य करता था, अब मैं घरमें नहीं हूँ इसलिये वह बिचारे भूखसे मरेंगे. इत्यादि विचारने लगा. जब सर्व साधुओंने काउसग्ग पूरा किया, तब गुरुने कोंकणमुनिसे पूछा किस ध्यान में लगे थे ? कोंकणमुनि ने कहा महाराज जीव दया विचारताथा ऐसा कहकर अपने मनमें जैसा विचार कियाथा वैसाही गुरुको कहा, तब गुरुने कहा हे मुनि ! तुमने दया नहीं किन्तु हिंसाका विचार किया है, क्योंकि हिंसा बिना खेती नहींहोती और साधु हिंसाका त्यागी है जिससे ऐसी हिंसाका विचार साधुको करना योग्य नहीं है, तब कोंकणमुनिने भावसे मिच्छामि दुक्कडं दिया।

अब महावीर स्वामीके शासनके जीवोंका दृष्टान्त बतलाते हैं:—एक सेठके वक्रजड उद्धत लडका था, वह माता पिताके सन्मुख उलटा जवाबदेता और हितशिक्षा नहीं मानताथा, एकदिन पिताने मीठे वचनोंसे कहा कि हे पुत्र ! अपनेसे बड़े कुटुम्बीजनोंके सामने कभी न बोलना, लड़केने यह बात मानली, एकदिन लड़केके माता पिता उस लड़केको घर संभलाकर किसी कार्यके लिये दूसरी जगह चलेगये, लड़का घरका दरवाजा

बन्द कर अन्दर बैठ गया, जब सब लोग पीछे घर आये तो घरका दरवाजा बन्द देखकर लडकेको किंवाड खोलने को बहुत पुकारा, अपने पिताका शब्द सुनने परभी घरके अन्दर खूब हँसने और नाचने कूदने लगा परन्तु न तो उसने कुछ उत्तरही दिया और न दरवाजाही खोला. तब पिता पड़ोसीके घरमें होकर अपने घरमें गया, किंवाड खोले और पुत्रसे कहा कि तेरेको इतना पुकारा तो भी तू बोला नहीं। लडकेने उत्तर दिया कि इसमें मेरा क्या दोष है, आपने ही तो कहा था कि बडोंके सामने न बोलना, तब पिताने कहा; किसी के सामने ईर्षासे और जोरसे नहीं बोलना किन्तु कोई कार्य हो तो धीरेसे कहना; यह बात भी लडकेने मानली। फिर एक दिन लडकेका पिता बाहर बैठा था इधर घरमें आग लगगई तब माताने कहा हे पुत्र! जल्दी जाकर तेरे पिताको कहना कि घरमें आग लगगई है आप शीघ्रही चलिये, अच्छी २ वस्तुओं को निकालें और अग्निको बुझावें, लडका वहां जाकर बिचारने लगा कि लोगोंके सामने जोरसे बोलना उचित नहीं; चुपका खडा रहा, जब एक घडी होगई तब समीप जाकर धीरेसे पिताके कानमें कहा कि पिताजी जल्दी चलो घरमें आग लगी है, पिताने पूछा कितनी देर हुई, पुत्रने कहा एकघडी होगई, तब पिताने

क्रोधमें आकर कहा रे मूर्ख ! इतनी देरतक आकर खड़ा क्यों रहा, तव लड़का बोला आपही ने तो कहा था कि किसीके सामने जोरसे न बोलना । इसी प्रकार धर्मकार्यमें अवसरोचित तत्त्वकी वातें न समझनेवाले वक्र जड़ लोग श्री महावीर प्रभुके शासन में होते हैं*। और बाईस तीर्थंकरोंके साधुओंको पुरुषोंका नाटक देखना मना करनेसे स्त्रियोंका नाटक विषेश रागका हेतु होनेसे नहीं देखनेका वे स्वयं समझलेते हैं।

अब साधु जिस क्षेत्र में चौमासा ठहरे उस क्षेत्र में कितने गुण होने चाहिये सो बतलाते हैं:—

चिखिल्ल-पाण थंडिल, वसही-गोरस-जिणाउले-विज्जे ॥ ओसह-निचया-हिवई-पाखंडी-भिक्ख सज्झाए ॥७॥

जिस गांव में कीचड थोडा हो १, वे-इन्द्रियादि जीवोंकी उत्पति कम हो २ ठल्ले जाने की भूमि निर्दोष हो ३, धर्मशाला अच्छी हो ४, दही दूध छाछ वगैरह × सुखसे मिल सकते हो ५, श्रद्धावाले श्रावक द्रव्य-

---

* यद्यपि संसार व्यवहार में वहुत लोग वड़े चतुर बुद्धिमान देखे जातेहैं परन्तु अपना आत्म कल्याण करनेके लिये वीतराग, सर्वज्ञ भगवान्के उपदेशानुसार धर्म कार्य करनेमें उनकीभी बुद्धि चक्कर खाजाती है. और वहुत से जीव वक्र जड़ हैं, कोई २ जीव तत्त्व दर्शीभी हैं तो भी बहुत वैसेही होनेसे ऐसी वक्र जड़ताको न रखनेके लिये उपदेश रूपमें सामान्यतया ऊपरके दृष्टान्त वतलाये हैं।

× दही, दुग्धादि वस्तुओं का साधुओं को लोभ नहीं होता, उनको तो कारण विना हमेशा इनका लेना भी नहीं कल्पता, किन्तु तपस्या के पारणे तथा वाल, वृद्ध, रोगी आदि के लिये आवश्यकता होने पर सुखसे मिल सके, इसलिये इन वस्तुओं का नाम ग्रहण किया है।

वान् ×हो ६, वैद्य चतुर हो ७, औषधादि शीघ्र मिल सकते हो ८, धान्यादि वस्तुओंका संग्रह बहुत * हो ९, गांवका स्वामि भद्र हो १०, पाखंडी अल्प हो ११, गौचरी सुख से मिल सकती हो १२ और स्वाध्याय, ध्यानादि सुख शान्ति पूर्वक हो सकते हो १३, यह उत्कृष्ट १३ गुण हो वहां साधु चौमासा करे। यदि सब गुण न मिलें तो भी कमसे कम चार गुण तो अवश्य देखने चाहिये।

महई विहार भूमी, विहारभूमी य सुल्लह सज्झाओ। सुलहा भिक्खा य जहिं, जहन्नं वासखित्तं तु ॥ ८ ॥

जिसमें तीर्थंकर भगवान्के मन्दिर हो १, ठल्लेकी भूमि निर्दोष हो २, स्वाध्याय सुखसे हो सके ३, और गौचरी सुखसे मिलसके ४. यह जघन्य चार गुण अवश्य देखने चाहिये। पांच से १२ तक गुणों वाला मध्यम

×श्रावक गरीब हो या द्रव्यवान् हो, दोनोंके ऊपर साधुओं का समभाव होता है, तिसपरभी जिस गांव में द्रव्यवान् श्रद्धालु श्रावक अधिक होंगे तो वहां शासन प्रभावना और दान पुन्य परोपकारादि धर्म कार्य विशेष रूपसे होसकेंगे इसलिये ऐसा गांव चौमासा करने योग्य बतलाया है।

* यदि धान्यादि वस्तुओं का संग्रह अधिक होगा तो श्रावकों को उदर पूर्ति की चिंता न होगी और चिंता न होनेसे वे साधु के पासमें आकर सामायिक, पौषध, प्रतिक्रमण, शास्त्र श्रवणादि धर्म कार्य शांति पूर्वक कर सकेंगे, इसलिये धान्यादि संग्रह का उल्लेख कियागया है।

क्षेत्र कहा जाता है। अब सब लौकिक और लोकोत्तर पर्वों में श्रीपर्युषणा पर्व सबसे श्रेष्ठ हैं सो बतलाते हैं:—

मंत्राणां परमेष्ठि मंत्रमहिमा, तीर्थेषु शत्रुंजयो। दाने प्राणिदया गुणेषु विनयो, ब्रह्मव्रतेषु व्रतम् ॥
संतोषे नियमः तपस्सु च शमः, तत्त्वेषु सद्दर्शनं। सर्वेषूत्तम पर्वसु प्रगदितः, श्रीपर्वराजस्तथा ॥ ८ ॥

सर्वमंत्रोंमें नवकारमंत्र, तीर्थोंमें शत्रुंजय, दानोंमें अभयदान, गुणोंमें विनयगुण, व्रतोंमें ब्रह्मचर्यव्रत, नियमों में संतोष, तपमें क्षमा, और तत्त्वोंमें सम्यग्दर्शन श्रेष्ठहै, वैसेही सर्व उत्तम पर्वोंमें श्रीपर्युषणापर्व श्रेष्ठ है।

तथा जैसे—क्षीरमें गोक्षीर, जलमें गंगानीर. पटसूत्रमें हीर, वस्त्रमें चीर. अलंकारमें चूडामणी, ज्योतिषी में निशामणी. तुरंगमें पंचवल्लभ किशोर, नृत्यकला में मोर. गजमें ऐरावण, दैत्यमें रावण. वनमें नंदनवन, काष्ठमें चंदन. तेजस्वीमें आदित्य, साहसिक में विक्रमादित्य. रूपवंतमें काम, न्यायवन्त में श्रीराम. सतियोंमें राजीमती, शास्त्रोंमें भगवती, वाजिंत्रोंमें भंभा, स्त्रीयोंमें रंभा. सुगन्धमें कस्तुरी, वस्तुमें तेजमतूरी, पुण्यश्लोक में नल, पुष्पोंमें सहस्रदल कमल, यह सब उत्तम हैं, तैसेही सर्व पर्वोंमें श्रीपर्युषणापर्व सबसे उत्तम जानना. ऐसे महा मंगलकारी पर्युषणा पर्व आने पर पूर्वाचार्यों ने मंगलके लिये सर्वसंघके सामने

श्री कल्पसूत्र वांचने की रीति चलाई है * यह सूत्र श्री भद्रबाहुस्वामी विरचित दशाश्रुतस्कंध सूत्रका आठवां अध्ययन है और इसमें तीर्थंकर परमात्माओंके चरित्रहैं। अब इसके सुननेका माहात्म्य बतलाते हैं:—

एगग्गचित्ता जिणसासणंमि, पभावणा पूअ परा नरा जे॥
तिसत्तवारं निसुणन्ति कप्पं, भवण्णवं ते लहुं संतरंति॥ १०॥

---

* श्रीवीरनिर्वाणसे ९८० वर्षे आनंदपुर [वडनगर] में ध्रुवसेन राजाके बहुत प्यारा 'सेनांगद' नामा राजकुमार पर्युषणापर्व आनेसे अकस्मात मरगया, राजाको बडा शोक हुआ, उससे धर्मशालामें गुरुमहाराजके पास नहीं गया, जिससे 'यथा राजा तथा प्रजा' अन्य आगेवान् लोगभी गुरुके पासमें न गये, इससे धर्मकार्यमें हानि होती हुई देखकर गुरु महाराज राजाके पासमें गये और उपदेश देकर राजाको समझाया कि हे राजन्! आपके अतिशोक करनेसे सर्वनगरमें शोक छायाहै, शरीर अनित्यहै, द्रव्य अशाश्वतहै, आयु ओसकी बिंदु अथवा बीजलीके झबकारेकी तरह चंचलहै, और संसार असारहै, इसलिये आप जैसे तत्त्वज्ञ जैनधर्म समझने वालों को अधिक शोककरना उचित नहीं है. यदि शोक त्यागकर धर्मशालामें आवें तो श्रीभद्रबाहुस्वामीने नवम पूर्वसे उद्धार किया हुआ, तथा कर्म-क्षय करनेवाला मंगलरूप और पहिले कभी नहीं सुना ऐसा अपूर्व विशेष शास्त्र श्रीकल्पसूत्र आपको सुनावें, गुरुमहाराजकी बात मान्य कर राजा धर्मशालामें आया, तब सबलोगभी आये, गुरुमहाराजने कल्पसूत्र बांचकर सुनाया, सबसंघनेभी उत्साह पूर्वक पूजा, भक्ति, प्रभावना सहित शुद्धभावसे सुना, उसरोजसे यह कल्पसूत्र ९–११ या १३ वाचनासे सर्वत्र संघमें बांचनेमें आताहै।

जो मनुष्य जिन शासनकी प्रभावना करता हुआ, जिनराजकी पूजा—भक्ति सहित सावधान होकर एकाग्रचित्तसे शुद्धभाव सहित श्रीकल्पसूत्रको २१ वार अच्छी तरह से संपूर्ण सुनता है, वह भव्यजीव संसार समुद्र से शीघ्र ही पारहो जाता है; अर्थात्—जन्म मरणके दुःखोंसे छूटकर मुक्ति प्राप्त कर लेता है *

---

* इस कल्पसूत्रके शब्द जिसके कानोंमें जातेहैं उसके कर्मरूपी रोगोंका नाशहोताहै, उसका दृष्टांत बतलाते हैं:—

एक बुढियाके हंस नामक लड़काथा, वह गांवके गाय भैंसोंके बच्चोंको चरानेके लिये जंगलमें जाताथा, एक दिन वह जंगलमें झाड़के नीचे सोताथा, अकस्मात सर्पनेकाटा, विष चढ़गया, लड़का बेहोश होगया; घर न आया, तब बुढ़िया उसको ढूढ़ने निकली, रास्ते चलने वालों ने कहा कि तेरे लड़केको तो सर्पने काटाहै, जंगलमें झाड़के नीचे पड़ाहै यह सुनकर बुढ़िया रोती-पीटती वहां पहुंची और देखा तो लड़का बेहोश पड़ाथा, रात्रिका समयथा, चारों ओर अन्धकार छाया हुआथा, गांव बहुत दूर और साथमें कोई नहीं जिससे अकेली बुढ़ियाको बड़ा दुःख हुआ परंतु कोई उपाय न होनेसे मोहके वश लड़केको गोदमें लेकर रे हंस! रे परमहंस!! इसप्रकार बार २ लड़केका नाम पुकारती हुई रुदन करते २ रात्रि चलीगई, प्रातःकाल हुआ तब लड़केका विष उतरगया, उठकर बैठाहोगया, माताको बड़ा हर्षहुआ, बुढ़िया और पुत्र दोनोंही हर्ष सहित गांवमें आये. तब सर्पके जहर उतारनेवाले मंत्रवादियोंने बुढ़ियासे पूछा कि तेने लड़केका जहर कैसे उतारा, बुढ़ियाने कहा कि मैंने जहर उतारने का कोई उपाय नहीं किया किन्तु लड़केको

अब पर्युषणापर्व में साधु और श्रावकोंके करने योग्य कर्तव्य बतलाते हैं:—

संवत्सरप्रतिक्रांतिः लुंचनं चाष्टमस्तपः । सर्वार्हद् भक्ति पूजा च, संघस्य क्षामणा विधिः ॥ ११ ॥

सर्वसाधु—साध्वियोंको संवत्सरी प्रतिक्रमण करना १; केशोंका लुंचन करना २, अट्ठम तप करना ३, सर्व जिनमंदिरोंमें चैत्य वन्दनादि भावपूजा करनी ४ और सर्वसंघकेसाथ, सर्वजीवोंके साथ क्षमत क्षामणा करनी ५. यह पांच कार्य करनेकेलिये तीर्थंकर—गणधरोंने यह पर्युषणापर्व स्थापन कियेहैं और श्रावक-श्राविकाओं को भी यथाशक्ति जिनराजकी द्रव्य-भाव पूजाकरना १; श्रुतज्ञानकी तथा संघकी भक्तिकरना २, भावसहित क्षमत क्षामणे करना ३, आरंभ छोड़कर सचित्त खानेका त्यागकरना ४, ब्रह्मचर्य्य पालना ५, ग्राम, नगर और

गोदमें लेकर रे हंस!, रे परमहंस!! ऐसा पुकारते २ संपूर्ण रात्रि व्यतीत होगई और जहर उतर गया. यह सुनकर मंत्रवादियोंने कहा कि 'हंस' शब्दमें जहर उतारने की शक्ति है इसलिये तेरे लडकेका जहर उतरगया. इसी प्रकार कल्पसूत्रके शब्दोंमेंभी कर्मरूपी विष उतारनेकी शक्तिहै। जिसके कानोंमें इस शास्त्रके शब्द प्रवेश करेगें, उनका कर्मरूपी विष अवश्य दूर होगा और जो मनुष्य भाव सहित पूरा २ बांचेगा या सुनेगा उनको निस्संदेह सुख सम्पदा और मुक्तिकी प्राप्ति होगी।

देशमें यथाशक्ति अमारी घोषणा करवाना ७, सुपात्रमें दानदेना ८, कर्मोंका क्षय करनेके लिये काउसग्ग करना ९, रथयात्रा, कल्पसूत्र, चैत्यपरिपाटी आदिके महोत्सव करके जैनशासनकी प्रभावना करना १०, कल्पसूत्र बांचनेवाले शुद्धसंयमी गुरुकी आहारादिसे भक्ति करना ११ तथा अट्ठम तप करना चाहिये १२. और 'नागकेतु' श्रावककी तरह शुद्धभावसे पर्वका आराधन करनेसे मोक्षकी प्राप्ति होतीहै। अब नागकेतु की कथा बतलाते हैं:—

विजयसेन राजाकी, चंद्रकांत नगरीमें श्रीकांत सेठकी श्रीसखी सेठाणीके वृद्धावस्थामें एक पुत्रहुआ उसने जन्म समय कुटुम्बी जनोंके मुखसे पर्युषणापर्वमें अट्ठम तप करनेकी बात सुनकर जातिस्मरण ज्ञानपाया और ज्ञानसे अपना पूर्व भव देखकर अट्ठमतप किया, दूधपीना छोड़दिया, माता--पिताने बहुत उपायकिये तोभी दूध न पीया, कोमल शरीरहोनेसे बालक अचेत होगया, मोहवश माता–पिता का हृदय फटजानेसे मरगये, दोनोंका अग्निसंस्कार किया और बालककोभी मृतजानकर भूमिमें गाड़दिया। नगरके राजाने अपुत्रिय सेठका धन लेनेकेलिये सिपाही भेजे। इधर बालकके अट्ठम तपके प्रभावसे धरणेन्द्रका आसन चला-

यमान हुआ अवधिज्ञानसे सबबातें देखी, ब्राह्मण बनकर वहांआया, बालकको अमृतपान कराकर सचेतन किया और सेठका धन लेतेहुए राज सेवकोंको मनाकिया। जब राजाभी वहांआया और धनलेनेसे रोकनेका कारण पूछा तब ब्राह्मणने कहा कि हे राजन्! जीते हुए बालकका धन ग्रहणकरना आपको योग्य नहींहै, ऐसा कहकर भूमिमें से जीवित बालक निकालकर राजादि को दिखलाया, जबलोगोंने पूछा आप कौनहैं बालकको जीता हुआ कैसे जानलिया. तब ब्राह्मणरूपधारी ने कहा कि मैं धरणेन्द्र हूँ इस बालकने अट्ठम तपकियाथा, शरीर कोमल होने-से मूर्छित होगयाथा, मरानहींथा, तपके प्रभावसे इसकी सहायताके लिये मुझको यहांआना पड़ाहै. पूर्वभवमें इस बालककी छोटी उमरमें माता मरगईथी पिताने दूसरा विवाह किया, विमाता इसको बहुत कष्ट देने-लगी इसने अपने कष्टका हाल एकमित्र श्रावकको सुनाया, मित्रने कहा कि तुमने पूर्वभवमें तप नहीं किया अब आगेको सुख चाहो तो तपकरो मित्रके उपदेश से पाक्षिकका उपवास, चातुर्मासीका छट्ठ आदि तपकर-ने लगा पर्युषणापर्व आनेसे मैं अट्ठम तप करूंगा. ऐसा विचारकर रात्रिको घासके झोंपडे में सोगया, झोंपडे के पासमें रात्रिमें आग लगी, विमाता ने द्वेषसे इस लडके की झोंपडी में भी चुपचाप आग लगादी, लडका

जलगया, तपकरनेके शुभध्यान में मरकर यहां सेठके घरमें जन्मलिया, लोगोंके मुखसे तपकरनेकी बात सुनकर इसको जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न होगया, जिससे पूर्वभवकी इच्छा पूर्णकरने के लिये अभी अट्ठम तप कियाथा. यह बालक वडाहोने पर आपका तथा सब नगरका उपकार करने वाला होगा, ऐसा कहकर लडका राजाको देकर; लडकेके कण्ठमें रत्नजडित हार पहिनाकर धरणेंद्र अपने देवलोकमें गये. नागिन्द्रने लडकेको जीवित किया इसलिये 'नागकेतु' नाम रक्खा, नागकेतु वडा होनेपर परम श्रावक हुआ. एक समय राजाने विना अपराध एक मनुष्यको चौर समझकर मरवा डाला, वह मरकर व्यंतर देवहुवा ज्ञानसे अपना पूर्वभव देखकर राजाके ऊपर वडा क्रोधायमान होकर यहां आया, राजाको लातमारकर सिंहासन से नीचे पटककर सब नगरके ऊपर देवशक्तिसे आकाशमें वडीशिला वनाकर डाली तव नागकेतुने सव नगरकी रक्षा करनेके लिये मंदिरके शिखरपर चढकर देवताकी डाली हुई शिलाको अपने हाथपर अधर रखलिया ❋

❋ जिस तरह राजाओं की आज्ञासे राज कर्मचारी लोग सर्व देशोंमें प्रजाकी रक्षा करतेहैं. उसीप्रकार इन्द्रकी आज्ञासे सर्व देशोंमें धर्मकी रक्षा देवकरतेहैं जिस मनुष्यका चित्त धर्ममें दृढ होताहै उसकी देवता सेवा करतेहैं और उसके सर्व मनोरथ पूरण होतेहैं. जैसे-सीताजीके शीलकी परीक्षाके समय अग्निका शीतलजल होजाना तथा द्रौपदीके शरीरपर वस्त्रोंका बढजाना भी उनके दृढ शील व्रतका-

नागकेतुके तपतेजको सहन करनेकी देवमें शक्ति न हुई इसलिये शिलाको पीछी हटाकर नागकेतुको नमस्कार कर अपने अपराधकी क्षमामांगी, नागकेतुके कहनेसे राजाकोभी अच्छा किया और अपने स्थानपर गया. तवही से नागकेतु राजा-प्रजा सवकोही विशेष माननीय हुआ. उसकेवाद एकसमय नागकेतु जिनराजकी द्रव्य पूजा करताथा, भगवान्को पुष्प चढाते हुए * पुष्पके अन्दरसे तंदुल सर्पने काटखाया, जहर

प्रभाव है परन्तु उस कार्य्यमें ब्रह्मचर्य्य के अधिष्ठायक देवों की सहायता अवश्यही थी वैसे ही नागकेतुके तपतेज धर्मकी दृढता से अधिष्ठायक देवने सहायताकी थी उससे नागकेतुने हाथ पर शिला अधर रखली थी अतः यह वात शंका करने के योग्य नहीं है।

*— भगवान्की पुष्पादिसे द्रव्य-पूजामें हिंसा वतलाकर अनसमझ लोग पूजाका निषेध करतेहैं, परन्तु तत्त्वसे विचार किया जावेतो वडालाभ मालूम होताहै. देखो-राजा-महाराजादि अपने सव समुदायसहित वडेमहोत्सवसे भगवान्को वंदना करनेको जातेहैं तथा इन्द्रादिदेवभी जन्माभिषेकादिसे भगवान्की भक्ति करतेहैं और मुनिजनभी आहार-निहार-विहार-प्रतिलेखनादि क्रियाएँ करतेहैं. इत्यादि कार्योंमें अल्प द्रव्यहिंसा लगतीहै तोभी शुद्ध भावसहित धर्म कार्यहोनेसे विशेष लाभ मिलताहै. इसीतरहसे भगवान्की द्रव्य-पूजामेंभी कुछ अल्प क्रिया लगतीहै, परंतु भगवान्की भक्तिकरनेके निर्मल परिणाम होनेसे विशेष लाभ होताहै। तथा मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग यही कर्मवंधनेके हेतुहैं, भगवान्की पूजामें इन कारणोंका अभावहै किंतु सम्यग्दर्शन पूर्वक प्रमादरहित शुद्ध उपयोग सहित और शांत ज्ञान दशा से भगवान्के अनंतगुणोंका स्मरण, ध्यान, वैराग्यभावना, आत्मस्वरूपका विचारसे अशुभकर्मोंका निवारण, शुभ-पुण्यराशीका वंधहोना इत्यादि अनेक अपूर्व गुणोंकी प्राप्तिका प्रत्यक्ष लाभ मिलताहै और भगवान्की पूजाके समय आर्त्त-रौद्र ध्यानके

चढने परभी नागकेतु व्याकुल न होकर जिनराजके सामनेही ध्यानमें लवलीन होगया शुक्ल ध्यानसे घन-घाति कर्मोंका नाशकरके केवलज्ञान पाया, शासनदेवताने मुनिका वेषादिया पृथ्वीपर बिचरकर बहुत भव्य जीवोंका उपकार करके नागकतु मोक्षगये. इसीतरहसे जो भव्यजीव भावसहित तप और जिनराजकी पूजा भक्ति करके पर्वका आराधन करेगा वह मोक्ष सुख पावेगा ×

अशुभ विचार, संसारी मोहमाया भी छूट जाती है इसलिये भगवान्‌की द्रव्य-पूजा भाव पूजा की हेतु होने से इसमें तत्त्व दृष्टिसे विशेष लाभहै. इसका निषेध करना सर्वथा अनुचितहै। इस विषयमें सबतरहकी शंकाओंका समाधान "श्री जिनप्रतिमाको वंदन पूजनकरनेकी अनादि सिद्धि" नामक ग्रंथमें विस्तार से लिखदियाहै, उसके पढनेसे सबखुलासा मालूम होजावेगा।

※ जैसे जैनशासनमें इसपर्वकी महिमाहै वैसेही अन्य समाजमें भी इसकी बडी महिमाहै, उसकी कथा बतलातेहैं:—पुष्पवती नगरीमें अर्जुन ब्राह्मणके गंगाधर नामक पुत्र था, कालान्तरमें गंगाधरके माता-पिता मरकर उसी घरमें पिता बैल हुआ और माता कुत्ती हुई, एकसमय गंगाधरने माता-पिताके श्राद्धकेलिये क्षीरका भोजन बनवाया, सम्बंधियों को आमंत्रणकिया, उस रोज बैलको तेली मांगकर लेगया. इधर क्षीर पकने के भाजनके ऊपर चांदनी नहीं बँधीथी उपरमें सर्प चलताथा गर्मीकी ज्वालासे सर्पके मुखमें से गरल (जहरकी लाल) क्षीरमें पडगई। यह दूरबैठी हुई कुत्तीने देखकर बिचारकिया कि इस जहरसे मेरा सारा कुटुम्ब दुखीहोगा जिससे क्षीरमें मुंह डालकर झूंठी करदी, इस बातका भेद बिना समझेही गंगाधरने क्रोधसे लाठी मारकर कुत्तीकी कमर तोड डाली

तथा यह पर्युषणाकल्प तीसरे वैद्यकी औषधिकी तरह सुख करने वाला है उसका दृष्टान्त बतलाते हैं:—

किसी नगर में राजाके एक पुत्र बहुतही प्रियथा, राजाने पुत्रको हमेशा निरोग, बलवान, हृष्ट, पुष्ट, और

और चिल्लाती हुई कुत्तीको बैलकी गवाणमें बांध दिया और दूसरी क्षीर बनवाकर सबको भोजन करवाया। शामको तेलीने बैलको लाकर गवाणमें बांधदिया, बैलने कुत्तीसे पूछा तुमको किसने मारा, कुत्तीने कहा तुम्हारे पुत्रने मैंने तो सबको जहरसे बचाकर उपकार किया परन्तु आपके पुत्रने मेरी कमर तोड डाली। यह सुनकर बैलने कहा कि मुझको भी इस पापी पुत्रने तैलीको दिया, तैली ने दिनभर घानीमें चलाया और भूखा-प्यासा लाकर बांधदिया है। यह बात पासमें सोतेहुए गंगाधरने सुनी। बडा उदास हुआ उठकर बैल तथा कुत्तीको क्षीरका भोजन करवाया और उनकी गति सुधारने के लिये विदेशमें जाकर तापसोंसे उपाय पूछा। तापसोंने कहा कि तेरे माता-पिताने पर्वके दिनमें मैथुन किया था उसके दोषसे ऐसी गति पाई है। अब तू भाद्रशुदी पंचमी का व्रत कर और पारणे व उत्तर पारणे में बिना बोये हुए धानका भोजन कर उससे उनकी अच्छी गति होगी। गंगाधरने वैसाही किया जिससे दोनोंकी अच्छी गति हुई + और उसीदिन से ऋषिपंचमी पर्व की भी प्रसिद्धि हुई।

× सर्वज्ञ भगवान्के कथनके अनुसार तथा कर्म सिद्धान्तके अनुसार दूसरे प्राणीके धर्म करनेसे दूसरोंकी सुगति नहीं होसकतीहै, जो प्राणी जैसे कर्म बांधे वैसेही सुख-दुख उसको भोगने पड़तेहैं परन्तु अन्य दर्शनियोंमें यह पुराण कथा चलतीहै अतएव टीकाकारने भी यहां प्रसंगवश पंचमीकी महिमा बतलानेके लिये उल्लेख कियाहै, परन्तु इस कथामेंसे इतनी बात जरूर याद रखना चाहिये कि पर्वदिनमें मैथुन सेवन (काम क्रिडा) करनेसे खराब गति होतीहै, इसलिये पर्वके दिन अवश्य ही ब्रह्मचर्य्य पालन करना चाहिये।

क्रान्तिवाला बनाये रखनेके लिये वैद्योंको बुलवाये और उपाय पुछा, तब एक वैद्यने कहा कि हे राजन् ! मेरी औषधि यदि रोग हो तो निवारण करती है नहीं तो नये रोग उत्पन्न करती है, यह सुनकर राजाने कहा कि तेरी औषधि तो सोतेहुए सिंहको जगाने जैसी होनेसे अच्छी नहीं है। दूसरे वैद्यने कहा कि हे स्वामि ! मेरी औषधि रोग हो तो उसका नाश करती है, रोग न हो तो नुकसान भी न करे, तब राजाने कहा तेरी औषधि भी भस्मी में घृत डालने जैसी निष्फल है। तीसरे वैद्यने कहा महाराज ! मेरी औषधि अमृत तुल्य होनेसे रोग हो तो उसको दूर करती है, रोग न हो तो उसके शरीरमें तुष्टि, पुष्टि, सौभाग्य और भविष्य में आरोग्यता बढाती है। ऐसा सुनकर राजाने कहा तेरी औषधि राजकुमार के करने योग्य अच्छी है। तब वैद्यने राजपुत्रको औषधि दी, जिससे राजपुत्र बलवान और चिरंजीवी हुआ। इसी तरहसे यह कल्पसूत्रभी तीसरे वैद्यकी औषधिके समान हितकारी है, जिससे सूत्र पढने और सुननेवाले अपने कर्मरोगों का नाश करके अनंतबल वीर्य्य पराक्रम वाले होकर मोक्षका अक्षयसुख प्राप्त करते हैं। अब मूलसूत्रका व्याख्यान करतेहैं इसलिये सूत्रकार श्रीभद्रबाहुस्वामी मंगलके लिये पंच परमेष्ठि नवकार मंत्र कहते हैं:—

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं, एसो पंच णमुक्कारो, सव्व पाव प्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

इन्द्रादि तीन जगतकें सर्व प्राणियोंके पूजने योग्य तथा राग द्वेषादि कर्मशत्रुओंको जीतनेवाले, बारहगुण सहित ऐसे श्रीअरिहंत परमात्माको मेरा नमस्कार हो। अष्ट कर्मरूपी सम्पूर्ण काष्ट समुहको शुक्ल ध्यानरूपी अग्निसे जलाकर मोक्षमें विराजे, ऐसें अनन्त ज्ञानादि आठगुण सहित सिद्ध भगवान्‌को मेरा नमस्कार हो। ज्ञान दर्शनादि पांच प्रकारके आचारको पालन करनेवाले ३६ गुण सहित आचार्य्य महाराजको मेरा नमस्कार हो। जिन्होंके पास में आकर साधुलोग ११ अंग, १४ पूर्व, द्वादशांगी पढें, ऐसे २५ गुणसहित उपाध्याय महाराजको मेरा नमस्कार हो। और पांच महाव्रत लेकर दर्शन ज्ञान चारित्रसे मोक्षमार्गका साधन करनेवाले २७ गुणसहित मनुष्य लोकमें रहनेवाले सर्व साधुओंको मेरा नमस्कारहो। यह पंच परमेष्ठि नमस्कार सब पाप कर्मोंका नाश करनेवाला है और सर्व मंगल कार्योंमें प्रथम मंगल है ॥१॥ इस नवकार मंत्रमें, नवपद, आठ संपदा, सात गुरु और इकसठ लघु मिलकर सब अडसठ अक्षर हैं। अब नवकार

स्मरण करनेका माहात्म्य बतलाते हैं:—

इह लोअम्मि तिदंडी सा, दिव्वं माउलिंग वणमेव । परलोए चंडपिंगल, हुंडिय जक्खो य दिट्ठंता ॥१॥

भावसहित शुद्ध नवकार गुननेसे इसी भवमें शिवकुमारको मरणान्त* कष्ट मिटा और सुवर्ण पुरुष सिद्ध

---

* कुसुमपुर नगरमें धनसेठके 'शिवकुमार' लडका जुआदिका व्यसनीथा, पिताने मना किया तोभी उसने जुआका व्यसन नहीं छोडा; जब सेठका अंत समय आया तब लडकेको हितशिक्षा दी कि मेरे परलोक जानेपर तू दुःखीहोगा इसलिये पंचपरमेष्ठि नवकार सीखले तेरेको कष्टपडे तब इसके स्मरणसे तेरा कष्ट दूर होगा, सेठके मुखसे लडकेने नवकार सीखलिया, सेठके मरेबाद जुएमें सब धन हारगया, माथे करज हुआ उसके डरसे नगर बाहिर फिरने लगा, वहां एक त्रिदंडी योगी मिला, योगीने उदास फिरनेका कारण पूछा शिव कुमारने अपना साराहाल सुनाया योगीने कहा चिंता मतकर मेराकहा करे तो तेरेको अक्षय धन मिलेगा; लडकेने पूछा किस तरह ? योगीने कहा सुवर्णसिद्धिसे, जा तू अखंड शरीर वाला मुर्दा ला बाकीकी सब सामग्री मेरेपास है जब उसने एक मुर्दा लादिया तब उस धूर्त्तयोगीने तेलका भराहुआ बडालोहका कडाह भट्टीपर चढाया, नीचे अग्नि जलाई और शिवकुमारके पास मुर्देके सब अंगपर तेलकी मालिश शुरु करवाई तथा योगी अरेठेकी माला लेकर मंत्र जपने लगा, उस समय शिवकुमारने विचार किया कि यह योगी मेरा परिचित नहींहै, इसकी मैंने कभी सेवाभी नहीं की यह मेरेको धन देगा अथवा मेरेको मारकर अपना स्वार्थ सिद्ध करेगा तो यहां मेरी रक्षा कौन करेगा ? यह तो बडी आफत आयी इतनेमें पिताका वचन याद आया, अपना कष्ट दूर होनेके लिये नवकार

हुआ. १, श्रीमती श्राविकाके सर्पकी फूल ❀ माला बनगई २, बिजोरेका फल देवताने जिनदास श्रावकको दिया ३, चंडपिंगल चौरको राजाने सूलीपर चढा दियाथा, वहांपर कलावती वैश्याने नवकार सुनाया उसके

मंत्रका स्मरण करनेलगा योगीका जप पूरा होनेपर मुर्दा उठने लगा परन्तु श्री नवकार मंत्र के प्रभावसे पीछा गिरगया, तव योगीने शिवकुमारको पूछा तू कुछ जप करताहै जिससे कार्यसिद्धिमें विघ्न आया शिवकुमारने कहा कि नहीं फिर योगीने मंत्रका जप शुरुकिया तव शिवकुमार भी दृढश्रद्धासे नवकार मंत्र गुणनेलगा, जपके अंतमें दूसरीवार मुर्दा उठनेलगा परन्तु फिर पीछा गिरगया. योगीने शिवकुमारको ओलंभा दिया और तीसरी वार जप करनेलगा शिवकुमारभी अपने मनमें नवकार गुणने लगा जव योगीका जप पूराहुआ तव तीसरीवार मुर्देने उठकर उस योगी कोही तैलके कडाहमें डालदिया, जिससे सुवर्ण पुरुष होगया. शिवकुमारने फजरमें सवहाल राजाको कहे, राजाने कहा तेरे भाग्यसे हुआहै, तू रख, राजाकी आज्ञासे सुवर्णपुरुष लेकर घरमें आया, अक्षय धनसे सुखीहुआ व्यसन छोडकर धर्मकार्य करके अच्छी गतिमें गया ॥ इति ॥ नवकारमाहात्म्यके उपर शिवकुमारकथा ॥

❀ सोरठदेशके एक गांवमें एक श्रावकके श्रीमती नामकी एक लडकी थी उसका किसी मिथ्यात्वीके साथ विवाह होगया श्रीमती जिनेश्वर भगवान्‌की पूर्ण भक्ता थी, जिससे हमेशा नवकारका स्मरण करतीथी सुसराल वालोंने मना किया वहुत कष्ट दिया परन्तु श्रीमतीने जैन धर्म नहीं छोडा। इससे आपसमें हमेशा अनवन रहने लगी तव सवने नाराज होकर श्रीमतीको मारकर दूसरी वहु लानेका विचार किया, श्रीमतीके पतिने भी यह वात मान ली और गारुडियोंके पाससे काला सर्प मंगवाकर घडेमें डालकर घडे

प्रभावसे वही चौर मरकर उसी नगरके राजाका पुत्रहुआ ४, इसीतरहसे रूपखुर चौरभी नवकारके प्रभा-
वसे देवहुआ. ५, ऐसे बहुतसे दृष्टान्त हैं:—

अब यहांपर जिनचरित्राधिकारमें पश्चानुपूर्वीसे नजदीक उपकारी शासननायक, श्रीमहावीर स्वामीके चारित्रको श्रीभद्रबाहु स्वामी पाहिले कहतेहैं:—

ते णं का ले णं, ते णं समए णं, समणे भगवं महावीरे पंच हत्थुत्तरे होत्था. तं—जहा.

का मुंह बंदकरके अंधेरे में रखदिया, दूसरे दिन अपने देवकी पूजा करते समय श्रीमतीसे कहा कि घडेमें से पुष्पमाला लाओ पूजा में चढावें यह सुनकर अपने पातिकी आज्ञा से श्रीमती घडेके पास जाकर, घडेका मुंह खोलकर 'ॐ णमो अरिहंताणं' ऐसा उच्चारण करती हुई घडेमें हाथ डाल कर दिव्य सुगंध युक्त पुष्पमाला लाकर अपने पतिको दी, देतेही तत्काल काला सर्प होगया, जो श्रीमतीके हाथमें पुष्पमाला देखनेमें आतीथी वह उसके पतिके हाथमें आतेही सर्प होगया। यह देखकर उनके घरवाले बोले कि इस स्त्रीके धर्मका प्रभाव कल्याणकारी है उसकेही प्रभावसे सर्पकी पुष्पमाला बन गई है। यह आश्चर्य देखकर श्रीमती के पास जैनधर्मका स्वरूप समझकर सब कुटुम्ब वालोंने जैनधर्म अंगीकार किया, इससे श्रीमतीकी बडी महिमा बढी। धर्मका आराधन कर सुखी हुई ॥ इति नवकार माहात्म्य के ऊपर श्रीमती का दृष्टान्तः ॥

तिसकालमें (चौथे आरेमें) और तिस समयमें (जिस समय भगवान् माताके गर्भमें आये उस समय से लेकर केवल ज्ञान प्राप्त होने तक) श्रमण भगवन् श्रीमहावीर स्वामीके पांच * कल्याणक हस्तोत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी) नक्षत्रमें हुए, वही बतलाते हैं।

---

* तीर्थंकर भगवान्के च्यवन-जन्म दीक्षादि कल्याणक अनादि सिद्ध होनेसे सबजैनोंमें प्रसिद्धहैं जिससे सूत्रकार च्यवनादिको कल्याणक न लिखकर सिर्फ च्यवनादि नाममात्र लिखदेतेहैं इसलिये 'ठाणांग' सूत्रके पांचवें ठाणेके प्रथम उद्देशकमें पद्मप्रभुजी आदि १३ तीर्थंकर-भगवानोंके च्यवनादि पांच २ कल्याणकोंकी तरह वीरप्रभुकेभी प्रथम च्यवन की तरह गर्भहरणरूप दूसरा च्यवन, जन्मादि केवलज्ञान पानेतक पांच कल्याणक हस्तोत्तरा नक्षत्रमें होनेका कथन कियाहै तथा छठा निर्वाण कल्याणक तो प्रसिद्धही है और इसी कल्पसूत्रमेंभी नेमिनाथजी-पार्श्वनाथजीके पांच २ कल्याणकोंकी तरहही वीरप्रभुकेभी पांच कल्याणकोंका कथनहै इसलिये अनादि सिद्ध और प्रसिद्ध च्यवनादिकोंको वस्तु-स्थान कहनेके बहानेसे कल्याणक अर्थको उडादेना सर्वथा अनुचितहै। और वीरभगवान्की दोनों माताओंने दो वार अलग २ चौदह स्वप्न देखेहैं तथा समवायांग सूत्रकी टीकामेंभी दोनों अलग २ भव गिनेहैं और "एए चउद्स सुविणे, सव्वा पासेइ तित्थयर माया॥ जं रयणिं वक्कमई कुच्छिसि महायसो अरिहा॥ १॥" कल्पसूत्रके इस मूलपाठमें खाससूत्रकारने सर्वतीर्थंकरोंके च्यवन कल्याणकोंमें भगवानोंकी माताओंके चौदह स्वप्न देखनेकी तरह वीरप्रभुकेभी त्रिशला माताके गर्भमें आनेकोही च्यवन कल्याणक मान्यकर चौदह स्वप्नोंका वर्णन कियाहै इसलिये देवानन्दाके गर्भमें आनेको कल्याणक मानने वालोंके छ कल्याणक होतेहैं और त्रिशलाके गर्भमें आनेको कल्याणक मानने वालोंके पांच कल्याणक होतेहैं इसलिये देवानन्दाके गर्भमें आनेको कल्याणक मानने परभी छ कल्याणक माननेमें शंकालाना यहतो उचित नहींहै। और जो नहीं बनने योग्य बातबने उसको अच्छेरा कहते हैं: जिसतरह आदीश्वर भगवान् १०८

मुनियोंके साथ एक समयमें मोक्षगये तथा मल्लिनाथजी स्त्रीपनेमें तीर्थंकरहुए इनको अच्छेरा कहतेहैं तोभी इनके कल्याणक मानतेहैं. उसी तरहसे वीरप्रभुकेभी दोनों च्यवन अच्छेरा रूप होने परभी इनको कल्याणक माननेमें कोई दोष नहीं आसकता है। और वीरप्रभुके गर्भ हरणरूप दूसरे च्यवनमें च्यवन कल्याणकके सर्वकार्य हुएहैं वह प्रसिद्धहैं परन्तु ऋषभदेवस्वामीके राज्याभिषेकमें तो किसीभी कल्याणकके कोईभी कार्य नहीं हुए जिससे राज्याभिषेक कल्याणक नहीं हो सकता इसलिये वीरप्रभुके दूसरे च्यवन कल्याणक माननेकी तरह राज्याभिषेककोभी कल्याणक माननेका आग्रह करना उचित नहींहै। और कई महाशय 'पंचाशक' में पांच कल्याणकोंका पाठ देखकर छ कल्याणकोंका निषेध करते हैं परन्तु सामान्य और विशेष, विधिवाद और चरितानुवाद संबंधी शास्त्रकार महाराजके अभिप्राय का विचार नहीं करतेहैं क्योंकि देखो-जिस तरह वीरप्रभुकी माताने प्रथम स्वप्नमें सिंह देखाहै तथा आदीश्वर भगवान्‌की माताने प्रथम स्वप्न में वृषभको देखाहै और बाईस तीर्थंकरोंकी माताओंने प्रथम हस्ति देखाहै तोभी सर्व तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे विधिवाद संबंधी सामान्यतासे वीर प्रभुकी माताके स्वप्नोंके वर्णन समय इसी कल्पसूत्रमें प्रथम स्वप्नमें हस्तिका वर्णन करादियाहै. परन्तु दूसरे वीर चरित्रोंमें चरितानुवाद संबंधी विशेषतासे प्रथम स्वप्नमें सिंहका वर्णन कियाहै इसमें किसी तरहका विरोध नहींहै। इसी तरहसे 'पंचाशक' में सर्व तीर्थंकरों संबंधी विधिवादकी अपेक्षासे सामान्यतासे वीरप्रभुके पांच कल्याणक बतलाये हैं और कल्पसूत्रादिमें चरितानुवादकी अपेक्षासे विशेषतासे छ कल्याणक बतलायेहैं इसलिये सामान्य और विशेषताके कारणसे 'पंचाशक' के पाठमें और 'कल्प'सूत्रके पाठमें किसी तरहका विरोध भाव नहींहै। किन्तु प्रसंगानुसार दोनों मान्यहैं. जिसपरभी 'पंचाशक' के पांच कल्याणकोंका पाठको आगे करके 'कल्पसूत्र' के छ कल्याणकोंके पाठका निषेध करनेका आग्रह करना किसी तरह उचित नहींहै. इस विषयमें सब तरहकी शंकाओंका समाधान सहित विस्तार पूर्वक हमने "बृहत् पर्युषणा निर्णय" नामक ग्रंथमें लिखादियाहै पाठकगण उसग्रंथको अवश्य देखें।

हत्थुत्तराहिं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ४, हत्थुत्तराहिं अणंते, अणुत्तरे, निव्वाघाए, निरावरणे, कसिणे, पडिपुण्णे, केवल वर नाण दंसणे समुप्पने ५, साइणा परिनिव्वुए भयवं ॥६॥

महावीर भगवान् हस्तोत्तरा नक्षत्रमें देवलोकसे च्यव कर देवानन्दा माताकी कुक्षिमें उत्पन्नहुए १, इसी नक्षत्र में देवानन्दा माताकी कुक्षिसे त्रिशला माताकी कुक्षिमें पधारे २, इसी नक्षत्रमें जन्महुआ ३, इसी नक्षत्रमें गृहस्थावास छोडकर साधु हुए ४, और हस्तोत्तरा नक्षत्रमेंही अनंत अर्थको जानने वाले, सबसे उत्कृष्ट, भींत, पर्वत, नदी, समुद्रादिक किसीभी जगह नहीं रुकने वाले, लोकालोककी सूक्ष्म और बादर सर्व वस्तुओंको द्रव्य, गुण, पर्याय सहित जाननेवाले, पूर्णिमाके चन्द्रकी तरह सर्व अंशसे परिपूर्ण किसीकीभी सहायता रहित ऐसे अनंतगुण सहित केवल ज्ञान व केवल दर्शन उत्पन्न हुआ ५ और स्वाति नक्षत्रमें सर्व कर्मोंसे तथा शरीरादि पुद्गलिक संगसे रहितहोकर भगवान् मोक्षगये. अक्षय अनंत सुख भोगने वाले हुए ॥ ६ ॥

इस प्रकार श्रीमहावीरस्वामीके छ कल्याणक संक्षेपसे कहे, ११ वाचनाकी अपेक्षासे यह प्रथम व्याख्यान संपूर्ण हुआ. अब दूसरा व्याख्यानमें च्यवनादि कल्याणक विस्तारसे कहते हैं ।

तिसकाल, तिससमयमें श्रमण भगवन् श्रीमहावीरस्वामी उष्णकालका चौथा महीना, आठवाँपक्ष, आषाढ शुदी ६ के दिन दशम देवलोकके महान् विजयवाले पुष्पोत्तर प्रवर पुंडरीक नामक बडे विमानसे वीश-सागरोपमका देव संबंधी आयु—भव और स्थिति क्षयहोनेसे वहांसे च्यवे और इसी जंबूद्वीपके दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रमें इसी अवसर्पिणी कालके सुखम सुखम नामक चार कोडा कोडी सागरोपमका पहला * आरा गये

---

*—पहले आरेमें युगलीय मनुष्य व तिर्यंचोंकी तीन पल्योपमकी आयु, तीनकोस उंचा शरीर, २५६ पांशुली, तीन दिनके बाद कल्पवृक्षका तुअर प्रमाणे आहार करें, ४९ दिनतक बचोंकी पालना करके मरकर देवलोकमें जावें. दूसरे आरेमें दो पल्योपमकी आयु, दो कोसका शरीर, दो दिनके बाद बोर प्रमाणे आहार करें, १२८ पांसुली, ६४ दिनतक बचोंकी पालना करके मरकर देवलोकमें जावें. तीसरे आरेमें एक पल्योपमकी आयु, एक कोसका शरीर, एकांतरे आंवले प्रमाणे आहार करें, ६४ पांसुली, ७९ दिनतक बचोंकी पालना करके देवलोकमें जावें. चौथे आरेमें एक पूर्वक्रोड वर्ष प्रमाणे उत्कृष्ट आयु, ५०० धनुष्यका शरीर, हमेशा आहार करनेवाले, मरकर चारों गतियोंमें जानेवाले और कर्मक्षय करलें तो मोक्षमें भी जावें. तथा २१ हजार वर्षके दुष्म नामक पंचम आरेमें सात हाथ प्रमाणे शरीर, १२० वर्षका आयु, मरकर चारों गतियोंमें जावें परंतु मोक्षमें नहींजावें और २१ हजार वर्षका दुष्म दुष्म नामक छठे आरेमें दो हाथका शरीर (परन्तु छठे ओरके मध्यमें व अंतमें एक हाथका शरीर), २० वर्षका आयु, क्रुरकर्म करने वालें,

बाद, सुखम नामक तीन कोडा कोडी सागरोपमका दूसरा आरा गये बाद, सुखम दुःखम नामक दो कोडा कोडी सागरोपमका तीसरा आरा गये बाद और दुःखम सुखम नामक एक कोडा कोडी सागरोपमका चौथा आरा बहुत गयेबाद, ४२ हजार, ७५ वर्ष, साढे आठ महीने; इतना समय बाकीरहा तब, तथा एकवीश तीर्थंकर इक्ष्वाकु कुलमें व काश्यप गौत्रमें उत्पन्नहुए बाद और मुनिसुव्रतस्वामी व नेमिनाथजी हरिवंशकुलमें व गौतम

माता-पुत्री आदिका व्यवहार और लज्जा रहित मरकर प्रायः दुर्गतिमें जाने वाले होतेहैं । इसप्रकार छ आराओंका संक्षिप्त स्वरूप बतलाया हैं *

* लाखों वर्षोंसे दुनियांहै, पहिले मनुष्य और जानवर बहुत वडेहोते थे, डॉ० राय चैंपमैन एंड्रूसने मंगोलिया (मध्य एशिया) के भीतर ऐसे चिन्ह पाये हैं कि वहां १॥ लाख वर्ष पहिले से आदमी थे। एक जानवरके ऐसे पंजर मिलेहैं जो ६० लाख वर्ष पहिले था, इसकी लंबाई १॥ खन मकान होगी। दो मस्तक मिले हैं जिनकी उंचाई २५ से ३० फीट और वजन में १६ से २० टनहै। एक पक्षी का अंडा मिलाहै, जो १॥ लाख वर्ष पूर्व का होगा। और ६० करोड वर्ष की पुराणी वस्तुएँ-हिंदुस्तान टाइम्स देहली ताः २४-११-२८- में लिखा है कि-आस्ट्रेलियाके वैज्ञानिक प्रोफेसर एजवर्थ डेविडने खुदाई करने पर जानवरों की हड्डियां माउंट लापटीमें व दक्षिण भागमें पाईहैं जो ६० करोड वर्ष की पुरानी समझी जातीहैं। जैन पथ प्रदर्शक व जैन प्रकाश से उद्धृत.

असंख्य वर्ष पहिले मनुष्योंके व पशुओंके वडे २ शरीर होतेथे इस बातको दूसरे लोग नहीं मानतेथे परंतु अब नयी २ शोध खोलमें ऐसी २ बहुत प्राचीनकाल की वस्तुएँ मिलने लगी, तबसे उन बातोंका लोगों में प्रत्यक्षतया विश्वाश होने लगाहै।

गौत्रमें उत्पन्नहुए बाद; इसप्रकार आदीश्वर भगवान्से पार्श्वनाथजी तक २३ तीर्थंकरहुए बाद श्रमण भगवन् श्री महावीरस्वामी छेल्ले तीर्थंकर माहणकुंड नगरके कोडाल गौत्रके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालंधर गौत्रकी देवनंदा ब्राह्मणी की कुक्षिमें अर्ध रात्रिके समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें चंद्रका योग आनेसे भगवान् देव संबंधी आहार—भव और शरीरको छोडकर माताके गर्भमें उत्पन्न हुए. पहले आदीश्वर भगवान्ने भरत चक्रवर्तीके सामने कहाथा कि 'मरीचि' तेरा पुत्र २४ वां तीर्थंकर होगा; इसलिये अब भगवान्के २७ पूर्वभवोंका स्वरूप कहतेहैं:—

ग्रामेशस्त्रिदशो मरीचिरमरो, षोढा परिव्राट् सुरः। संसारो बहु विश्वभूतिरमरो, नारायणो नारकः॥
सिंहो नैरयिको भवेषु बहुशश्चक्री सुरो नंदनः। श्रीपुष्पोत्तरनिर्जरोऽवतु भवाद् वीरस्त्रिलोकी गुरुः॥ १॥

इस जंबूद्वीपमें पश्चिम महाविदेह क्षेत्रके प्रतिष्ठानपुर नगरमें एक 'नयसार' नामक राजाका नौकर ग्रामचिंतक कामदारियाथा वह राजाज्ञासे गाडेलेकर राज्यसेवकोंके संग वनमें लकडी लेनेके लिये गयाथा, वृक्षके नीचे बैठेहुए उसको अपने साथियोंसे भूलेहुए कितनेकसाधु देखनेमें आये, उनके सामनेगया और भक्तिपूर्वक

वंदना करके अपने स्थानपरलाया, पहलेका बनाया हुआ आहार उन साधुओंको वहोराया और धर्मोपदेश सुनकर मार्गबतादिया। यहां साधुओंको वंदन, आहार दान और धर्मोपदेश सुननेसे 'नयसार' ने सम्यक्त्व पाया-यह प्रथम भव। वहांसे आयुपूर्ण करके पहले देवलोकमें देवताहुआ, यह दूसरा भव. देवलोकसे च्यवकर श्री-ऋषभदेवप्रभुके पुत्र भरत चक्रवर्तीका मरीचि नामक पुत्रहुआ. वहां भगवान्‌की देशना सुनकर अपने पांचसौ भाई और ७०० भतीजोंके संग चारित्र ग्रहण किया, किन्तु कुछ समय बाद जब मरीचि दीक्षा न पाल सका तब उसने साधुवेषका त्यागकर त्रिदंडीका वेष धारण किया, उसने पैरोंमें खडाऊ पहनी, लोच करनेको असमर्थ होकर शिरमुंडन कराया, जलकेलिये कमंडल लिया, गेरुये वस्त्र पहिने और समोवसरणके बाहिर इस वेषमें ठहरने लगा, जो कोई मनुष्य उसके पास धर्म सुननेको आता, उसको उपदेश देकर भगवान्‌के पास दीक्षा-ग्रहण करवाता था। एक समय भरत चक्रवर्तीने ऋषभदेव स्वामीको वंदना करके प्रश्न किया कि हे भगवन्! इस अवसर्पिणीमें कितने तीर्थंकरहोंगे और यहां इस समोवसरणमें कोई तीर्थंकरका जीवभी है या नहीं। भगवान्‌ने उत्तर दिया कि चौवीस तीर्थंकर होंगे और इस समोवसरणके बाहिर तेरापुत्र मरीचि जो

त्रिदंडीके वेषमें रहताहै वह महावीर नामक चौवीसवां तीर्थंकर होगा तथा इसी भरतक्षेत्रमें 'त्रिपिष्ठ 'नामक प्रथम वासुदेव होगा और महाविदेह क्षेत्रकी मुंका नगरीमें 'प्रियमित्र' नामक चक्रवर्तीभी होगा. भरत यह सुनकर भगवान्‌की आज्ञा लेकर बडेहर्षसे मरीचिको वंदना करनेके लिये गये, भविष्यमें होनेवाली सब बातें कहदी और वंदना करके बोले कि आप २४ वें तीर्थंकर होने वाले हो इसलिये वंदना करताहूं न कि चक्रवर्ती आदि पदवियोंकों, क्योंकि वर्तमान तीर्थंकरकी तरह भावी तीर्थंकरभी वंदनीयहैं. ऐसा कहकर भरतके गये बाद मरीचि अभिमानसे बोलनेलगा कि मेरा पिता चक्रवर्ती, मेरा दादा तीर्थंकर और मैं चक्रवर्ती तथा वासुदेव व तीर्थंकर होऊँगा, मेरेको वासुदेव पदवी अधिक मिलेगी, इसलिये मेरा कुल उत्तमहै. ऐसा कहता हुआ अपनी भुजा ठोकताहुआ नाचने लगा, इसप्रकार कुलमद व गौत्रमद करके नीच गौत्र कर्मका बंधन किया, इसके बाद एक समय 'मरीचि' बिमार पडा किसीने उसकी सेवा नहीं की तब मरीचिने विचार किया कि अच्छा होनेपर एक शिष्य करूँगा वह रोगादिमें मेरी सेवा करेगा, कुछ समय बाद मरीचि अच्छा होगया, तब कपिल नामक राज पुत्र मरीचिके पास आया उसको धर्मोपदेश देकर दीक्षा लेनेके लिये भग-

वान्‌के पासभेजा किन्तु कपिल ऋषभदेवभगवान्‌की समोवसरण महिमा देखकर वापिस लौटआया और कहने लगा कि ऋषभदेवके पासतो धर्म नहीं है वहतो राज्य लीलाका सुख भोगतेहैं। तुम्हारे पास कुछ धर्महै या नहीं, तब मरीचिने उसको अपने योग्य समझकर अपने स्वार्थवश कहा कि मेरे पासभी धर्महै, ऐसा उत्सूत्र प्ररूपणारूप वचन बोलकर उसको दीक्षा देदी. इसप्रकार उत्सूत्र प्ररूपणाके लेश मात्रसेही एक कोडा कोडी सागरोपम तक संसार भ्रमण का कर्म उपार्जन किया. यह तीसरा भवहुआ। फिर चौरासी लाख पूर्वका आयुष्य पूर्णकरके समाधिसे मृत्यु प्राप्तकरके पांचवें देवलोकमें देवहुआ. यह चौथाभव हुआ। पांचवे भवमें फिर ब्राह्मणहुआ, तापसी दीक्षालेकर अज्ञान तपकर छट्ठे भवमें देवहुआ। सातवें भवमें फिर ब्राह्मणहोकर तापसी दीक्षा लेकर आठवें भवमें देवहुआ. फिर नवमें भवमें ब्राह्मण, इस प्रकारसे यह क्रम सोलहवें भवतक रहा. उसके बाद कितनेही छोटे २ भव किये. सत्तरहवें भवमें राजगृही नगरीमें चित्रनंदी राजाके प्रियंगु राणीके विशाखनंदी पुत्रथा और राजाके छोटेभाई युवराज विशाखभूतिके धारिणी राणीके मरीचिका जीव विश्वभूति नामक पुत्र हुआ, विश्वभूतिका योवनावस्थामें विवाह हुआ, वह अपनी स्त्रियोंके संग राजवाडीमें क्रीडा करनेलगा, एक

समय उसके भाई राजपुत्र विशाखनंदीने उसे क्रीडाकरतेहुए देखकर विचार किया कि युवराजका पुत्रहोकर राजबाडीमें क्रीडा करताहे किंतु मैं राजपुत्र होनेपरभी यहां क्रीडा नहीं करसकता, अब मैं इसको यहांसे हटाकर अपनी स्त्रियोंके संग यहां क्रीडाकरूं, ऐसा विचारकर पिताके पास राजवाडी मांगी, तब राजाने विश्वभूतिको बाडीसे निकालनेके लिये प्रयाण भेरी बजवाई और उद्‌घोषणा करवाई कि सिंहनामक राजापर चढाई करने के लिये राजा जाताहे, यह सुनकर विश्वभूति राजाके पास आया और छोटासा तुच्छराजापर आपको जाना योग्य नहीं, मैं जाकर उसको बांधकर आपकेपास लाऊंगा, ऐसा कहकर सेनालेकर चलपडा, पीछेसे राजाने विश्वभूतिके अंतःपुरको बाडीसे निकालकर बाडी अपने पुत्रको सौंपदी, वहां अपनी स्त्रियोंके साहित राजकुमार क्रीडाकरने लगा। विश्वभूति भी सिंह राजाको जीवित पकडकर राजाके पासलाया, तब उसकी बडी प्रशंसा होनेलगी. जब वह अपनी स्त्रियोंके संग बाडीमें क्रीडाके लिये जानेलगा तो उसको राजकुमारके सेवकोंने रोका और कहा कि बाडी तो विशाखनंदीको राजाने देदीहे। तब विश्वभूतिको राजाका कपट भाव ज्ञात हुआ और उसको वैराग्य उत्पन्न होगया, विचारने लगा कि संसार असार, मनुष्य मोह ग्रहस्थहैं, इस अपकारी मोहको

धिक्कारहो, इस प्रकार विरक्त होकर अपना बल दिखलानेके लिये बाडीके द्वार पर 'कवीठ' के वृक्षके एक मुष्टिका प्रहार कर सबफल गिरादिये, और बोला कि जितना समय मुझे फलोंके गिरानेमें लगाहै उतनेमें मैं वैरीका नाशकर सकताहूं, परन्तु लोकापवादसे डरताहूं ऐसा कहकर साधुओंके पास जाकर दीक्षा ग्रहण करली, बहुत बडा तप करने लगा, एक समय विहार करते हुए मथुरा नगरीमें मासक्षमणके पारणे आहार लेनेको जातेथे, मार्गमें एक नवीन प्रसूति गायने इनको गिरादिया, उससमय अपनी ससुरालमें आये हुए विशाखनंदीने इनको गोखडेमेंसे देखा और इनके पहलेके बलका उपहास किया, यह सुनकर विश्वभूतिने विशाखनंदीको पहचान करके अंहकारसे अपना बल दिखलानेके लिये गायको सींगसे पकडकर अपने सिरपर घुमाकर फिर पृथ्वीपर रखदी और कहनेलगे कि मेरा बल कहींभी नहीं गयाहै। यदि मेरे तपका फल हो तो मैं भवांतरमें तुझे मारनेवाला होऊँ। इसप्रकार नियाणा (प्रतिज्ञा) करके एक क्रोड वर्षतक चारित्र धर्मका पालन करके अंतसमयमें अनशन करके अट्ठारहवें भवमें देवहुए. इस अवसरमें पोतनपुर नगरमें प्रजापति राजाकी धारिणी राणीके चार स्वप्न सूचित 'अचल' नामक पुत्रहुआ और मृगावती नामकी कन्याथी। जबपुत्री

विवाहके योग्य हुई तब राणीने उसको सोलह श्रृंगार कराकर राजाके पास राज सभामें भेजी, राजाउसको देखकर चंचल होगया और लोकापवाद निवारणके लिये सभाके लोगोंसे पूछा कि संसारमें उत्तम रत्न हो उसका मालिक कौन होताहे, तब सबने कहा कि उत्तम रत्न तो राजाके ही योग्यहे, ऐसी युक्तिकरके उसने मृगावतीसे पाणी ग्रहण करलिया और सुख भोगने लगा, अब विश्वभूतिका जीव देव लोकसे आकरके मृगावतीके गर्भमें उत्पन्नहुआ, उस समय मृगावतीने सात स्वप्न देखे, पुत्रका जन्महुआ, त्रिपृष्ठ नाम रक्खा. अनुक्रमसे बडाहुआ. इस अवसरमें शंखपुर नगर के समीप तुंगिया पर्वतकी गुफामें विशाखनंदीका जीव सिंहपने उत्पन्न हुआ, उस पर्वतके निकट अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवका शालीक्षेत्रथा। उसकी रक्षाकेलिये मनुष्य वहांपर रहते उनको सिंह मारडालताथा इसलिये प्रतिवासुदेवने प्रजापति राजाको रक्षाकी आज्ञादी तब त्रिपृष्ठ अपने बडेभाई अचलके संग पिताकी आज्ञालेकर शस्त्रोंको धारण करके रथमें बैठकर उसकी रक्षाके लिये सिंहकी गुफाके पास पहुँचा, सिंहभी रथका शब्द सुनकर बाहर आया, त्रिपृष्ठने निःशस्त्रवाले सिंहके सामने शस्त्रोंसे युद्धकरना उचित नहीं समझकर आपनेभी सब शस्त्र छोडदिये, रथसे नीचे उतरगये, सिंहभी त्रिपृष्ठके

उपर झपटकर आया तब उसने सिंहके दोनों होठोंको हांथसे पकडकर जीर्ण वस्त्रके सदृश चीर दिया और उ-सको पृथ्वी पर फेंकादिया परन्तु सिंहका जीव नहीं निकला, तब पासमें खडेहुए सारथीने कहा कि हे सिंह! जैसे तू मृगराजहै वैसेही यह तेरेको मारनेवालाभी नरराजहै, सामान्य पुरुषने तेरेको नहीं माराहै, यह सुनकर सिंह मरकर नर्कमें गया। फिर त्रिपृष्ठने अश्वग्रीव प्रतिवासुदेवको मारा और वासुदेव पदवी प्राप्त की. एकसमय त्रिपृष्ठ वासुदेव सोताथा उस समय विदेशसे आये हुए गवैये गायन कररहेथे, त्रिपृष्ठने शय्यापालकको आज्ञा दी कि मुझे निंद्रा आजाय तब गाना बन्द करदेना परंतु शय्यापालकने गायन सुननेके लोभसे गवैयोंका गान बंध नहीं किया जब वासुदेवकी निद्रा भंग हुई तब गीतोंको सुनकर शय्यापालकसे पूछा कि तेने इनका गाना क्यों नहीं बन्द किया, उसने उत्तरदिया कि इनका गाना कानोंको सुखदाई होनेसे मैंने बन्द नहीं किया, इससे वासुदेवको बडा क्रोधआया जिससे शय्यापालकके कानोंमें पिघलाहुआ कथीर डलवाया वह मरकर नरकमें गया। इसके बाद वासुदेवभी ८४ लाख वर्षका आयुष्य पूर्णकरके मरकर वीसवें भवमें सातवीं नरकमें गया। वहांसे इक्कीसवें भवमें सिंह हुआ. बाईसवें भवमें चौथी नरकमें गया। नरकसे निकलकर कितनेही छोटे २

भवकिये। तेईसवें भवमें महाविदेह क्षेत्रकी मुंका नगरीके धनंजय राजाके धारिणी राणीकी कुक्षीसे मरीचि के जीवने चौदहस्वप्नसे सूचित जन्म लिया, 'प्रियामित्र' नाम रक्खा, योवनास्थाको प्राप्त हुआ, तब चक्रवर्ती के भवमें त्रुटितांग * संज्ञा विशेष आयुष्य पालकर अन्त अवस्थामें दीक्षाली और एक करोड वर्षतक चारित्र धर्मका पालन करके समाधि मरणसे सातवें देवलोकमें सत्तरह सागरोपमकी आयु वाले चौवीसवें भवमें देवहुए. पच्चीसवें भवमें इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें छत्रागा नगरीमें 'नंदन' नामक राजाहुए, चौवीसलाख वर्ष तक गृहस्थाश्रममें रहकर पोटिलाचार्य गुरुके पास दीक्षा ग्रहणकी, एक लाख वर्षतक निरंतर मास क्षमण की तपश्चर्याकरके वीस स्थानककी आराधनाकी, तीर्थंकर नाम कर्म बांधा, चारित्र पालकरके आयुष्य पूर्ण होने

---

* पांचवर्षका एकयुग, चौरासी लाखवर्षोंका एकपूर्वांग, चौरासीलाख पूर्वांगका एकपूर्व, चौरासी लाख पूर्वोंका एक त्रुटितांग कहा है. उसके ५९ लक्ष कोटाकोटी, २७ हजार कोटाकोटी और ४० कोटाकोटी वर्ष होते हैं (५९२७४००००००००००००००००). और असंख्य वर्षोंका एक पल्योपम होताहै, दश कोटाकोटी पल्योपम जानेसे एक सागरोपम होताहै, जिसतरह समुद्रके जलके बिंदुओंकी गिनती नहीं होसकती, उसीतरह सागरोपमके वर्षोंकीभी गिनती नहीं होसकती और वीस कोटाकोटी सागरोपमका एक कालचक्र होताहै, ऐसे अनंत कालचक्र इस संसारमें होगयेहैं।

पर छब्बीसवें भवमें दशम देवलोकके पुष्पोत्तर प्रधान पुडंरीक नामक विमानमें वीस सागरोपमकी आयुवाले देवहुए । और सत्ताईसवें भवमें महावीरस्वामी भगवान् हुए,

भगवान् मति-श्रुति-अवधि यह तीन ज्ञान सहितथे देवविमान से मेरा च्यवन होगा ऐसा जानतेथे परंतु च्यवन समय बहुत सूक्ष्म होनेसे उस समय नहीं जानसके किन्तु माताके गर्भमें आये बाद जानलिया कि मेरा यहां आना हुआहे. जिस रात्रिको श्रमण भगवन् महावीरस्वामीने जालंधर गौत्रकी देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षिमें अवतार लिया, उस रात्रिमें देवानंदाने कुछ निद्रालेते और कुछ जाग्रत, ऐसी अर्ध जाग्रत दशा में हाथी १, वृषभ २, सिंह ३, लक्ष्मी ४, पुष्पोंकी दो माला ५, चन्द्रमा ६, सूर्य ७, ध्वजा ८, पूर्णकलश ९, पद्मसरोवर १०, क्षीरसमुद्र ११, देव विमान १२, रत्नोंकी राशी १३ और निर्धूम अग्नि शिखा १४. यह उदार, प्रधान, कल्याणके करनेवाले, उपद्रवके हरनेवाले, धनकी वृद्धिकरनेवाले, मंगलजनक, शोभायुक्त चौदह महास्वप्न देखकर जाग्रतहुई, अत्यंत हुल्लास और संतोषहुआ, उनका चित्त वर्षाकीधारासे प्रफुल्लित कदंबके पुष्प के सदृश्य अत्यन्त प्रफुल्लित हुआ, साढेतीन करोड रोम राई पुलकायमान होगये । स्वप्नोंको अनुक्रमसे याद

करके, शय्यासे उठकर राज हँसिनीकी गतिसे मंद २ चलतीहुई तीव्रता या चपलता रहित अविलंबपने अपने पति ऋषभदत्त ब्राह्मणके पासमें आकर जय विजयके मांगलिक शब्दोंसे जाग्रत करके भद्रासनपर बैठकर शांति और स्वस्थताके साथ दोनों हाथ जोडकर मस्तकसे आवृत करके विनय सहित इस प्रकार बोलनेलगी कि हे स्वामिन् ! आजरात्रिको अर्ध जाग्रत दशामें मैंने गजसे लेकर निर्धूम अग्नि शिखा तक उदार, प्रधान, यावत् शोभायुक्त यह १४ महास्वप्न देखेहैं, इसलिये हे देवानुप्रिय ! इन चौदह महास्वप्नोंका मेरेको कल्याणका करने वाला क्या फल मिलेगा ? देवानंदाके ऐसे उत्तम वचन सुनकर ऋषभदत्त ब्राह्मणभी बडाहर्षित–आनंदितहुआ, वर्षाकी धारसे प्रफुल्लित कदंबक पुष्प जैसा इनका हृदय प्रफुल्लित हुआ, रोम राई हर्षसे खडे होगये, स्वप्नोंको अनुक्रमसे मनमें याद करके उनके अर्थका विचार कर अपनी अच्छी मतिसे, स्वप्न शास्त्रानुसार बुद्धिपूर्वक स्वप्नोंके अर्थका निर्णय करके देवानंदाको इस प्रकारसे कहने लगा कि हे देवानुप्रिय ! उदार, प्रधान, उपद्रव हरनेवाले, धन्य–मंगल–कल्याण करनेवाले, शोभायुक्त, लक्ष्मी–आरोग्य–तुष्टि–दीर्घ आयुष्य कारक महान् उत्तम स्वप्न तुमने देखेहैं, उसका फल सुनो, इन स्वप्नोंके देखनेसे धनका लाभ होगा, भोगका लाभ होगा,

पुत्रका लाभ होगा, सुखका लाभहोगा, और निश्चय करके नवमहिनोंके ऊपर साढे सात दिन जानेपर सुकुमाल हाथ पैर वाला, संपूर्ण पंचेंद्रिय शरीरवाला, परिपूर्ण सर्वांग सुन्दर, चन्द्रकी तरह सौम्य आकार वाला, प्रिय, दर्शनीय, सुन्दर रूपवाला, देवकुमारके समान उत्तम लक्षण सहित तुम्हारे श्रेष्ट पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी।

उसके नख १ हाथ २ पैर ३ जीभ ४ होठ ५ तालु ६ और नेत्रका अंतिम भाग ७ यह सात लाल होंगे, कांख १ ठोडी २ नाक ३ नख ४ मुख ५ हृदय ६ यह छः उन्नत होगें, दांत १ केश २ अंगुली पर्व (अंगुलियोंकी रेखायें,) ३ चर्म ४ नख ५ यह पांच पतले होंगे, नेत्र १ वक्षस्थल २ नाक ३ डाढी ४ भुजा ५ यह पांच दीर्घ और लम्वे होंगे, ललाट १ स्वर २ मुख ३ यह तीन विस्तीरण होंगे, जांघ १ लिंग २ जिव्हा ३ यह तीन लघु होंगे और स्वर १ नाभि २ धैर्य ३ यह तीन गंभीर होंगे। इस प्रकार ३२ लक्षण होंगे तथा मान, उन्मान, प्रमाणसे पूर्णहोगा (जलके भरेहुए कुण्डमें पुरुषको बैठानेसे २५६ पल जल निकले उसको मानोपेत कहतेहैं, तथा तोल करनेपर अर्धभार प्रमाणे हो उसको उन्मानोपेत कहतेहैं और १०८ अंगुल प्रमाणे ऊंचा शरीरवाला हो वह प्रमाणोपेत कहाजाताहै) और ललाट, नासिका, दाढी, गर्दन, हृदय, नाभि, गुह्य, मस्तक, गोडा, जांघ,

हाथ, पैर आदिमें शुभ लक्षण वाले मशे तिल होंगे तथा औदार्य, धैर्य, गांभीर्यादि गुणों सहित होगा। फिर हे देवानुप्रिय ! जब वह आठवर्षका होगा तब विज्ञान देखतेही जानलेगा, जब यौवनावस्था आयेगी तब ४ वेद, ४ उपवेद, १८ पुराण, १८ स्मृति *, इतिहास, निघण्टु नाममाला आदि ग्रन्थोंका समुदाय अंग, उपांगका भावार्थ परमार्थ सहित जानने वाला होगा। ६० प्रकारके तांत्रिक कापालिक योगियोंका शास्त्र, संख्या शास्त्र, लीलावती आदि शिक्षा शास्त्रोंमें विशारद होगा। आचार ग्रंथ, आठों व्याकरण, छदं शास्त्र, निरूक्त पद भंजन, ज्योतिष् शास्त्र—उत्तरायण, दक्षिणायन तथा औरभी ब्राह्मणोंके, परिव्राजकोंके शास्त्रोंमें प्रवीण होगा, इसलिये तैंने जो स्वप्न देखे हैं वह बहुत श्रेष्ठ, आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायु करनेवाले मंगलकारक हैं। इस प्रकारसे

---

* ऋगवेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, यह चार वेद. तथा धनुर्वेद आयुर्वेद, गांधर्ववेद, अध्यात्मवेद यह चार उपवेद. और ब्रह्मपुराण, अंभोरूह, विष्णु, वायु, भागवत्, नारद, मार्कंडेय, अग्निदेवत, भविष्यत्, ब्रह्म-वैवर्त, लिंग, वाराह, स्कंद, वामन, मत्स्य, कुर्म, गरुड, और ब्रह्मांड पुराण, यह १८ पुराण. तथा मानवी स्मृति, आत्रेयी, वैष्णवी, हारीति, यांज्ञवल्की, औशनसी, आंगिरसी, प्रयामी, आपस्तंबी, सांवर्ती, कात्यायनी, बार्हस्पती, पाराशरी, सांखी, दाक्षी, गौतमी, शांतातपी, और वासिष्टी यह १८ स्मृति.

स्वप्नोंकी बारम्बार प्रशंसा करने लगा। देवानन्दा ब्राह्मणीभी उन स्वप्नोंके फलोंको चित्तसे श्रवण करके, मनमें याद रखके, दोनों हाथ जोड़कर अपने पतिसे कहने लगी कि हे देवानुप्रिय ! आपने जो अर्थ बतलाया है वह बिल्कुल सत्यहै इसमें किसी प्रकार संदेह नहीं है, मै भी ऐसाही चाहती हूं इसप्रकार कहकर फिर अनुक्रमसे ऋषभदत्त ब्राह्मणके साथ मनुष्य संबंधी काम-भोग, विषय सुख भोगतीहुयी सुखसे रहनेलगी।

यहां पर ११ वाचनाकी अपेक्षासे दूसरा व्याख्यान संपूर्ण होता है और नव वाचनाकी अपेक्षासे प्रथम व्याख्यान संपूर्ण होता है।

अब दूसरा व्याख्यान कहते हैः—तिसकाल और तिस समयमें शक्रनामक सिंहासनपर बैठनेवाले शक्र, देवों में इन्द्र अर्थात्—देवोंका राजा, हाथमें वज्र धारण करने से वज्रपाणि कहते हैं, शत्रुके नगरका विदारण करनेसे पुरंदर भी कहते हैं, यहांपर 'शतक्रतु' नाम कहलानेका सम्बन्ध बतलातेहैं।

हस्तिशीर्ष नगरमें जितशत्रु राजा राज्य करताथा, उसमें एक प्रसिद्ध और धनवान् कार्त्तिक सेठ सम्यक्त्व धारी परम श्रावक था, उस नगरमें गैरीक नामक तपस्वी मास खमणका तप करनेवाला आया नगरके सब

मनुष्य उसकी सेवाके लिये आये किन्तु कार्त्तिक सेठ नहीं आया, तपस्वीको यह बात मालूम होनेसे सेठपर बहुत क्रोधित हुआ, एकदिन राजाने तपस्वीको भोजनका निमंत्रण दिया तब तपस्वीने कहा कि जो कार्तिक सेठ तुम्हारे घर अपने हाथसे क्षीरका भोजन करावे तो मैं आऊँ, अन्यथा नहीं, राजाने सेठसे तपस्वीको उपरोक्त विधिसे भोजन करानेकी आज्ञादी, सेठने विचार किया कि यदि आज्ञा नहीं मानता हूँ तो राजा अप्रसन्न होगा इसलिये राजाकी आज्ञासे तपस्वीको अपने हाथसे भोजन करवाया, तब तपस्वी नाकपर अंगुली फेरता हुआ सेठसे कहने लगा कि जैसे तू धृष्टहुआ, वैसेही यह पराभव सहन कर, सेठने उस समय विचार किया कि जो मैं प्रथमही दीक्षा ग्रहण करलेता तो किसलिये मिथ्यात्वीका पराभव सहन करना पड़ता, इसप्रकार वैराग्यसे घर आकर एकसहस्र पुरुषोंके संग वीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रतस्वामी के पास दीक्षा अंगीकार करली। बारह वर्षतक चारित्र पालनकर सौ बार अभिग्रह विषेश तप करके, अन्तमें समाधि मृत्यु प्राप्त करके, पहले देवलोकमें इन्द्र हुआ। गैरीक तपस्वीभी मृत्यु प्राप्त करके इन्द्रका ऐरावण नामक हाथीहुआ। हाथी अवधि ज्ञानसे अपने व इन्द्रके पूर्वभवको ज्ञात करके भगा, इन्द्रभी अवधिज्ञानसे अपना पूर्वभव ज्ञात

करके उस हाथीपर सवार हुआ, हाथीने क्रोधसे दो, तीन, चार आदि शरीर किये, इन्द्रनेभी उतनेही शरीर बनाये और हाथीसे कहने लगा कि हे अज्ञानी! अपने किये कर्मसे कोईभी नहीं छूटता, किसलिये खेद करताहै, अपने किये हुए कर्मोंका फल भोग। तेने पूर्वभवमें मेरा अपमान कियाथा, यह उसका फलहै, यह सुनकर हाथीका क्रोध जाता रहा और वह इन्द्रका वाहन होगया। इन्द्रने कार्त्तिक सेठके भवमें सौ वार तप विशेष अभिग्रह धारण कियेथे उससे उसका नाम 'शतक्रतु' भी प्रसिद्धहै, इन्द्रके पांचसौ मंत्रीहैं. उनके सहस्र नेत्रहुए इस कारणसे इन्द्रको सहस्र नेत्रवाला कहते हैं *, इन्द्रके मघवा नामक देव सेवक होनेसे इन्द्रभी मघवा कहा

* लौकिकमें इन्द्रके सहस्र नेत्र होने सम्बन्धी ऐसी वात प्रसिद्ध है कि गौतम ऋषिकी पत्नी अहिल्या के संग इन्द्रका प्रेम होगया था, गौतम ऋषि जब कुकडा बोलता तब स्नान करनेको चला जाताथा, एक समय बहुत रात्रि होनेपर भी चन्द्र कुकडा बनकर बोलने लगा, ऋषि स्नान करनेको चलेगये, तब इन्द्रने आकर अहिल्या के संग काम क्रीडा की. गंगाने पूछा ऋषि आज जल्दी क्यों आगये, ऋषिने जवाब दिया कि कुकडा बोलनेपर आयाहूं तब फिर गंगाने कहा कि आज रात्रि बहुत है आपको छल (कपट) से भ्रम में डालाहै जल्दी चलेजाओ, ऋषिजी स्नान करके शीघ्रतासे पीछे लौटे कुकडेको देखकर क्रोध आया उसपर गीली धोतीके छींटे डाले उससे चन्द्रमें कलंक होगया और इन्द्रको भी श्राप दिया कि तेरेको भग प्यारा है तो हजार भग वाला हो, जिससे इन्द्रके सब शरीरमें हजार

जाताहै, पाक नामक दैत्यका साधन करनेसे पाकशासन कहलाताहै, इन्द्र दक्षिणार्द्ध लोकका स्वामी, बत्तीश लाख विमानोंका अधिकारी, ऐरावण हाथीका वाहन रखनेवाला, देवोंमें हर्ष करनेवाला, निर्मलवस्त्रका धारण करने वाला, पुष्पमालायुक्त सिरपर मुकुट धारण करनेवाला, कानोंमें नवीनस्वर्णके चंचल कुंडल गलेतक आयेहुये पहननेवाला, महान् ऋद्धि वाला, महत्द्युति वाला, बहुत बल शाली, महान् यशस्वी, अत्यन्त आनन्द सुखवाला, दिव्य कान्तिवाला, लम्बी पांच वर्णोंके पुष्पोंकी मालासे शोभित, सौधर्मा नामक देवलोकमें, सुधर्मानामक सभामें शक्र नामक सिंहासनपर बैठने वालाहै, उसकी चौरासी हजार देवता सेवा करतेहैं, वह देवभी इन्द्रके सामानिकहैं, वह इन्द्रके समान ऋद्धिवालेहैं. तेतीस देवता इन्द्रके पुरोहितहैं, सोम, यम, वरुण, कुबेर यहचार लोकपालहैं, पद्मा, शिवा, शची, अंजू, अमला, अप्सरा, नवमिका और रोहिणी नामकी आठ इन्द्राणियाँ हैं, एक २ इन्द्राणीके सोलह सोलह हजार देव सेवकहैं, इस प्रकार कुल आठ इन्द्राणियोंके

भग होगये, शर्मसे सभामें नहीं आसका, जब मंत्रियोंने विनती करके ऋषिको प्रसन्न किया तब संतुष्ट होकर सहस्र लोचन करदिये तबसे इन्द्र सहस्र लोचन वाला कहलाता है।

एकलाख अट्ठाईस हजार देव सेवक होतेहैं, बाह्य, मध्य, और अभ्यन्तर यह तीन पर्षदाहैं. हाथी, घोड़ा, रथ, पैदल, वृषभ, नाटक और गंधर्व, यह सात सैनाएं हैं, इनके सात स्वामीहैं। चौरासी सहस्र देव एक २ दिशा में, शस्त्रसहित सावधान इन्द्रकी सेवा करतेहैं, इसप्रकार चारों दिशाओंके तीनलाख छत्तीस हजार देव होते हैं, यह इन्द्रके आत्म रक्षक कहलातेहैं, हमेशा इन्द्रकी सेवा करतेहैं, सौधर्मा देवलोकमें औरभी देव और देवांगनायें रहतीहैं, उनकी इन्द्र रक्षा करताहै, उनका अग्रगामी, स्वामी, पोषक, गुरुके समान आज्ञा देनेवाला और ऐश्वर्यपद पालकहै तथा तंत्री, वीणा, ताल, कंशाल, तूर्य, शंख, मृदंग आदि वाजिंत्र मेघके गर्जारव के सदृश गंभीर शब्दसे बजतेहुये उसके कानोंको सुख देतेहैं, नाना प्रकारके नाटक उसका मनोरंजन कहतेहैं और देव सम्बन्धी भोगोंको भोगता हुआ रहताहै. वह विस्तीरण अवधि ज्ञानसे जबूंद्वीपके दक्षिणार्ध भरत क्षेत्रमें माहणकुंड नगरमें कोडाल गौत्रके ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालंधर गौत्रकी देवानन्दा ब्राह्मणकी कुक्षिमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको अवतरित हुए देखकर बहुत हर्षितहुआ, उसका चित्त आनन्दसे परिपूर्ण होगया, हृदयमें प्रेम और भक्ति जाग्रत हुई, वर्षाकी धारासे कदंब पुष्पकी तरह रोम २ हर्षायमान हुये, कमलके

समान नेत्र विकसित हुए, अकस्मात् सिंहासन परसे उठकर खडा होगया, उस समय कडे-बाजुबंध-मुकुट-कुंडल और मोतियोंके गुच्छोंवाले लम्बे २ हार आदि आभूषण चलायमान हुये और पाद पीठ पर पैर रखकर सिंहासनसे नीचे उतरा, वैडुर्य अरिष्ट व अंजनादि रत्नोंकी अच्छे कारीगरकी बनाई हुई पावडी उतारकर एक अखंड उत्तम श्वेतवस्त्रका उत्तरासन किया और दोनों हाथ जोडकर तीर्थंकर भगवान्‌के सन्मुख सात आठ कदम गया, बायें गोडेको कुछ झुकाकर दाहिना गोडा पृथ्वीपर लगाकर अपना मस्तक नमाकर सर्व आभरणोंसे स्तंभित दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार सत्य अर्थ वाली स्तुति करने लगा।

णमुत्थु णं अरिहंताणं भगवंताणं ॥ १ ॥ आइगराणं तित्थयराणं सयंसंबुद्धाणं ॥ २ ॥ पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुंडरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं ॥ ३ ॥ लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपइवाणं लोगपज्जोअगराणं ॥ ४ ॥ अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं ॥५ ॥ धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं ॥ ६ ॥ दीवोताणं सरण गइ पइट्ठा अप्पडिहयवरनाणदंसणधराणं विअट्टछउमाणं ॥ ७ ॥ जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं

बोहंयाणं, मुत्ताणं मोअगाणं ॥ ८ ॥ सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत-मक्खय-मव्वा-बाह मपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमो जिणाणं जियभयाणं ॥ ९ ॥ इस शक्रस्तवमें ९ संपदा, ३३ पद, ३३ गुरु अक्षर, २६४ लघु अक्षर सर्व मिलकर २९७ अक्षर हैं।

अर्हंतों को नमस्कार हो, जो इन्द्रादिककी पूजाके योग्य हो, वह 'अरहंत' तथा आठ कर्मरूपी शत्रुओंको जीतनेसे 'अरिहंत' और मुक्ति गये बाद संसारमें नहीं उत्पन्न हो उसे 'अरूहंत' कहते हैं, ऐसे अर्हंतोंको मेरा नमस्कार हो, वह अर्हंत भगवंत् हैं, ज्ञान, महात्म्य, यश, वैराग्य, मुक्ति, रूप, इच्छा, धर्म, श्री, और ऐश्वर्य आदि अनेक अर्थ युक्त भगवंत्को मेरा नमस्कार हो, वह अरिहंत–भगवंत् अपने २ शासनकी आदि करनेवाले हैं, चतुर्विध संघरूप तीर्थकी स्थापना करनेवाले हैं, किसीके उपदेश बिनाही बोध पायेहुए हैं, पुरुषोंमें उत्तम हैं, अष्ट कर्मरूपी हाथियोंका नाशकरने में सिंह समान हैं, पुरुषोंमें प्रधान पुंडरीक कमलके समान हैं, जैसे कमल कीचडमें उत्पन्न होता है, जलसे बढता है किन्तु दोनोंको छोडकर अलग रहता है, उसी प्रकार तीर्थंकर भी संसाररूप कीचडमें उत्पन्न होते हैं, भोगरूप जलसे बढते हैं, किन्तु दोनोंसे अलग रहते हैं,

अरिहंत पुरुषोंमें प्रधान गंध हस्तीके समानहैं, जैसे गंध हस्तीकी गंधसे अन्य हाथी भयसे भागजातेहैं, उसी प्रकार तीर्थंकर जहां विचरते हैं, वहां अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहोंका–पतंगियोंका–पक्षियोंका तथा स्वचक्र–परचक्र का उपद्रव आदि सब नष्ट होजाते हैं, भगवान् लोकमें उत्तम हैं, लोकके स्वामी हैं, लोगोंके हितकारी हैं, पंचास्तिकायकी सत्य प्ररूपणा करनेसे हितकारी कहेजाते हैं, अरिहंत लोकमें दीपकके समानहैं और केवल ज्ञान व केवल दर्शनसे चौदह राज लोकमें उद्योत करनेवाले हैं, सब जीवोंको अभय देनेवाले हैं, इहलोक–परलोक–आदान–अकस्मात्–आजीविका–मरण–अपकीर्ति यह सात भय के निवारक हैं, तत्त्वरूप लोचन के देनेवाले हैं, मोक्षमार्ग के बतलाने वालेहैं, सब जीवोंको अपने शरणमें रखनेवाले हैं, जीवों पर दया करने वाले हैं अथवा सम्यक्त्व रूप जीवितव्यके देनेवालेहैं, सम्यक्त्वरूप बोधि बीजके देनेवालेहैं, धर्मके दायक हैं, धर्मकी देशना देनेवाले हैं, धर्मके स्वामी हैं, धर्मके सारथी हैं, जैसे सारथी मार्गभ्रष्ट घोडोंको प्रेरणा करके मार्ग में ले आता है, वैसेही भगवान् भी धर्म मार्गसे भ्रष्ट जीवोंको धर्म वचनोंसे प्रेरणा करके धर्म मार्गमें लाते हैं, मेघकुमार की तरह। अब उसका दृष्टान्त बतलाते हैं:—

राजगृही नगरीमें श्रेणिक राजाके धारिणी राणीको गर्भके प्रभावसे अकाल समय में वर्षाकाल का दोहला (मनोर्थ) उत्पन्न हुआ, मैं हाथीपर बैठकर नगरमें फिरकर पर्वत—बगीचा—नदी—सरोवरमें क्रीडा करूं, उस समय बडी २ छांटोंसे वर्षा वर्षे, मेघ गर्जना करे, विजली चमके, मेंढक—म्यूर बोलें, पर्वतसे नदीमें पानीका प्रवाह चले. इस प्रकारका मनोर्थ पूर्ण न होने से धारिणी दुबली होने लगी, श्रेणिक राजाने कारण पूछा तब उसने अपना मनोर्थ प्रकट किया, राजाने उसको पूर्ण करने के लिये अभय कुमारको कहा, अभयकुमारने पूर्व संगतिदेवका आराधन करके धारिणीका दोहद पूर्ण कराया, नव महीने पुत्रका जन्म हुआ उसका नाम 'मेघकुमार' रक्खा गया, यौवनावस्था प्राप्तहोनेपर आठ राजकुमारियोंसे पाणिग्रहण करवाया, उन राजकुमारियोंके माता—पिताने उनको आठ करोड सौनेये आदि आठ २ तरहकी बहुत ऋद्धि दी, वह यौवनावस्थाके सुख भोगने लगा. एक समय महावीर स्वामी राजगृही नगरीके उद्यानमें समोसरे, श्रेणिकराजा, मेघकुमार आदि सब भगवान्को वन्दना करनेके निमित्त गये, वहां भगवान्का उपदेश सुनकर मेघकुमारने सर्व परिग्रहका त्यागकर, माता-पिताके निषेध करने परभी दीक्षा अंगीकार की, ओघा व पात्रोंको लेकर महावीर प्रभुका

शिष्य हुआ, रात्रिमें छोटा साधु होनेके कारण सब साधुओंके अन्तमें संथारा किया तब रात्रिमें साधुओंके कायचिंतादिके लिये जाने आनेसे पैरोंका संघट्टा होनेसे मेघकुमार मुनिको बहुत कष्टहुआ, शरीर धूलिमें भरगया क्षण भरभी निंद्रा नहीं आयी, उस समय मेघकुमारने विचार किया कि मेरे दिन दीक्षामें कैसे कटेंगे, आजही साधुओंने मेरा आदर नहीं किया तो आगे कैसे करेंगे, विवाहके समयमें ही यदि स्त्री-भरतारके लड़ाई हुयी तो आगे सुखकी क्या आशाहै, इसलिये प्रातःकालमें महावीर स्वामीसे पूछकर मेरे घर चला जाऊँगा, अभी मेरा कुछभी नहीं बिगड़ा है, माता, पिता, स्त्री आदि सब यहां ही हैं यह विचारकर प्रभातमें मेघकुमार महावीर स्वामी के पासआया; तब महावीरस्वामीने कहा कि हे मेघकुमार ! तुमने रात्रिको क्या विचार किया, साधुओंने तुमको क्या दुःखदिया जिससे इतना अधीर होगया, तुम इसभवसे तीसरे पूर्वभवमें वैताढ्य पर्वतके निकट सहस्त्र हथनियोंके परिवारका स्वामी 'सुमेरुप्रभ' नामक छः दांतवाला श्वेतवर्णका हाथी था, एक समय तुम दावानल के भयसे भागा किन्तु कीचड़में फंस गया उस समय तेरे वैरी हाथीने तेरेको दांतोंसे प्रहार किया, उसकी महा वेदनाको सात दिवसतक भोगकर, सौवर्ष का आयुः पूर्णकर विंध्याचल पर्वतमें चारदांत वाला 'मेरुप्रभ' नामक

लालरंग वाला हाथी सातसौ हथनियोंका स्वामीहुआ, वहां फिर दावानल देखकर जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्नहुआ तब अपनी रक्षाकेलिये चारकोस प्रमाणे मंडल बनाया उसमें घासादि उत्पन्न होतेथे उनको उखाडकर फेंकदेता था जब उष्णकालमें फिर दावानल लगा तो भयसे भागकर उस मंडलमें आया। वह मंडल पहलेसे ही भय भीत जीवोंसे भरगयाथा तुमको बैठनेका स्थान नहीं मिला, तब एक जगह खडा रहा, उतने ही में वहां एक भय भीत शशक (खरगोश) आया और तुमने उसी समय खाज खुजाने को पैर उठाया, वह उस स्थान पर आकर बैठगया, उसको देखकर तुम्हारे मनमें दया आयी और तुमने अपना पांव अधर ही रक्ख लिया। इस प्रकार तीन दिनतक कष्ट सहन किया, जब दावानल शांत हुआ तो सब जीव अपने २ स्थान पर चलेगये तुमने भी अपना पांव नीचा रक्खा, परन्तु तत्काल पर्वतके शिखरके समान तुम्हारा पैर टूटकर गिरपडा, तुमको बहुत वेदना हुई। तीन दिन बाद कालकरके जीव-दयाके प्रभावसे तू मेघकुमार हुआ है। इस लिये हे मेघकुमार! तिर्यंच के भवमें तुमने इतनी भारी वेदना सहन करके जीव दया पाली, इस समय तुमको साधुओंके पैर स्पर्श होनेसे क्या वेदना होती है, तू अपने मनके परिणामों को चारित्रसे कैसे

चलाता है, चारित्र दुर्लभ है, तिर्यंचके भवमें तो महाकष्ट पाकरके भी दयासे नहीं चुका परन्तु मनुष्य भव पाकर, हमारे बचनसे प्रतिबोध पाकर राज्य ऋद्धिको त्याग कर दीक्षा लेके अब चारित्रमें शिथिल क्यों होता है यह तुम्हारे योग्य नहीं है। मेघकुमार इस प्रकार महावीर स्वामीकी वाणी सुनकर जाति स्मरण ज्ञानसे अपना पूर्व-भव देखकर धर्ममें स्थिर हुआ और उसी समय अभिग्रह धारण किया कि आंखों की संभाल छोडकर शरीरके अन्य भागकी संभाल नहीं करूंगा, ऐसा नियम करके महातप करना आरंभ किया निरतिचार बारह वर्ष तक चारित्र पालनकर, अंतमें पंचानुत्तर विमान में देवहुआ। महाविदेह क्षेत्रमें मनुष्य भवमें दीक्षा लेकर, केवल ज्ञान पाकर मोक्ष जावेगा। इस प्रकार भगवान् धर्मरथके सारथी के समान हैं, तथा धर्मचक्रसे चारों गतियोंका अंत करके मोक्षको प्राप्त हुए हैं, द्वीपके समान रक्षा करनेवाले आधारभूत हैं, संसार सागरमें प्राणियोंकी रक्षा करनेवाले हैं, भगवान्के शरणमें जो आता है वह भय रहित होजाता है और शोभा प्रतिष्ठाको प्राप्त करता है, भगवान् अप्रतिपाति ज्ञान-दर्शनके धारण करनेवाले हैं, छद्मस्थ दशा रहित हैं, आपने राग-द्वेषको जीतलिया है,औरोंको भी राग-द्वेष जीतानेवाले हैं, आप संसार सागरसे तिरे हैं, दूसरों

को भी तारने वाले हैं आप बोध पाये हुए हैं औरोंको बोध देनेवाले हैं, आप कर्म बन्धनसे छूटे हैं, दूसरों को भी छुडानेवाले हैं, आप सर्व पदार्थोंके ज्ञाता सर्वज्ञ और सर्व पदार्थोंके देखनेवाले सर्व दर्शी हैं, शिव (उपद्रव रहित), अचल (स्थिर), अरूज (रोग रहित), अनंत, अक्षय, अव्याबाध (पीडा रहित), वहां जाकर पीछे नहीं लौटे ऐसे सिद्धिगति नामक स्थान पर पहुंच गये हैं, ऐसे सर्व तीर्थंकरोंको मेरा नमस्कार हो, जिन्होंने कर्मरूपी भयको जीतलिया है वे जिन हैं। इस प्रकार इन्द्रने सर्व तीर्थंकरोंकी स्तुति करी.

अब इन्द्र श्री महावीर स्वामीकी स्तुति करताहै। अपने तीर्थकी आदि करने वाले चरम अर्थात्—अंतिम चौवीसवें तीर्थंकर श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीको मेरा नमस्कार हो, पहलेके तीर्थंकरोंसे कथन किया हुआ यावत् मुक्ति जानेकी इच्छा वाले ऐसे हे भगवन्! आप ब्राह्मण—कुंड—नगरमें देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षिमें रहे हुये हैं, मैं आपका सेवक सौधर्म देवलोकमें रहाहुआ आपको वारम्वार नमस्कार करता हूँ, आप मेरेको देखो. इस प्रकार स्तुति करके इन्द्र पूर्व दिशाकी तरफ मुंहकरके सिंहासन पर बैठ गया। उसके वाद इन्द्रने बाहिर किसीसे कहा नहीं, ऐसा मनमें विचार किया यह कभीभी हुआ नहीं, होवेगा नहीं और

होता भी नहीं है कि जिस कारणसे अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अंतकुल (शूद्रोंके कुल) में अधम कुलमें, दरिद्री कुलमें, धनहोने परभी खावेंनहीं ऐसे कृपणोंके कुलमें, भिक्षाचरोंके कुलमें और ब्राह्मणोंके कुलमें कभी आये नहीं, आवेंगे नहीं और आतेभी नहीं हैं, किंतु श्री ऋषभदेव भगवान् ने कोतवालपने स्थापन किये ऐसे उग्र कुलमें, आदीश्वर भगवान् ने गुरु (पुरोहित) पने स्थापन किये ऐसे भोग कुलमें, भगवान् ने अपने मित्रपने स्थापन कियेऐसे राज्य कुलमें और खास भगवान्के इक्ष्वाकु कुलमें तथा ऋषभदेव स्वामीके वंशमें जो कुल हुए हैं उनमें, नाग वंशमें अर्थात्—नाग वंशमें राजा बलवान् होते हैं, मल्लकी राजाओंके कुलमें, कुरु वंशके कुलमें और जिस कुलके माता–पिता शुद्ध हों ऐसे कुलोंमें तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव और वासु-देव उत्पन्न होतेहैं, हुयेहैं और होवेंगे भी। परन्तु अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, अंत, प्रान्त, तुच्छ, दरिद्र, भिक्षाचर, ब्राह्मणादिके कुलोंमें उत्पन्न हों वें तो भावितव्यता के वशसे यह बात लोकमें आश्चर्यकारी है कि इन कुलोंमें तीर्थंकर आदि महापुरुष माताकी कुक्षिमें आये हैं, आवेंगे, और आतेभी हैं, किंतु योनि द्वारा पहले जन्म हुवा नहीं, वर्तमानमें होता भी नहीं और भाविष्यत् में होवेगाभी नहीं, तो भी यह श्रमण

भगवान् श्री महावीर स्वामी चौवीसवें तीर्थंकर ब्राह्मण–कुण्ड–ग्राम–नगरमें ऋषभदत्त ब्राह्मणकी स्त्री देवानंदा जालंधर गोत्र वालीकी कुक्षिमें गर्भपने आकर उत्पन्न हुये हैं, इसलिये इन्द्र विचारता है अतित–अनागत और वर्तमानिक सब इन्द्रोंका यह कर्तव्यहै कि अरिहंतादिको अंत–प्रांतादि कुलोंसे लेकर उग्र–भोगादि कुलोंमें संक्रमण करावें इसलिये मेराभी कर्तव्यहै, मेरे करने योग्य है इसलिये मैं भी महावीर स्वामीको ब्राह्मण कुण्ड ग्राम नगरमेंसे ऋषभदत्त ब्राह्मणकी कोडाल गौत्रकी देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिसे लेकर क्षात्रिय कुण्ड ग्राम नगरमें सिद्धार्थ राजाकी वासिष्ठ गौत्रकी त्रिशला क्षात्रियांणीकी कुक्षिमें संक्रमण कराऊं, इसीसे मेरा कल्याण होगा. और त्रिशलाराणीकी पुत्रीरूपी गर्भको देवानंदाकी कुक्षिमें प्राप्त कराऊं. इसप्रकार विचार कर इन्द्रने 'हरिनैगमेषि' नामक देवको बुलाया और कहने लगा कि हे देवानुप्रिय ! यह बात न हुई, न होवेगी और न होती है कि जो अरिहंत, चक्रवर्ती आदि अंत–प्रांतादि कुलोंमें नहीं आवें, नहीं आये और नहीं आवेंगे, परन्तु उग्र–भोग–क्षात्रियादि कुलोंमें आये, आतेहैं और आवेगें, तोभी अनंत उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी व्यतीत होनेसे आश्चर्यकारी ऐसा बनाव बनताहै। यहांपर वर्तमान कालमें दस अच्छेरे हुये हैं उन्हें बतलाते हैं।

प्रथम अच्छेराः—तीर्थंकरोंको केवल ज्ञान हुए बाद कोई भी उपसर्ग नहीं होसकता परन्तु भगवन् महावीर स्वामीको केवल ज्ञान होनेके पश्चात् समवशरण में उपसर्ग हुआ, कुशिष्य गौशालाने तेजो तोश्या * फेंकी,

* एकसमय वीरभगवन्–श्रावस्ती नगरीमें समोसरे गौशालाभी मैं तीर्थंकर हूं ऐसा कहता हुआ वहां आया, शहरमें दो तीर्थंकरोंके आनेकी प्रसिद्धिहुई गौतमस्वामी गौचरी गयेथे यह बात सुनकर भगवान्के पास आकर पूछने लगे कि यहां दूसरा तीर्थंकर कौनहै? तब भगवान्ने कहा यह तीर्थंकर नहीं किन्तु सरवण ग्राममें मंखली–सुभद्राका पुत्र गौशालामें जन्म होनेसे गौशाला नामकहै पहले मेरा शिष्य होकर कुछ सीखकर अब व्यर्थही तीर्थंकर बनताहै। जब गौशालाकी यह सत्यबात शहरमें प्रसिद्ध होनेपर गौशालाने सुनी तो बडा क्रोधायमान हुआ, उस समय भगवान्का शिष्य आनंद साधु गौचरी गयाथा गौशाला मिल गया बोलने लगा कि हे आनंद! मेरा एक दृष्टांत सुन ले. कई वणिक् द्रव्य उपार्जन के लिये विविधप्रकारके क्रियाणोंके गाडे भरकर विदेश जातेथे, जंगलमें जलकी जरूरत पडी खोज करने लगे वहां उद्देयों के बडे २ चार गीले शिखर देखे, एकको तोडा उसमेंसे अच्छा ठंढा जल निकला सबने पिया और वर्तनभी भरलिये, दूसरा शिखर तोडने लगे तब एक वृद्धने कहा अपना जलका कार्य होगया अब दूसरा क्यों तोडतेहो तोभी न मानकर लोगोंने दूसराभी तोडडाला उसमेंसे बहुत स्वर्ण निकला, वृद्धके मनादि करनेपर भी लोभसे तीसराभी तोडडाला तो उसमेंसे रत्न निकले, फिरभी लोभसे चौथा तोडने लगे वृद्धने बहुत मना किया कि अपना द्रव्य उपार्जनका कार्यभी होगया अब अधिक लोभ मतकरो तोभी वृद्धका कहना न मानकर चौथाभी तोडडाला उसमेंसे दृष्टिविष सर्प निकला उसने अपनी दृष्टिके

भगवान्के सन्मुख सुनक्षत्र, और सर्वानुभूति नामक दो शिष्योंको जलाया, भगवान्के शरीरमें भी रक्त अतिसार हुआ, वह रक्त अतिसार वेदनीय कर्मोदयसे था, किन्तु लोकमें यह प्रसिद्ध हुआ कि तेजो लेश्याकी ज्वाला

जहरसे सबको मारडाला, परंतु हितोपदेश देनेवाले न्यायवान् वृद्ध वणिक्को वन देवताने उठाकर अपने स्थान पहुंचा दिया । इसी-प्रकार हे आनंद ! तुह्मारे धर्माचार्य बहुत संपदा प्राप्त होनेपरभी अधिक लोभसे मेरेलिये जैसे तैसे बोलकर मेरेको नाराज करताहै इस-लिये मैं अपने तपतेजसे भस्म करदूंगा तू शीघ्र जाकर कहदेना, वृद्ध वणिक्की तरह तेरेको नहीं मारूंगा. यह सुनकर आनंदमुनि घबरा-कर भगवान् के पास जाकर सब कहदिया तब भगवान्ने आनंद मुनिको कहाकि तू जाकर गौतमादि सबको सूचना करदे, गौशाला आवे तब उसके साथ भाषण नहीं करना, इधर उधर चले जाना, इतना होनेपर गौशाला आकर भगवान्से कहने लगा कि--यह मंखली-पुत्र गौशालाहै ऐसीबात क्यों कहतेहो वह तुह्मारा शिष्यतो मरगयाहै, मैं तो दूसरा हूं उसका शरीर परिषह--उपसर्ग सहन करनेमें समर्थ जानकर अधिष्ठायक होकर रहाहूं ऐसा भगवान्का अपमान सहन न होसकनेसे सुनक्षत्र--सर्वानुभूति दोनों मुनि गौशालाको जवाब देने लगे, उसने क्रोधसे तेजोलेश्या डालकर दोनोंको जलादिया वे आयुः पूर्णकरके देवलोकमें गये । उसके बाद भगवान् बोले गौशाला, वही तू है दूसरानहीं, जिसतरह कोतवालके सामने अंगुलियोंसे या तृणसे चौर अपनेको नहीं छुपा सकता, उसी तरह तूभी अपनेको नहीं छुपा सकता. ऐसा सत्य सुनकर गौशालाको बडा क्रोध आया भगवान्के ऊपर भी तेजोलेश्या डाली वह भगवान्को तीन प्रदक्षिणा देकर गौशालाके ही शरीरमें पीछी घुसगई शरीरको जलाया और वह सातदिन तक बहुत प्रकारकी वेदना भोग कर मरगया ।

से दाहज्वर (रक्त अतिसार) भगवान्को हुआहै, यह अधिकार 'भगवती' सूत्रके १५ वें शतकमें है।

दूसरा अच्छेराः—गर्भापहार–किसी तीर्थंकरका गर्भापहार नहीं हुआ परन्तु महावीर स्वामीका हुआ इसका विशेष अधिकार आगे आवेगा।

तीसरा अच्छेराः—स्त्री तीर्थंकर–इसी जंबूद्वीपके पूर्व महाविदेह क्षेत्रके 'सलिलावती' विजयमें, 'वीतशोका' नगरी में 'महावल' राजा राज्य करता था, एक समय महाबल राजाने अपने छः वाल मित्रोंके संग दीक्षा ग्रहणकी, इन सातों साधुओंने समान तप करने का नियम किया और सुखसे तप करने लगे, किन्तु महाबल मुनिने विचार किया कि मैं इनसे अधिक तप करूं, इससे जन्मांतरमें भी इनसे बडा होऊं, यह विचार करके पारणाके दिन महाबल मुनि मस्तक आदि दुःखनेका वहाना करके पारणा नहीं करते, इस प्रकार मायासे उन छः को पारणा करादेते और आप कपटसे विशेष तप करके वीस स्थानककी आराधना करतेथे इससे तीर्थंकर नाम कर्मका बंधन किया उसके बाद सातों साधु कालकरके वैजयंत विमानमें देव हुये, वहां से च्यवकर महाबलका जीव मिथिला नगरी में कुंभ राजाकी प्रभावती राणीकी कुक्षिमें पूर्व–भवकी मायाके

प्रभावसे स्त्रीपनेमें अवतरण हुआ उस समय प्रभावतीने चौदह स्वप्न देखे, पूर्ण समय पुत्री हुई, 'मल्ली' कुंवरी नाम रक्खा गया, अनुक्रमसे मल्ली कुंवरी यौवनावस्थाको प्राप्त हुई. अब पूर्व–भवके छः ही मित्र अनुक्रमसे अलग २ राज्यमें उत्पन्न हुये थे, अपने पूर्व स्नेहसे मल्ली कुंवरीका पाणीग्रहण करनेके लिये एक साथ आये *. 'कुंभ' राजा बडा चिंतातुर हुआ, तब मल्ली कुंवरीने पिताकी चिंताका कारण पूछा ? राजाने सब

* अयोध्या नगरीमें सुप्रतिबुद्ध राजाकी पद्मावती रानीने पूजाके लिये बहुत सुन्दर हार बनायाथा, उसको देखकर राजा बहुत खुश होकर दूतोंसे कहने लगा ऐसा सुन्दर हार तुमने कहीं देखा है ! तब दूतोंने कहा इससेभी अधिक सुन्दर हार मल्लीकुंवरी बनाती है उसका रूपभी बहुत सुन्दरहै, यह सुनकर राजाने पूर्व–भवके स्नेहसे मल्लीकुंवरीकी याचना करने के लिये कुंभ राजाके पास दूत भेजा ॥ १ ॥ इसी समय चंपानगरीसे अरहन्नकादि व्यापारी नावोंमें बैठकर द्वीपान्तर में जारहे थे, उस समय इंद्रने देवोंकी सभामें अरहन्नक के धर्म-श्रद्धा की दृढताकी प्रशंसा की, उसको सुनकर किसी मिथ्यात्वी देवने उसकी परीक्षाके लिये समुद्रमें आकर नावोंके पास बडा उत्पात मचाया, सब लोग मृत्युके भयसे अपने २ इष्ट देवका स्मरण करने लगे, अरहन्नक ने भी सागारिक अनशन करदिया शांतिसे वीतराग का स्मरण करने लगा, तब देव उसके पास आकर कहने लगा–तू वीतरागका स्मरण छोडकर हरि–हरादिका स्मरण करे तो सब विघ्नोंका निवारण करदूं अन्यथा सबके मरनेका पाप तुझको लगेगा. यह सुनकर नावोंमें बैठने वाले सब लोगोंने भी अरहन्नक को वैसा करनेका बहुत आग्रह किया तोभी अरहन्नक अपने धर्मसे चलायमान नहीं हुआ, खूब दृढ रहा. उसको देख-

कर देव प्रसन्न हो गया और हाथ जोड़कर स्तुति करके कहने लगा कि आपको धन्यहै, आपका जीवन सफलहै, आप पुण्यवान् हैं आपकी इंद्रने प्रशंसा की थी उसकी मैंने परीक्षा की, आपको कष्ट दिया, क्षमा करें, आप जो चाहें सो मुझसे मांग लें देवताका दर्शन कभी निष्फल नहीं जाता, तब अरहन्नक बोला इस–भव और पर–भवमें सुख देनेवाला जैन–धर्म मुझको प्राप्त होगयाहै, अब किसी वस्तुकी चाह मुझको नहींहै तिसपरभी देव दो कुंडलोंकी जोड़ी देकर अपने स्थान चलागया. समुद्रका सब उत्पात दूर होगया, सब-लोग कुशल–पूर्वक गंभीर-पतन पहुंचकर मिथिला नगरी गये, अरहन्नक ने कुंभ राजाको एक जोड़ी कुंडल भेंट किये, राजाने वे कुंडल मल्ली कुंवरीको दे दिये. अरहन्नकने वहांसे चंपा–नगरी जाकर अपने चन्द्रच्छाय राजाको दो कुंडल भेटकरदिये। तब राजाने अरहन्नक से पूछा कि तुमने विदेश में कोई आश्चर्य देखा हो तो उसका वर्णन करो, तब अरहन्नकने मल्लीकुंवरीके रूप का विशेष वर्णन किया उसको सुनकर इस राजाने भी कुंभ राजाके पास मल्ली की याचनाके लिये दूत भेजा ॥ २ ॥ एक समय मल्लीकुंवरीके कुंडल टूट जानेसे राजाने स्वर्णकारको बुलाकर कुंडल जोड़देनेकी आज्ञादी, स्वर्णकारने कहा यह देव-सम्बंधी कुंडल होनेसे मैं नहीं जोड़ सकता इससे राजाने नाराज होकर उसे देश निकाला दे दिया, वह स्वर्णकार बनारसी-नगरीमें रहनेके लिये संख–राजाके पास गया, राजाने देश छोडनेका कारण पूछा. उसने कुंडलका सम्बंध बतलाते हुये मल्लीकुंवरीके अद्भुत रूपका वर्णन किया, उसे सुनकर संख राजाने भी कुंभ राजाके पास मल्लीकी याचनाके लिये दूत भेजदिया ॥ ३ ॥ इसी अवसर पर रुक्मी राजाने अपनी पुत्रीको चार महीनों

की वहांपर पहलेसेही एक मंडप बनवा रक्खाथा, जिसमें एक अपने जैसी सोनेकी मूर्ति खडीकर रखीथी, उस मूर्तिके सिरमें एक छेद्था, जहांसे मल्लीकुंवरी प्रति दिन एक ग्रास उसमें डालती रहतीथी, उस छेदके

तक हमैशा मंजन तथा खूब शृंगार करवाकर दूतोंसे पूछा—मेरी कन्याके समान क्या कोई रूपवान्है ! तब दूतोंने मल्लीकुंवरीके रूपका इससे अधिक वर्णन किया, जिससे रुक्मी राजाने भी मल्लीकी याचनाके लिये कुंभ राजाके पास दूत भेज दिया ॥४॥ एकसमय मल्लीकुंव-रीके छोटेभाई मल्लदिन्न महाराजकुंवरने एक चित्रशाला बनाई उसमें चित्रकारने लब्धिके प्रभावसे पर्देके अन्दर मल्लीकुंवरीका पैरका अंगूठा देखकरही मल्लीकुंवरीका सम्पूर्ण रूप चित्रित करलिया, मल्लदिन्न अपनी स्त्रियोंके संग क्रीड़ा करताहुआ अपनी बडी बहिनका रूप देख कर लज्जित हुआ, क्रोधसे चित्रकारका हाथ काटकर देशसे निकाल दिया, वह चित्रकार हस्तिनापुर जाकर अदीन-शत्रु राजासे मिला और उससे मल्लीकुंवरीके रूपका वर्णन किया, जिसे सुनकर अदीन-शत्रु राजाने भी कुंभ राजाके पास मल्लीकी याचनाके लिये दूत भेजा ॥ ५ ॥ एक समय कुंभ राजा की राज-सभामें धर्म-चर्चा करते हुये एक परिव्राजिका को मल्लीकुंवरीने जीत लिया उसका अप मान होनेसे उसने नाराज होकर कपिलपुर नगरमें जाकर जितशत्रु राजाको मल्लीकुंवरीका चित्र लिखकर बताया उसे देखकर रूपमें मोहित होकर मल्लीकी याचनाके लिये कुंभ राजाके पास दूत भेज दिया ॥ ६ ॥ इसप्रकार छःओं राजाओंके दूत एकही समयमें कुंभ राजाके पास पहुँचे और सबने अपने २ राजाके लिये मल्लीकी याचनाकी. यह देखकर कुंभ राजा विचारमें पडगया और किसीको भी देना मंजूर न कर सबको निकाल दिया, उससे छःओं राजा अपनी २ सेना लेकर एकही समय कुंभ राजासे लडने आये।

ऊपर सोनेके पुष्पका ढक्कनथा, बडे मंडपके बाहिर छोटे २ छः मंडपथे, उन छओं मंडपोंमें अलग २ छः ओं राजाओंको बुलाया, वे एक दूसरेको देख नहीं सकतेथे किन्तु अन्दर जालीथी, इस कारण सब राजा उस सोनेकी पुतलीको देख सकते थे, देखकर बहुत प्रसन्न हुए तब मल्लीकुंवरीने आकर उसका ढक्कन खोलदिया, उसमेंसे महादुर्गंध निकली छःओंही राजाओंने नाक ढककर मुंह फेरालिया, उस समय मल्लीकुंवरी प्रकट होकर कहनेलगी कि हे राजाओ! यह सोनेकी पुतली * प्रतिदिन अन्नका एक कवल पडनेसे ऐसी दुर्गंध देतीहै कि तुम मुंह फेर लेतेहो तब नित्य अन्न खानेवाली, मलमूत्रसे युक्त, सात धातुमयी, अपवित्र स्त्रीके शरीरपर तुम कैसे प्रेम करतेहो, अपना पूर्वभव याद करो, अपन सातोंने एक साथ पूर्वभवमें दीक्षालीथी वहांसे देवलोकमें हो-

---

*—तीर्थंकर पदवी भोगकर इसी भवमें मुक्ति प्राप्त करने वाले भगवान्ने पुतली (मूर्ति) द्वारा उपदेश देनेका ऐसा प्रबंध किया, इसमें द्रव्य क्रिया लगी तोभी छःओं राजाओंको प्रतिबोध होनेका बडा लाभ मिला, इस तरहसे भगवान्की मूर्त्ति द्वारा द्रव्य पूजा करनेमें भी श्रावकोंको कुछ द्रव्य क्रिया लगतीहै तोभी परमात्माके ज्ञानादि गुणोंका स्मरण–ध्यान आदि अनंत लाभ मिलताहै, इसबात का भावार्थ समझने वाले भगवान्की द्रव्य पूजाका निषेध कभी नहीं कर सकतेहैं।

कर यहां आये हैं, यह सुनकर छःओं राजाओंको जाति—स्मरण ज्ञान हुआ, अपना २ पूर्वभव सबने देखलिया और बोले कि आपने हमारे ऊपर बहुत उपकार कियाहै; अब हम क्या करें? तब मल्लीकुंवरीने कहा कि अपने २ नगरमें जाकर अपने २ पुत्रको राज्य देकर मेरे पास आवो, वे राजा चलेगये, तब मल्लीकुंवरीने वर्षी दान दिया और मार्गशिर सुदी एकादशीको दीक्षा ग्रहणकी, मौन व्रत लिया और उसी दिन केवल ज्ञान प्राप्त किया. तब छःओ राजाओंने भी आकर दीक्षा ग्रहणकी, इन उन्नीसवें तीर्थंकर श्री मल्लीनाथ स्वामीके समवसरणमें स्त्रियों की पर्षदा आगे और पुरुषोंकी पीछे, ऐसा मतांतर है, यह तीसरा अच्छेरा हुआ.

चौथा अच्छेराः—जिस जगह तीर्थंकरोंको केवल ज्ञान प्राप्त होवे, उसी जगह समवसरणकी रचना होने-पर भगवान्‌की देशना होती है वहीं पर पहली देशनामें व्रत पच्चक्खाण होते हैं, चतुर्विध संघकी स्थापना होती है यह अनादि नियमहै परंतु श्री महावीर स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ तब देवोंने समोवसरणकी रचनाकी पर्षदा मिली, सबने देशना सुनी किन्तु किसीने व्रत पच्चक्खाण नहीं लिया इसलिये यह चौथा अच्छेरा हुआ.

अब पांचवां अच्छेरा कहते हैं— एक द्वीपका वासुदेव दूसरे द्वीपमें नहीं जाय, ऐसी मर्यादा है परन्तु

श्रीकृष्ण वासुदेवको धातकी खंडमें जाना पडा, उसका सम्बन्ध संक्षेपसे * यहां बतलाते हैं—धातकी खंडके भरत—क्षेत्रकी अमरकंका नामक नगरीका राजा पद्मनाभ नारदजीके मुखसे द्रौपदीके रूपकी प्रशंसा सुनकर

---

* इस टिप्पणीमें विस्तारसे बताया जाताहै— 'कांपील्यपुर' नगरके द्रुपद राजाकी चुलनीरानीके द्रौपदी नामकी कन्या हुयी। जब वह यौवनावस्थामें आयी तो उसका स्वयंवर मंडप तैयार हुआ, दूर २ से राजा आये, हस्तिनापुरसे युधिष्ठरादि पांचपुत्र सहित पांडु राजाभी आये। अर्जुनने राधावेध साधा। उस समय द्रौपदीने अर्जुनके कंठमें वरमाला डाली परन्तु द्रौपदीके जीवने बहुत भव पहले नागश्री ब्राह्मणीने साधुको कड़वे तुंबेका शाक देकर मार डाला था, जिससे बहुत बार नरकमें जाकर अनेक तिर्यंच योनियोंमे फिरकर, पीछे एक गृहस्थके कुलमें 'सुकुमालिका' कन्या हुई, जब वह युवावस्थामें आयी तो उसके पिताने एक धनवान्के पुत्रके संग उसका विवाह किया कुसुमालिकाके शरीर के संयोगसे उसके पतिके शरीरमें महादाह उत्पन्न हुआ, उससे वह उसको छोड़कर भग गया, पीछे एक निर्धन मनुष्यको सुकुमालिकाका पति बनाया, वह भी उसको छोड़कर भग गया, इस दुःखसे सुकुमालिकाने वैराग्य पाकर साध्वियोंके पास दीक्षा ग्रहणकी और वनमें आतापना करने लगी. उस समय उसने एक वैश्याको पांच मनुष्यों के संग क्रीड़ा करते देखा, तो वह अपने दुर्भाग्यकी निंदा करने लगी और तपके फलसे दूसरे भवमें पांच पतिपानेका नियाणा किया. इस पूर्व भवके सम्बन्धसे वरमालाके अवसर पर उसे पांचोंही पांडवोंके गलेमें वरमाला देखनेमें

मोहितहोगया और उसने अपनेमित्र देवता द्वारा हस्तिनापुरसे उसे अपने पास मंगवालिया, जिसको वापिसलाने केलिये श्रीकृष्ण वासुदेवने पांडवोंके साथ लवण–समुद्रके अधिष्टायक, सुस्थितनामक देव की सहायतासे समुद्र

आयी और आकाशमें देव–वाणी हुयी कि द्रौपदी पांच पतिवाली होने परभी सतीहै और चारण श्रमण मुनिने भी उसका पूर्वभव कहा. उसके बाद पांडव उसका पाणिग्रहण करके हस्तिनापुर आये और सुखसे रहने लगे। एक समय वहाँ नारद ऋषि आये, तब पांडवोंने आसनादिसे उनका सत्कार किया, थोडी देर ठहर कर वे अन्तःपुरमें द्रौपदीको देखनेके लिये गये, द्रौपदीने नारद ऋषिको आते देखा परन्तु अविरति, अपचक्खाणी, मिथ्यात्वी जान कर उनका आदर नहीं किया, नमस्कार भी नहीं किया, उनसे बोली तक नहीं, पहले जैसे बैठीथी वैसेही बैठीरही, तब नारद ऋषि क्रोधित हुए और मनमें विचार किया कि जो यह पाँच पतियोंका गर्व करती है तो मेराभी नाम नारद तभीहै जब मैं इसे महा संकटमें गिराऊँ। ऐसा विचार करके घातकी खंड द्वीपके पूर्व–भरत क्षेत्रमें अमरकंका राजधानीमें कपिल वासुदेवके सेवक पद्मनाभ राजाके पास गये, उस समय वह अपनी स्त्रियों सहित बागमें क्रीडा कर रहाथा, उसने नारदजी को आदर सहित नमस्कार करके आसन दिया और पूछने लगा कि हे ऋषि! आप सर्वत्र भ्रमण करते रहतेहैं क्या आपने मेरी स्त्रियोंके समान रूपवती स्त्रियाँ कहीं देखीहैं? नारदजी ने द्रौपदीको संकटमें गिरानेका समय देखकर कहा कि राजा! तुमतो कूप मंडूकके समान हो उसको अपना कुआही समुद्रसे बडा ज्ञात

पार कर अमरकंका जाकर पद्मनाभ राजाको हराकर और द्रौपदीको साथ लेकर वापिस आते समय विजय होनेकी खुशीमें अपना शंख बजाया, शंखकी आवाज सुनकर कपिलवासुदेव जो उस समय मुनिसुव्रत-

---

होताहै। तुमने अभी और सुन्दर स्त्रियोंको नहीं देखा, केवल इन्हींको देखाहै इसलिये इनकी ही इतनी प्रशंसा करता है. मैंने तो त्रिभुवनमें पांडवोंकी स्त्री द्रौपदीसे अधिक किसीको सुन्दर नहीं पाया, उसके बांये पैरके अंगूठे से भी तेरी सब स्त्रियां समानता नहीं कर सकती हैं। इतना कहकर नारद प्रस्थान कर गये। पद्मनाभ विचारने लगा कि मेरा जन्म तबही सफलहै जब मुझे वैसी स्त्री मिले, उसको यहां लानेका प्रयत्न करना चाहिये यह विचार करके पौषध शालामें आकर तीन उपवास करके पूर्व संगति मित्र देवकी आराधनाकी, तीसरे दिन देवने प्रगट होकर आराधना करनेका कारण पूछा पद्मनाभने उससे अपना इरादा कहा, देवने उत्तर दिया कि-द्रौपदी सतीहै अपना शील खंडन नहीं करेगी, परन्तु कामान्ध राजाने फिरभी देवसे द्रौपदीको लादेनेके लियेही कहा, देव आज्ञानुसार अपने भुवनमें सोती हुयी द्रौपदीको देव मायासे उठा लाया और पद्मनाभको सौंपदिया। उसने उसको अशोक वाडीमें रक्खा। देव जाते वक्त पद्मनाभसे कहने लगा कि तुमने मुझसे सती स्त्रीका हरण करवायाहै इसलिये मैं भविष्यमें आराधना करनेसे नहीं आऊंगा, मुझे स्मरण मत करना। यह कहकर देव अपने स्थान पर चलागया। प्रभातमें जब द्रौपदी जागी तब अपने आपको एक अपरिचित स्थानमें पाकर अत्यन्त विस्मित हुयी-इधर उधर मृगीके समान

स्वामी भगवान्‌की देशना सुनरहाथा, भगवान्‌से पूछने लगा—यह मेरा शंख किसने बजाया वा कोई नया वासु-देव पैदा हुआ ? तव भगवान्‌ने कहा—हे वासुदेव ! अमरकंका नगरीके राजाको जीतकर भरत—खंडके श्रीकृष्ण

चकित दृष्टिसे देखने लगी उसके मनमें नाना प्रकारके विचार उठने लगे-यह कौनसी वाडीहै, किसका गृहहै,कहां मैं आईहूँ, क्या मैं स्वप्न देखती हूँ ? मेरा घर और मेरे पति कहां रहगये, जव यह इस प्रकार विचारकर रहीथी तव पद्म-नाभ राजा आकर कहने लगा हे द्रौपदी ! तू चिंता मतकर, मैंने देव शक्तिसे तेरा हरण करवायाहै मेरे साथ सुख भोग, क्रीडाकर,मैं सदा तेरी आज्ञाका पालन करूंगा। परन्तु द्रौपदी अपने शीलकी रक्षाके निमित्त बोलीकि हे देवा-नुप्रिय ! तुम छः महीने तक मेरा नामभी मत लेना,छः महीनेमें मेरे पीछे पांडव और उनके भाई श्री कृष्ण मेरे को छुडानेके लिये अवश्य आवेंगे, यदि वे इस अवधिमें न आवें तो मैं जो तू कहेगा उसे करूंगी। द्रौपदीके इस वचन को सुन कर पद्मनाभ सोचने लगा कि यहां कौन आसकता है, दो लाख योजन का लवण समुद्र बीचमें पडता है इसलिये उसने द्रौपदीको छः महीनेकी अवधि देदी। वह आयंविलकी तपस्या करती हुयी रहने लगी। इधर जब पांडवोंने द्रौपदी को घरमें नहीं देखा तो सब स्थानों पर खोज करवाई। परन्तु कहीं भी पता नहीं मिला तो कुन्ती श्रीकृष्णजीके पास द्वारिका पहुँची और कहा कि हे पुत्र ! रात्रिको अपने गृहमें सोती हुयी द्रौपदीको किसी देव, दानव, राक्षस अथवा विद्याधरने हर लिया। चारों ओर ढूंढा परन्तु कहीं पता ही नहीं मिलता। अब तुम उसकी तलाश करो।

वासुदेव द्रौपदी को लेकर वापिस जारहे हैं और यह उनके शंखकी आवाजहै. भगवान्से यह सुनकर और अपने समान दूसरे वासुदेवको अपने खंडमें आया हुआ जानकर मिलनेकी इच्छासे भगवान्को वंदना करके

यह सुनकर श्रीकृष्णजी हँसीमें बोले कि पांच पांडवोंसे एक स्त्रीकी भी रक्षा नहीं हुई, जहां मैं अकेला ३२ हजार स्त्रियोंकी रक्षा करताहूँ. इसपर कुन्ती कहने लगी कि हे कृष्ण! यह समय हंसीका नहींहै शीघ्रही द्रौपदीकी तलाश करो. यह सुनकर श्रीकृष्णजी कुछ उपाय विचारने लगे। इतनेमें नारद ऋषि वहां आये और श्रीकृष्णको चिंतातुर देखकर बोले कि यादवराज! आप चिंतातुर कैसे हैं और कुन्ती क्यों आईहै? श्रीकृष्णजीने नारदजीसे द्रौपदीके विषय में पूछा। नारदजी कहने लगे कि द्रौपदी जैसी दुष्ट थी वैसाही फल उसको मिला, वह किसी तपस्वी, श्रमण, योगीको नहीं मानती थी, इसलिये दुष्टोंपर जितना दुःख पडे उतना ही थोड़ाहै. मैं तो उसे भली प्रकार जानता भी नहीं हूँ परन्तु द्रौपदीके समान एक स्त्री मैंने धातकी खंडमें अमरकंका राजधानीके स्वामी पद्मनाभकी अशोक बाड़ीमें देखी थी, यह कहकर नारदजी चल दिये। अब श्रीकृष्णजी भी यह सब नारदजीका ही प्रपंच जानकर पाडवों सहित अमरकंकाकी ओर चलकर, समुद्र के किनारे पहुँचे. वहां श्रीकृष्णजीने लवण सागरके अधिष्ठायक देवताकी आराधन की। देवने प्रकट होकर पूछा कि मेरे को आपने क्यों स्मरण किया, आपका जो प्रयोजन हो उसे कहिये, श्रीकृष्णजीने कहा कि हमको धातकी खंडमें अमरकंका राजधानी जानाहै अतः हमारी सेनाके लिये मार्ग दो, हमें द्रौपदीको लानाहै।

समुद्र तटपर आया परन्तु श्रीकृष्णवासुदेव बहुत दूर निकलगये थे तोभी मिलनेके लिये वापिस बुलानेके वास्ते कापिल वासुदेवने शंखकी आवाज की. श्रीकृष्ण वासुदेवने भी शंखकी आवाजमेंही कहा कि हम बहुत दूर निकल

देव कहने लगा कि विना इन्द्रकी आज्ञा के मैं मार्ग नहीं दे सकता यदि आपकी आज्ञा हो तो द्रौपदीको यहां लाकर दूँ और पद्मनाभ राजाको राजधानी सहित समुद्रमें गिरा दूँ. तब श्रीकृष्णजी कहने लगे कि हे देव! तुममें ऐसीही शक्तिहै परन्तु हमको छः रथका मार्ग दो मैं स्वयं जाऊँगा और उस पद्मनाभको जीतूँगा। तब देवने समुद्रमें छःरथ का मार्ग दिया, कृष्णजीने पांडवोंके साथ समुद्र का उल्लंघन करके अमरकंकाके उद्यानमें उतर कर पद्मनाभके पास एक दूत भेजा। दूतने पद्मनाभसे जाकर कहा कि हे राजा! श्रीकृष्णजी आयेहैं, द्रौपदीको मेरे साथ भेज, तूने यह काम अच्छा नहीं किया जो पांडवोंकी स्त्रीका अपहरण किया, परन्तु अबभी तेरा कुछ नहीं विगड़ाहै तू द्रौपदी को देदे। इसप्रकार दूतके वचन सुनकर पद्मनाभ कहने लगा कि हे दूत! मैंने द्रौपदीको देनेके वास्ते नहीं बुलाया है तू जाकर अपने स्वामीसे कहदे कि मैं द्रौपदीको अपने बलसे लायाहूँ अब उसको विना युद्ध किये नहीं देसकता क्योंकि मैंभी क्षत्रीहूँ। इस प्रकार दूतका अपमान कर निकाल दिया। दूतने सम्पूर्ण विवरण कृष्णजीसे कहा। कृष्णजीने यह विचार करके कि असाध्य रोग विना औषधिके दूर नहीं होसकता, संग्रामकी तैयारी की. उस समय पांचों पांडव कहने लगे कि हे स्वामी! यह तो हमारा कार्यहै इसलिये पहले हम युद्ध करेंगे जो हम भागें तो आप

गये हैं अब पीछे नहीं लौट सकते. आप स्नेह–भाव रखना। इसप्रकार एक क्षेत्रमें दो वासुदेवों का मिलना व शंखकी ध्वनिसे आपसमें वार्तालाप करना आजतक कभी नहीं हुआ इसलिये यहभी पांचवा–अच्छेरा हुआ।

हमारी सहायता करना। यह सुनकर श्रीकृष्णजी कहने लगे कि तुम बड़े भारी योद्धा हो किन्तु तुम्हारी वाणीके प्रभावसे तुम्हारा भंग होगा। यह सुनकर भी पांडव श्रीकृष्णजीसे आज्ञा लेकर शस्त्रोंसे सुसज्जितहो युद्ध करने के लिये चले। पद्मनाभने भी बड़ी भारी सेना लेकर पांडवोंके साथ युद्ध किया। भवितव्यताके वश पांडव पद्मनाभ के आगे भागे और भागते हुये उन्होंने सिंहनाद किया। श्रीकृष्णजी नाद सुनकर पांडवोंको भगा जानकर रथमें बैठकर, हाथमें धनुष लेकर पद्मनाभकी सेनाको एकही रथसे मथने लगे। धनुषकी टंकार और शंखके शब्दसे पद्म-नाभके सब योद्धा भाग गये। पद्मनाभभी भागकर नगरीमें प्रवेश करके नगरीका दरवाज़ा बन्ध करके रहा। तब श्रीकृष्ण क्रोधित हुये और विचारने लगे कि यह नीच मुझे अपने गढ़का बल दिखाताहै इसलिये तब ही मैं हरिहूँ जब सिंहके समान पद्मनाभ रूपी हाथीको मारूं। यह सोचकर नृसिंहका रूप धारण करके हत्थल दे करके सर्व गढ़ गिरा दिया। उस समय सब नगर निवासी बड़े कम्पित होने लगे। उनके घर गिरने लगे. कृष्णजीका ऐसा पराक्रम देखकर पद्मनाभ डरगया और द्रौपदीकी शरणमें जाकर कहने लगा कि हे महासती! अब तू मेरी रक्षाकर! द्रौपदी कहने लगी कि हे नीच! मैंने तुझसे पहले ही कहा था कि मेरे पीछे कृष्णजी आवेंगे, कृष्णजी बलवान् हैं,

अव छठा अच्छेरा कहते हैं:—तीर्थंकर भगवानोंको वंदना करनेके लिये इन्द्रादि देव, देवलोकसे जव यहां आते हैं, तव अपने २ मूल विमानोंको वहींपर छोडकर, वैक्रियसे नये विमान वनाकर उसमें वैठकर आते हैं

सत्य पुरुषहै जो तू जीवनकी आशा करता है तो मेरे कहे अनुसार काम कर—स्त्रीका भेष धारण करके मुखमें तिनका लेकर और मुझे आगे करके श्रीकृष्णके पास चल मैं तुझको श्रीकृष्णके पैरोंमें गिरवाऊँ। श्रीकृष्ण तो नम्रों पर क्रोध नहीं करते हैं। इस प्रकार करने से ही तेरा जीवन रह सकेगा। इसके सिवाय और कोई दूसरा उपाय नहीं है। पद्मनाभने वैसाही किया। वह जय कृष्णके चरणोंमें गिरा, तव कृष्णने कहा कि हे पद्मनाभ! तू यह नहीं जानता था कि द्रौपदी कृष्णकी भौजाई है, इसके पीछे आवेगा, परन्तु अन्धा पुरुष मस्तक फुटने सेही जानता है, जा तुझे जीवन दान दिया, तेरे किये हुये कर्मोंका फल तुझेही मिलेगा। इस द्रौपदीने तुझे जीवन दान दिलाया है। तव पद्मनाभने मनस्कार किया और श्रीकृष्णजी द्रौपदीको लेकर पांडवोंके साथ चले। हर्षित होकर श्रीकृष्णजीने शंख बजाया। उस शंखकी ध्वनिको श्री मुनिसुव्रतस्वामी तीर्थंकरके पास वैठे हुये वहाँके कपिल नामक वासुदेवने सुना. उसने तीर्थंकर से पूछा कि हे स्वामी! मेरा शंख किसने बजाया, क्या कोई नया वासुदेव हुआ है? तव श्री मुनि सुव्रत स्वामीने कृष्णके आनेका कारण कहा। कपिल वासुदेव तीर्थंकरका वचन सुनकर और उनको वंदना करके कृष्णजीसे मिलनेके लिये समुद्रके किनारे आया और छः रथ समुद्रमें, जाते हुये देखे। देखकर शंखमें कपिल वासदेव इस प्रकार बोलने

यह अनादि नियमहै परन्तु 'कौसंवी' नगरीमें जव श्री महावीर स्वामी समोवसरे तव वहां सूर्य और चन्द्र अपने २ मूल विमानमें बैठकर भगवान्को वंदना करनेके लिये आए. यह छठा अच्छेरा हुआ ॥ ६ ॥

लगा, हे! मित्र ठहरो २ एक वार पीछे लोटकर आवो, मैं यहाँ पर आपके दर्शनके लिये आया हूँ. तव कृष्णजीने शंखमें ही इस प्रकार उत्तर दिया कि हे भाई! हम वहुत दूर आगये हैं इसलिये अव पीछे नहीं आसकते, तुम कृपा रखना, स्नेहकी वृद्धि करना। यह कहकर श्रीकृष्णजी आगे चले। कापिल वासुदेव भी पद्मनाभका अपमान करके अपनी राजधानीमें गया। इधर श्रीकृष्णजी सर्व समुद्रको उल्लंघन कर गंगा नदीके किनारे आये. वहां वे लवणाधिपसे वार्तालाप करने लगे और पांडवोंसे कहा कि तुम गंगा नदी पार करके नाव लौटा देना, तव तक मैं लवण समुद्रके अधिष्ठायकसे वातें करता हूँ. पांडव द्रौपदीके साथ नावमें वैठकर गंगापार आये और नावको एक स्थान पर छिपाकर कहने लगे कि देखें! श्रीकृष्णजी अपनी भुजाओंके वलसे गंगा उत्तर कर आते हैं या नहीं। श्रीकृष्णजी वहुत समय तक राह देखते रहे परन्तु जव नावको लौटता नहीं देखा तो सोचने लगे कि क्या पांडव डूब गये? या नाव टूट गई? ऐसा विचार करके चार भुजा वनाई. एकसे सारथी सहित रथ उठाया, दूसरीसे शस्त्र लिये, तीसरीसे घोडे पकडे और चौथीसे गंगा नदी तैरना शुरू किया। गंगा नदीका ६२॥ योजनका विस्तार है। श्रीकृष्णजी भुजासे इस प्रकार गंगामें तैरते हुये वहुत थक गये, तव गंगा देवीने प्रकट होकर उनकी सहायताकी, वीचमें स्थल वनाया

अव सातवां अच्छेरा कहते हैं—कौसंबी नगरीमें वीरा नामक एक कोली रहताथा, उसके वनमाला नामकी स्त्री वहुत रूपवान थी. वनमालाके रूपको देखकर वहांका राजा मोहित होगयाथा, वनमालाभी राजाको देखकर

वहां पर वे विश्राम लेकर स्वस्थ हुये और वाकी नदीको पार करके किनारे आये। वहां जब उन्होंने पांडवोंको हास्य सहित खडा देखा और नावभी देखी तब अत्यंत क्रोधातुर हुये और पांडवोंसे पूछने लगे—हे पांडवों! तुमने नाव क्यों नहीं भेजी ? तब पांडव कहने लगे कि हे स्वामिन्! हमने आपका बल देखनेके लिये नाव नहीं भेजी। यह सुनकर श्रीकृष्णजी कहने गले कि हे पांडवों! जब पद्मनाभके आगे तुम पांचोंही भगेथे तब मैंने अकेले नेही जीतकर द्रौपदी तुमको लाकर दीथी, उस समय तुमने मेरा बल नहीं देखा जो इस समय गंगा तैरने में मेरा बल देखनेके लिये खडे हो ? अरे पापियों मेरी दृष्टिसे दूर हो जाओ, मेरे देशमें रहना नहीं। यह कहकर, गदासे पांचों रथोंको चूर्ण करके द्वारिका आगये। जब कुन्तीने यह सुना कि श्रीकृष्णदेवने नाराज होकर पांडवोंको देश निकाल दिया, तब कुन्ती कृष्णके पास आकर विनति करके और उनकी आज्ञासे पांडवोंको बुलाकर उनके पैरों पर डाला और श्रीकृष्णकी आज्ञासे रथ मर्दनकी जगह 'रथ मर्दन' नवीन नगर वसाकर पांडव रहने लगे। कितने ही उसे 'पांडु मथुरा' भी कहते हैं। श्रीकृष्ण वासुदेवकी सेवा करने लगे, कृष्ण वासुदेव धातकी खंडमें गये, कपिल वासुदेवके साथ शंख ध्वनिसे वार्तालाप किया. यह पांचवा अच्छेरा हुआ ॥ ५ ॥

मोहित हुई, मंत्रीने दूतीको भेजकर वनमालाको राजाके अन्तःपुरमें पहुंचा दिया. राजा वनमालाके साथ सुख भोगता हुआ रहनेलगा, तब वीरा कोली वनमालाके प्रेमसे पागल होकर, हा वनमाला! हा वनमाला! चिल्लाता हुआ नगरी में इधर उधर घूमने लगा. एक समय वर्षा ऋतुमें राजा वनमाला सहित राजप्रासादके गोखमें बैठा हुआ वीरा कोलीका ऐसा बेहाल देखकर विचार करने लगा कि मुझ पापीने परस्त्रीका हरण किया, उस समय वनमालाभी विचार करने लगी कि मुझ पापीणीने ऐसे प्रेमी पतिका त्याग किया जो मेरे वियोगसे पागल होगया, दोनों सोचनेलगे कि अव हमारी क्या गति होगी. वे इसप्रकार विचारकर रहे थे, तव दैवयोगसे उनपर बिजली गिरी, दोनों शुभ ध्यानसे मरकर हरिवर्ष क्षेत्रमें युगलियापने उत्पन्नहुये. उधर वीरा कोली भी उनको मरे जानकर अच्छा होगया और तापसी दीक्षा लेली, मरके किल्विषिक देवहुआ. तव अवधिज्ञानसे दोनोंको जुगलियेहुए जानकर सोचने लगा कि ये जुगलियेके भवसे च्यवकर देव होवेंगे, परन्तु मेरे वैरी देव नहीं होने चाहिये, ऐसा विचारकरके वहांसे दोनोंको उठाकर जहां इक्ष्वाकु वंशके राजा चंद्रकीर्ति अपुत्रिया मरा था और वहांके नगरके लोग उसकी जगह राजा बनानेके लिये बडे चिंतातुरथे, उनको राजा बनानेके लिये सौंप-

दिया, तव उसने विचार किया कि अव ये यहांसे राज्य करके, मांस खाकर मरके नरकमें जावेंगे, देव नहीं होसकेंगे. उसंने लोगोंकोभी शिक्षा दी कि जब इनको भूखलगे तव कल्पवृक्षके फलोंके साथ मांस खानेको देना और मृगचर्या करवाना. इसके बाद देव उनका हरि हारिणी नाम रखकर अपने स्थानपर यह विचारता हुआ चलागया कि मांस खानेसे इनकी नरकगति होगी तव मेरी शत्रुता चुकेगी. नगर के लोगोंने उसकी आज्ञाका पालन किया, उन युगलियोंसे हरिवंश कुलकी उत्पत्ति हुई और वे दोनों मरकर नरकमें गये; यह सातवां अच्छेरा हुआ।

अब आठवां अच्छेरा कहते हैं:—इसी भरत-क्षेत्रमें 'विभेलसान्निवेश' में पूरण नामक सेठ रहताथा. उसने तापसी दीक्षा ली, दो उपवाससे पारणा करता, परन्तु पारणेके दिन चौकुणा पात्र लेकर भिक्षाके लिये जाता. पहिले कोणमें पडीहुई भिक्षा जलचरोंको देता, दूसरे कोणमें पडीहुई काक वगैरह पक्षियोंको देता, तीसरेमें पडी हुई भिक्षा अभ्यागत तापसोंको देता और चौथेमें प्राप्तहुई भिक्षाको २१ वार जलसे धोकर आप भोजन करता। ऐसे १२ वर्ष तक तप किया और मरके चमरचंचा राजधानीमें चमरेन्द्र हुआ, वहां ज्ञानका उपयोग देनेपर सौधर्मेन्द्रके पैर अपने सिरपर देखे तब अत्यन्त क्रोधित हुआ और मंत्री देवोंको बुलाकर कहने लगा कि हे देवो!

यह दुष्ट अप्रार्थक वस्तुकी प्रार्थना करने वाला मेरे सिरपर पैररखकर कौन वैठाहै ? तब मंत्रीदेवोंने कहा कि हे स्वामी ! अनादि कालकी यही स्थिति है. इसमें क्रोध करना ठीक नहीं, आपके जैसे इन्द्र पाहिले वहुत हुए हैं, उनके ऊपर इसी प्रकार ऊपर रहे हुए इन्द्रके चरण रहे हैं इसलिये ईर्षा मत करो। ऐसा कहने परभी क्रोधसे कंपित चमरेन्द्र बोला कि तुमको ऊपर वाले इंद्रने कुछ दिया होगा, इसलिये इसप्रकार बोलते हो, मैं अभी जाकर उसे सिंहासनसे नीचे गिरा दूंगा, यह कहकर वह अपनी आयुधशालामें आया और फरसी शस्त्र हाथमें लेकर सौधर्म देवलोकमें जानेका इरादा किया, तव असुर कुमारदेवोंने वहुत मनाकिया तोभी चला, मार्गमें सुसुमार नगरके उद्यानमें श्री महावीर स्वामीको काउस्सगमें खडे देखकर वंदना करके भगवान्‌की शरण लेकर लाख योजनका रूप वनाया और जहां सौधर्म देवलोक है वहां सौधर्म वतंसक विमानमें जाकर एक पैर सौधर्म विमानकी पद्मवरवेदी पर रक्खा और दूसरा पैर सुधर्मा सभामें रखकर सव देवोंको क्षोभित करता हुआ ऊंचे स्वरसे कहनेलगा कि अरे देवों ! तुम्हारा इन्द्र कहां है ? वह दुष्ट मेरे ऊपर पैर रखकर वैठताहै, वह नीच अप्रार्थक वस्तुका प्रार्थकहै, अर्थात्—जिस वस्तु (मरने) की कोई भी इच्छा नहीं करता, उसकी इच्छा करताहै, अमावस्याका

जन्मा हुआ वह कहां है? उस दुष्टको मैं इस फरसीसे मारूंगा, इसप्रकार देवोंको डराने लगा। उस समय उसके रूपको देखकर सब देव, और देवांगनाएँ भयभीत हुए. उसके मुँहसे आगकी ज्वाला निकल रहीथी, होठ लंबे थे, गला कूपके समानथा, बिलके समान नाक, अग्निके समान नेत्र, सूपडेके समान कान, और कुशके समान दांत थे, गलेमें सर्प पडे हुए, हाथोंमें विच्छुओंको लटकाये हुए, काला शरीरवाला वह, कहीं ऊन्दरोंकी मालाऐं, कहीं नोलिये और कहीं चंदन गो लंबायमान लगाये हुए था. जब सौधर्मेन्द्रने कोलाहल सुना और देखा कि चमरेन्द्र मुझको सिंहासनसे नीचे गिरानेको आयाहै तब क्रोधित होकर हाथमें वज्र लेकर चमरेन्द्रपर फेंका. चमरेन्द्रने जब धग २ शब्द करते हुए और अग्नि ज्वाला निकालते हुए वज्रको आता हुआ देखा तो विचारने लगा कि मेरे तो ऐसा शस्त्र है नहीं, यह तो बडा अपूर्व शस्त्रहै। वज्र जब इसकी ओर आगे बढता हुआ दिखाई देने लगा तो यह डरकर भगा—उस समय सिरतो नीचे होगया और पैर ऊपर. जगह २ पर आभूषण मार्गमें गिरते जाते हैं, परंतु चमरेन्द्रकी नीचे जानेमें शक्ति अधिकहै और वज्रकी ऊपर जानेमें, इसलिये चमरेन्द्रको वज्र नहीं लगसका, और वह दुःखसे अपने शरीरका संकोच करता हुआ डरसे जहां महावीर स्वामी काउस्सगमें थे वहां

महावीर स्वामीकी शरणमें आगया। पीछेसे सौधर्मेन्द्रने विचार किया—यह चमरेन्द्र, अरिहंत अथवा अरिहंतकी प्रतिमा या भावित-आत्मा अनगार, इन तीनोंमेंसे किसीकी भी शरण लेकर आया होगा और मेरा वज्र उसके पीछे जावेगा इसलिये किसीकी आशातना न हो, यह विचारकर अवधिज्ञानका उपयोग दिया जब उसने जाना कि महावीर स्वामीकी शरण लेकर आयाहै, तो बडा पश्चाताप किया और शीघ्रही वज्रके पीछे चला, भगवान् श्री महावीर स्वामीके नजदीकसे वज्रको पकडा, उस समय इन्द्रकी अंगुलियोंकी वायुसे भगवान्के रोमोंको हवा लगी, ऐसा 'भगवती' सूत्रमें कहाहै. वज्रको लेकर कहने लगा कि हे चमरेन्द्र ! अब महावीर स्वामीके प्रभावसे तुझको मेरा भय नहीं होना चाहिये, मैंने तुझे छोडदिया। तब चमरेन्द्रनेभी क्षामणाकी और सौधर्मेन्द्रभी महावीर स्वामीको वंदना—नमस्कार करके, स्तुति करके, वज्रको लेकर, चमरेन्द्रसे मैत्री करके अपने स्थानपर देवलोकमें गया. चमरेन्द्रभी अपने ठिकाने गया, यह चमरेन्द्रका उत्पात नामा आठवां अच्छेरा हुआ।

अब नवमा अच्छेरा कहते हैं—ऋषभदेव स्वामी भरतके विना ९९ पुत्र और भरतके ८ पुत्र, पांच सौ धनुष्य प्रमाणे उत्कृष्टि अवगाहना वाले ये १०८ पुरुष एक समयमें मोक्ष गये. यह नवमा अच्छेरा हुआ। इसका

कारण यह है कि—उत्कृष्टि अवगाहना वाले एक समयमें दो मोक्षमें जावें किन्तु १०८ नहीं जावें परन्तु ये गये इसलिये अच्छेरा कहा है ॥ ९ ॥

अब दसवां अच्छेरा कहते हैं—श्रीसुविधिनाथ नवम तीर्थंकरके मोक्षमेंगये बाद कालांतरमें साधुओंका विच्छेद हुआ तब लोगोंमें यति—साधुओंकी जगह असंयतियोंकी पूजा मान्यता हुई. यह दसवां अच्छेरा हुआ ॥१०॥

किस २ तीर्थंकरके बारेमें कौन २ से अच्छेरे हुए यह बतलाते हैं:—श्री ऋषभदेव स्वामी १०८ मुनियोंके साथ मोक्षमें गये १, शीतलनाथ स्वामीके शासनमें हरिवंशकुलकी उत्पत्ति हुई २, नेमिनाथ स्वामीके समयमें श्री कृष्णजी अमरकंका गये ३, मल्लीनाथ स्वामी स्त्री तीर्थंकर हुए ४, नवम तीर्थंकरसे लेकर सोलहवें शांतिनाथ स्वामी तक आठ तीर्थंकरोंके सात अंतरोंमें असंयतियोंकी पूजा हुई ५ और गर्भहरण १, देशना निष्फल २, समोवसरणमें तीर्थंकरको उपसर्ग ३, चन्द्र—सूर्यका मूल विमानसे आना ४ और चमरेन्द्रका उत्पात ५ ये पांच अच्छेरे श्री महावीर स्वामीके समयमें हुए।

अब देवेंद्र 'हरिनैगमेषि' देवता से कहताहै— हे देवानुप्रिय! नाम—गौत्र—कर्मके क्षय नहीं होनेपर, जीर्ण

व पूर्ण नहीं होनेपर अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव अंत–प्रांतादि कुलोंमें आकर उत्पन्न हुये हैं, होते हैं और होवेंगे, परन्तु उनका जन्म योनि द्वारा न हुआहै, न होताहै और न होवेगा, तो भी श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी इस जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें माहण–कुंड–ग्राम–नगरमें कोडाल गौत्रवाले ऋषभदत्त ब्राह्मणकी जालंधर गौत्रकी देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें आकर उत्पन्न हुएहैं। इसलिये पहिले भी जो इन्द्र हुए, आगे होवेंगे तथा जो अभी हैं, उन सब इन्द्रोंका यह कर्तव्यहै कि वे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वलदेव,वासुदेवको अंतादि कुलोंसे लेकर उग्रादि कुलोंमें लाते हैं. इसलिये तू जा और श्री महावीर स्वामीको देवानंदाकी कुक्षिसे लेकर क्षत्रीय–कुंड–ग्राम–नगरमें काश्यप गौत्रीय सिद्धार्थ राजाकी वासिष्ठ गौत्रकी त्रिशला रानीकी कुक्षिमें संक्रमण कर और त्रिशलाकी पुत्रीरूपी गर्भको देवानंदाकी कुक्षिमें संक्रमण कर, यह मेरा कार्य कर. तब हरिनेगमेषि देवेंद्रकी इस आज्ञाको सुनकर हर्षित हुआ, संतोष पाया और हाथ जोडकर इन्द्रकी आज्ञा को स्वीकार करके वहांसे निकल कर उत्तर-पूर्व दिशाकी ओर ईशान कोनमें गया, वहां वैक्रीय समुद्घात करके जीव प्रदेशोंको बाहर निकाल कर संख्यात योजनका डंड ऊंचा करके कर्केतन, वज्र, वैडुर्य, लोहिताख्य,

मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक, सौगंधिक, ज्योतिरस, अंजन—पुलक, जातरूप, अंक, स्फटिक, अरिष्ट इत्यादि रत्नोंके असार पुद्गलोंको छोडकर, सार २ पुद्गलोंको ग्रहणकर दूसरी बार वैक्रीय समुद्घात करके उत्तर वैक्रीय शरीर बनाया. मूलरूप भवधारणीय शरीर वहींपर छोडकर, नवीन रूप करके शीघ्र गति से मनुष्य लोकमें आवे, उसका स्वरूप बतलाते हैं:— दो लाख, ८३ हजार, ५८० योजन, ६ कला एक डगलामें छोडने वाली चंडागति, चार लाख, ७२ हजार, ६३३ योजन, एक डगमें भरने वाली चपलागति, छः लाख, ६१ हजार, ६८६ योजन, ५४ कलाको एक पगके अंतरमें छोडनेवाली यत्नागति और आठ लाख, ५० हजार, ७४० योजन, १८ कलाको एक डगमें भरनेवाली वेगवती गति, ऐसी शीघ्र गतियोंसे चले तोभी छः महीनोंमें मनुष्य लोकमें नहीं आसके इसलिये दिव्य गतिसे असंख्य द्वीप—समुद्रोंका उल्लंघन करता हुआ वह हरिनेगमेषि देव इसी जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें माहण कुंड-ग्राम-नगरमें जहांपर ऋषभदत्त ब्राह्मणके घरमें देवानंदा ब्राह्मणी सोतीथी वहां आया, भगवन्को देखकर नमस्कार किया, परिवार सहित देवानंदा ब्राह्मणीको अपस्वापिनी निद्रा दी, भगवान्की माताके शरीरमेंसे अशुभ पुद्गलोंको दूर करके शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप किया और कहा—हे भगवन्! मुझे

आज्ञा दो, ऐसा कहकर भगवान्‌को तथा भगवान्‌की माताको किसी प्रकारकी बाधा-पीडा न हो इस प्रकार देवशक्तिसे भगवान् श्री महावीर स्वामीको हाथ संपुटमें ग्रहण किया और क्षत्रीय—कुंड-ग्राम-नगरमें सिद्धार्थ राजाके महलोंमें सोती हुई त्रिशला रानीके पास आया, वहां आकर परिवार सहित त्रिशला क्षत्रियानीको अपस्वापिनी निद्रा दी, अशुभ पुद्गलोंको दूरकर, शुभ पुद्गलोंका प्रक्षेप करके श्रमण भगवान् महावीर स्वामीको त्रिशला रानीकी कुक्षिमें संचार किया * और त्रिशला रानीके पुत्रीरूपी गर्भको देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें संचार करके, जिसदिशासे आयाथा उसीदिशामें चलागया, अर्थात्—तिरछे लोकके असंख्य द्वीप-समुद्रोंका उल्लंघन करके, ऊर्ध्व देवलोकमें जहां सौधर्म देवलोकहै, जहां सौधर्मावतंसक विमानमें शक्रनामक सिंहासनपर इन्द्र

* कई महाशय गर्भ परिवर्त्तन को असंभव मानते हैं परन्तु वर्त्तमान कालमें प्रत्यक्ष रूपसे यह देखने में आता है कि डाक्टर स्त्रियोंके बीमारी आदि कारणों के उपस्थित होने पर, वैज्ञानिक विधिसे गर्भका परिवर्त्तन करते हैं। तत्त्व दृष्टिसे यही प्रकट है कि माताके गर्भमें जितने ही समय तक कर्म योग होताहै, उतने ही समय तक वह रहता है और उसके पश्चात् डाक्टर द्वारा परिवर्त्तन कर दिया जाताहै। इसी तरह देवानन्दाकी कुक्षिमें भगवान्‌का भी इतने ही समय तक ठहरने का कर्म योग था और उसके पूर्ण होने पर देवता द्वारा उनका स्थानान्तर किया गया। इसका विशेष निर्णय 'श्वेताम्बर-दिगम्बर सम्वाद' नामक ग्रन्थसे जान लेना चाहिये.

बैठाहै, वहांपर वह हरिनेगमेषि देव आया और आपकी आज्ञानुसार मैंने सर्वकार्य कियाहै ऐसा कहनेपर इन्द्र ने उसका सत्कार किया ॥ तिसकाल और तिससमयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी जब देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिमें थे, तब अवधि ज्ञानसे वह जानतेथे कि अभी इन्द्रकी आज्ञासे हरिनेगमेषि देव आकर मुझको त्रिशला रानीकी कुक्षिमें संचारण करेगा, परन्तु जब संचारण किया गया, तब देवके अतीव शीघ्रता--पूर्वक कार्य करनेके कारण भगवान् नहीं जानसके और त्रिशला रानीकी कुक्षिमें आनेके बाद् जान लिया कि हरिनेग-मेषि देवने देवानंदाकी कुक्षिसे त्रिशलाकी कुक्षिमें मेरा संक्रमण करायाहै । उत्तराफल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेसे देवानंदा ब्राह्मणीकी कुक्षिसे भगवान्को ग्रहण करके त्रिशला रानी की कुक्षिमें, इन्द्रकी आज्ञा व भगवान्की भक्तिसे, हरिनेगमेषि देवने, वर्षाकालके तीसरे महीने के पंचमपक्षमें आश्विन कृष्ण १३ के दिन ८२ दिन गये बाद् ८३ वें दिनकी रात्रिमें जब भगवान्का संक्रमण किया, तब आधी रात्रिके वक्त कुछ सोती कुछ जागती हुई देवानंदा ब्राह्मणी मेरे १४ महास्वप्नोंको, सिद्धार्थ राजाकी रानी त्रिशलाने हरण कर लिया, ऐसा स्वप्न देखकर जाग्रत हुई । यहांपर दूसरा व्याख्यान सम्पूर्ण हुआ ॥ २ ॥

अब तीसरा व्याख्यान कहते हैं—दूसरे व्याख्यानमें श्री महावीर स्वामीका गर्भहरणरूप दूसरा च्यवन कल्याणक कहागया अब तीसरे व्याख्यानमें त्रिशला रानीने १४ स्वप्न देखे उसका वर्णन करते हैं:— जिस राज-महलमें त्रिशला रानीने १४ महास्वप्न देखे उस राजमहलका इसप्रकार वर्णन करते हैं:— उस भवनके अन्दर सर्व दिवारोंमें नाना प्रकारके चित्र अंकितहैं, सफेद कलीसे युक्त तथा कोमल २ पाषणोंसे घोटाहुआ चन्द्र-मंडल जैसा देदीप्यमान बाहरका प्रदेशहै, अन्दरकी छतमें रमणीक, विचित्र चंदवे बंधेहुये हैं, उस भवनके अन्दर चन्द्रकान्तादि मणिरत्नों तथा वैडुर्य्य माणिक वगैरहके कारण अंधकार दूर होगयाहै, न बहुत ऊंचा और न बहुत नीचा उसका आंगन सोनेके थालके जैसा शोभित होरहाहै, वह भवन कृष्णागर, शिल्हारस, चंदन, लोबान आदि दशांग धूपसे वासित मघ मघायमान है तथा कर्पूर, कस्तूरी वगैरह सुगन्धी द्रव्योंकी गोलीके जैसा सुगन्धितहै. अब जिस शय्यापर सोती हुई त्रिशला रानी इन स्वप्नोंको देखती है, उस शय्या का वर्णन करते हैं:— वह शय्या अत्यन्त अवर्णनीय, देखनेसे मालूमकी जाने योग्य और पुण्यवानों के योग्यहै. सोनेकी उस सेजकी ईसें हैं, सोनेकेही ऊपले हैं, और प्रवाल रत्नों (मूंगों) के पाये हैं, रेशमकी डोरीसे

विचित्र भांतिसे गुंथीहुई वह सेज है, हंसकी पांखोंसे तथा आककी रुईसे भराहुआ उस सेजके ऊपरका गदेलाहै, उस सेजके दोनों ओर शरीरके बराबर लम्बे तकिये हैं, पैरोंकी जगहभी तकिये हैं इसलिये दोनों तरफसे सेज ऊंची है, बीचमें नीची है, गंगानदीके किनारे की बालूरेतके समान सुकुमार तथा नर्म वह शय्या है, जब उसपर सोना-बैठना न हो तब वह सैज धूली वगैरहसे बचाई जाने के लिये उज्वल वस्त्रसे ढकी हुई रहती हे परन्तु सोने के वक्त वह वस्त्र हटादिया जाताहे, शय्याकी शोभाके लिये ऊपर लालवस्त्र बिछाहुआहे, बुगले के चर्म, रुई, बूर नामकी वनस्पतिके फूल, मक्खन और आकडेकी रुई जैसी अत्यन्त धवल, रमणीक तथा कोमल स्पर्श-वाली है और सुगन्धित पुष्प व चूर्ण उस शय्यापर रक्खे हुये हैं, जिन पुष्पों व चूर्णसे वह शय्या अत्यन्त सुगन्धितहे, उस शय्यापर मध्य रात्रिमें कुछ निद्रालेती कुछ जागती हुई त्रिशला रानीने जिन १४ स्वप्नोंको देखा, उन स्वप्नों का वर्णन करते हैं:—श्री आदीश्वर भगवान्की माताने पहिले स्वप्नमें वृषभ देखा तथा श्री महावीर स्वामीकी माताने पहिले सिंह देखा और बाईस तीर्थंकरोंकी माताओंने पहिले हाथी देखा था इसलिये बहुत तीर्थंकरोंकी अपेक्षासे सामान्य पाठकी रक्षाके लिये यहांपर सूत्रकारने पहिले हाथीका वर्णन किया है.

चौदह स्वप्नों की आदिमें, प्रथम स्वप्नमें त्रिशलाराणी ने हाथी देखा—वह हाथी बडा तेजस्वी, शांत, चार दांतवाला, मोतीके हार, क्षीर समुद्र, चंद्रमाकी किरण, जलके कण, चांदीके वैताढ्य पर्वत समान और वर्षा वर्षने के बाद जैसे बादल सफेद होते हैं वैसे सफेद वर्ण वाला है। उस हाथीके कुम्भस्थल के मदकी सुगंधि से आकर्षित हुए भँवर गुंजार कर रहे हैं। वह हाथी इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान शोभा पारहाहै। और वह हाथी इस तरहसे गरजताहै मानों वर्षाऋतुमें बादल गरज रहे हों; एक हजार आठ लक्षण सहित विशाल अंग वाला वह हाथी है ॥ १ ॥ दूसरे स्वप्नमें बैल देखा—वह वृषभ धवल कमलके पत्तोंके समूहसे भी अधिक श्वेत वर्ण वालाहै, बडा कांतिवान्, प्रभाशाली और सर्व दिशाओंको प्रकाशित करने वालाहै, उसकी शोभाकी बाहुल्यतासे स्फुरती हुई चंचल स्कंद प्रदेशमें स्थूंभी शोभायमान होरही है। उसके रोम निर्मल तथा सूक्ष्माति-सूक्ष्म हैं और बडी शोभाको प्राप्त होरहे हैं, मानों तैलादिसे मालिश किये गये हों, उस वृषभका शरीर स्थिर तथा अत्यन्त सुन्दर है और उसके अंग उपांगमें कृषपना, पुष्टपना जैसा चाहिये, वैसाही शोभायमान हो रहाहै। उसके सींग अत्यन्त दृढ, गोल, महा शोभायुक्त, मैलादि रहित, श्याम, तीक्ष्ण और तैलादिसे ओपे

हुये हैं। वह वृषभ बड़ा शांत-दयालुहै और उसके मुंहमें उज्वल मोतियोंकी मालाके समान दांत शोभायमान हैं ॥ २ ॥ तीसरे स्वप्नमें सिंह देखा-वह सिंह मोतियोंके हारके समूह, क्षीर समुद्र, चंद्र किरण जलके बिंदु तथा चांदीके पर्वतके तुल्य धवल वर्णवाला है। वह अत्यन्त सुन्दर तथा दर्शनीयहै। उसकी प्रकोष्टिका दृढ तथा उसका मुंह गोल, उज्वल और तीक्ष्ण दाढाओं वालाहै। उसके होंठ, किसी चित्रकारने बडी सावधानीसे कमल-पत्र चित्रित किये हों, वैसे सुन्दर दिखते हैं तथा लाल कमलके पत्तेके समान उसके मुंहसे निकली हुई लपलपायमान जिन्हा शोभित है। उसके दोनों पीले नेत्र विजली तथा मुसेमें गाले हुए सोनेके समान आवृत्त वाले और चंचलहैं, उसकी जंघायें विस्तीर्ण और कंधा मजबूतहै। वह सिंह सुकुमार, स्वच्छ, लम्बे-चौडे आकारमय शुभ लक्ष्णों वाली केसरोंकी छटासे विराजमान है, उस सिंहने पृथ्वी पर पूँछको फटकार करके, फिर उठाकर अच्छी तरहसे दोनों कानोंके बीचमें कुंडलाकार करलिया है। वह सिंह क्रूर तथा दुष्ट नहीं है किन्तु शांत और सौम्याकार वाला है। तीक्ष्ण नखवाले ऐसे सिंहको अनेक प्रकारकी लीला करते हुए आकाशसे उतरते और अपनें मुंहमें प्रवेश करते हुए त्रिशला राणीने देखा ॥ ३ ॥ चौथे स्वप्नमें लक्ष्मी देवीको देखा-उस

लक्ष्मी देवीका प्रशस्त रूप वर्णन करते हैं—प्रायः देवोंका जब वर्णन करते हैं, तब चरणोंसे ही करते हैं और जब मनुष्योंका वर्णन किया जाताहै तब मस्तिष्कसे आरंभ करते हैं। इसलिये लक्ष्मी देवीका वर्णन प्रथम चरणों से करते हैः—अच्छी तरहसे रक्खे हुए सोनेके कछुवेके समान मध्यमें ऊँचे और आसपासमें नीचे चरणहैं, नख अत्यन्त उन्नत, सुकुमार, सचीक्कण तथा लालहैं, हाथ—पैरोंकी अंगुलियाँ कमलके पत्रके समान कोमलहैं, और पिंडियां कुरुविंद भूषण विशेषके जैसी हैं, अथवा केलके स्तंभ जैसी हैं, वे पिंडियां गोल अनुक्रमसे नीचे पतली ऊपर २ स्थूल होती हुई शोभायमान हैं, गोडा गुप्त और ऐरावत हाथीकी सूंडके समान जंघा हैं कमरमें सोनेका कंदोरा है, नाभीसे लेकर स्तनों तक रोम राजी शोभायमान है। प्रायः स्त्रियोंके शरीरके इस विभागमें रोम—राजी नहीं होती है और विशेष कर देवियोंके तो होतीही नहीं, तथापि कवियोंका शृंगार स्वभाव होनेसे रोम—राजीका वर्णन किया है. वह रोम—राजी कज्जलके तुल्य श्याम वर्णवाली है और भँवरों की श्रेणिके समान तथा सजल मेघ—घटा जैसी काली है. कटि—प्रदेश मुष्टि—ग्राह्य, मध्य कटि—प्रदेश तीन वलय सहित है, उसके अंगोपांग चन्द्रकांतादिमणि और माणिक्यादि रत्नोंसे जटित स्वर्णमय सर्व आभूषणों

से भूषित हैं । स्वर्ण कलशके समान हृदयमें दोनों स्तन हारों तथा मुकुंदक पुष्पोंकी मालासे शोभित हैं उसके शरीरमें चतुर स्त्रियोंने मोतियोंकी जाली सहित वस्त्र-आभूषण पहिराये हैं. हृदयमें सोनैयोंकी माला, कंठ में मणिसूत्र और कानोंमें दो कुंडल हैं. इस प्रकार आभूषणोंकी शोभासे लक्ष्मी देवीका मुंह विराजमान है । और जैसे—एक राजा कुटुम्बसे शोभित होता है, वैसेही उसका मुँह आभूषणोंसे शोभा पारहा हैं । उसके दोनों नैत्र निर्मल कमल—पत्र सदृश दीर्घ, तीक्ष्ण तथा विशाल हैं। वह हाथमें कमलका पंखा लिये है जिससे जब वह लीलाके लिये चलाती है तब मकरंद गिरता है। उसका केश पाश स्वच्छ, सघन, काला तथा कमर तक लंबायमान है. इस प्रकार लक्ष्मीदेवीके रूपका वर्णन चरण—नखोंसे लेकर वेणी तक किया गया है*, हेमवंत पर्वतकी चोटी + पर बैठी हुई उसको चारों ओरसे आकर हाथी सूंडमें जल भर २ कर स्नान कराते हैं ।

---

* ब्रह्मचारी साधुओंको प्रसंगवश शृंगारके विषयकी व्याख्यामें ऐसे विशेषण सिर्फ प्रसंगका विषय अपूर्ण न रहने के लिये लिखने पडते हैं.

+ अब लक्ष्मी देवीके निवास—स्थानका वर्णन करते हैंः—इस भरत—क्षेत्रके उत्तरमें एक हजार ५२ योजन; १२ कला चौडा और सौ योजन ऊँचा स्वर्णमय और शाश्वत हेमवंत नामक पर्वत है, उस पर दश योजन गहरा पांचसौ योजन

पांचवें स्वप्नमें पुष्पोंकी दो मालायें देखी– उनमें कल्प वृक्षके पुष्प, चंपे के पुष्प, अशोक, नाग, पुन्नाग, पर्यंगु, सिरीष, मोगरा, मालती, जाई, जुई, कोल, कोज, कोरंटक, दमणो, नवमाल्लिका, वकुल, वासंतिका, कमल, उत्पल, पुंडरीक, कुंद, अतिमुक्तक इत्यादि के पुष्प लगे हुए हैं तथा जिनके वीचमें आमकी मंजरियाँ गुंथी हुई हैं.

चौडा, हजार योजन लंबा, वज्रमय तला वाला तथा हीरेकी भींतवाला, निर्मल जलसे भरा हुआ, पद्मह्रद है। उसमें लक्ष्मी देवीके रहने योग्य कमल है। वह कमल एक योजन लम्बा–चौडा, दश योजन पानीमें और दो कोस पानीके ऊपर तथा तीन योजनसे कुछ अधिक परिधिवाला है। हीरेका उसका मूल है, नीलमका कंद है, इन्द्र नीलमकी नाल है, लाल सोनेके बाहरके पत्र और हलके लाल सोनेके अन्दरके पत्र हैं, जिसके अन्दर बीज कोशरूप सोनेकी कर्णिका है, लाल सोनेकी जिसकी केशरा है जो दो कोस लम्बी–चौडी एक कोस ऊँची तथा तीन कोससे कुछ अधिक परिधिवाली है, कर्णिकाके मध्य भागमें श्रीदेवी के योग्य भवन है जो एक कोस लम्बा, आधा कोस चौडा और कुछ कम एक कोस ऊँचा है. उस भवनके पूर्व, दक्षिण व उत्तरमें ५०० धनुष्य ऊँचे तथा २५० धनुष्य चौडे तीन दरवाजे हैं और उसी भवनमें २५० धनुष्य प्रमाण वाली मणिमय वेदी है, जिस पर श्री देवीके योग्य शय्या है. उपरोक्त मूल–कमल १०८ कमलोंसे गोल वींटा हुआहै। ये सब कमल मूल–कमलसे आधे २ हैं, जिनमें श्री देवीके आभूषणहैं, उनके बाहर कमलोंका दूसरा गोलाकार वलयहै, जिसमें श्री देवीके ४ हजार सामानिक देवियोंके रहनेके लिये ४

ऐसी दोनों मालाओं के पुष्पोंकी मनोहर गंधसे आकर्षित भ्रमर गुंजारव कर रहे हैं। सर्व ऋतुओंमें उत्पन्न होनेवाले, सरस, सुगंधी व पंचवर्ण वाले पुष्पों से गुंथी ये दोनों मालायें हैं, जिनमें श्वेतवर्ण वाले पुष्प अधिक हैं, हरे, श्याम, लाल पुष्प भी जहां २ शोभादेते हैं वहां २ गुंथे हुये हैं ॥ ५ ॥

छट्ठे स्वप्नमें पूर्णिमाका चन्द्र देखा—जो गायके दूधके फेण, जलके कण, चाँदीके कलश जैसा धवल तथा

हजार कमल वायव्य, उत्तर, ईशान, इन तीन दिशाओं में हैं। श्री देवीके मन्त्री स्थानीय ४ महात्तरा देवियोंके ४ कमल पूर्व दिशामें, श्री देवी के अभ्यंतर—पर्षदाके ८ हजार गुरु स्थानीय देवोंके ८ हजार कमल अग्नि कोनमें मध्यम—पर्षदाके १० हजार मित्र स्थानीय देवोंके १० हजार कमल दक्षिण दिशामें, बाह्य—पर्षदाके नौकर स्थानीय देवोंके १२ हजार कमल नैऋत कोनेमें और श्री देवीके हाथी, घोडे, रथ, पैदल, महिष, नाटक, गन्धर्व इन सात सेनाओंके सेनापतियोंके सात कमल पश्चिम दिशामें हैं। श्री देवी के १६ हजार अंग—रक्षक देवोंके १६ हजार कमल तीसरे वलयमें हैं और चौथे वलयमें श्रीदेवीके ३२ लाख अभ्यंतराभियोगिक देवों के ३२ लाख कमल हैं, तथा पांचवें वलयमें मध्यमाभियोगिक देवोंके ४० लाख कमल और छट्ठे वलयमें बाह्याभियोगिक देवोंके ४८ लाख कमल हैं. इस प्रकार ये सब १ करोड, २० लाख, ५० हजार, १२० कमल होते हैं. ये सब कमल अनुक्रमसे अर्ध २ प्रमाण वाले तथा शाश्वत हैं और इन कमलों में रहने वाले देव—देवी श्री देवीके आज्ञा-कारी हैं।

हृदय और नेत्रोंको आनन्द-दायक, सर्व कलायुक्त, तमनाशक, शुक्लपक्षमें वृद्धिको प्राप्त होने वाला, कुमुदवनों का बोधक, रात्रिकी शोभा बढ़ाने वाला, उज्वल दर्पणके तुल्य श्वेत, आकाश रूपी तालावमें हंस जैसा, दोनों पक्षोंसे पूर्ण, सर्व तारा नक्षत्रों को सुशोभित करने वाला, कामके बाणोंको पूरणे वाला तथा समुद्रके जलकी वृद्धि करने वाला है। वह अपने उदयसे विरही पुरुष तथा विरहिनी स्त्रीको अत्याधिकदुःखित करने वाला, सौम्यता के कारण सर्व-प्रिय, आकाश-मंडलमें तिलक जैसा तथा रोहिणी के हृदयका बल्लभ * है ॥ ६ ॥ सातवें स्वप्न में सूर्य देखा—वह सूर्य्य अन्धकार हरने वाला, जाज्वल्यमान् तेजवाला, फूले हुये अशोक वृक्ष, केसूके पुष्प, शुककी चोंच, तथा चणोठीके अर्ध भागके सदृश रक्तवर्ण वाला और कमलोंको विकसित करके कमल वनोंकी शोभा बढ़ाने वाला है। ज्योतिष—शास्त्रको बतलाने वाला, ज्योतिष—चक्र ग्रहोंका राजा वह आकाश में साक्षात् प्रदीपके तुल्य विराजमान है। वह हिम-पटलका मिटाने वाला, रात्रिका विनाशक, उदय और अस्त समय दो २ घडी सुखसे और बाकीके समयमें दुःखसे देखने योग्य, उदय और अस्त दोनोंही समयमें एकसा

* चन्द्र की रोहिणी नक्षत्र स्त्री है, ऐसी लौकिक कहावत है।

लाल तथा जगत्का चक्षुभूतहै. जिस प्रकार राजाके अन्तःपुरमें जानेसे मनुष्योंको भय होताहै, उसी प्रकार रात्रिमें चलने वाले पुरुषों को भय होताहै परंतु सूर्योदयमें पाथिक हर्षित होकर चलते हैं क्योंकि उस समय उन्हें किसी तरहका भय नहीं रहताहै। वह अपने उदयसे शीतके वेगका हरण करने वाला, मेरुपर्वतके चारों ओर प्रदक्षिणा देने वाला, विस्तीर्ण भूमंडलको रक्त करने वाला तथा अपनी हजार * किरणोंके बलसे चंद्रादि ग्रह, नक्षत्र, तथा तारागणों की प्रभाको दूर करने वाला है ॥ ७ ॥

आठवें स्वप्नमें सोने के डंडे वाला तथा १००८ चक्री वाला ध्वज देखा—उसमें नीली, पीली, लाल, श्याम और श्वेत इन पांच प्रकारके वर्णों वाले वस्त्रोंकी ध्वजायें लगी हुई हैं और उसके सिरपर अत्यन्त सुन्दर तथा विचित्र रंगों वाले मयूर पंख विराजमानहैं। वह ध्वज अधिक शोभायमान है, उस ध्वजके ऊपर एक बडी ध्वजा लगी

---

* चैत्र मासमें सूर्य्य के १२००, किरणें होती हैं, वैशाखमें १३००, ज्येष्ठमें १४००, आषाढमें १५००, श्रावण—भाद्रपदमें १४००, आश्विन में १६००, कार्त्तिक में ११००, मार्गशीर्ष में १०५०, पौष में १०००, माघ में ११००, और फाल्गुण में १०५०, ऐसा ग्रंथों में कहा है।

हुई है जिसमें स्फटिक, शंख, कुन्दके पुष्प, जलके कण, चाँदीके कलशके तुल्य श्वेत सिंहका रूप लिखा हुआहै जो सिंह, हवासे ध्वजाके हिलनेपर, आकाश मंडलको भेदन करता हुआ मालूम होताहै और मंद २ तथा निरुपद्रव वायुसे थोडी कंपायमान वह ध्वजा अत्यन्त शोभित होरही है ॥ ८ ॥ नवम स्वप्नमें त्रिशला राणीने उत्तम सोनेका अत्यन्त सुन्दर सूर्य्य–मंडलके जैसा प्रकाशवान् तथा सुगन्धी जलसे भरा हुवा एक पूर्ण कलश देखा– वह कुम्भ कमलोंसे घिरा हुआ, सर्व मंगलकारी, रत्नोंके कमलपर रक्खा हुआ, नेत्रोंके लिये आनन्ददायक, प्रभा-युक्त, सर्व दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ, साक्षात् लक्ष्मीका घर जैसा, पाप रहित, शुभ तथा भास्वरहै और कंठमें सर्व ऋतुओं में उत्पन्न होनेवाले सरस, सुगन्धी पुष्पोंकी माला पहिने हुये है ॥ ९ ॥ दशवें स्वप्नमें पद्मसरोवर देखा– जिसमें सूर्यके उदयसे सहस्त्रदल कमल खिल रहे हैं, जिसका जल विकस्वरमान् कमलों के मकरंदसे सुगन्धमय है तथा कमलों के पुष्प, पत्रोंसे पीले वर्ण वाला दिखाई देरहा है और जिसमें अनेकों जलचर सुख पूर्वक रहते हैं। कमलनी के पत्रोंपर जल–विन्दु पडे हुये ऐसे मालूम होते हैं मानों नीलमणि-जटित आंगनमें मोती जडे हों। उस विशाल पद्मसरोवरमें उत्पन्न हुए सूर्य विकासी कमल,

चंद्रविकासी कुवलय, पद्म, उत्पल (नीलकमल), तामरस (महाकमल), पुंडरीक (श्वेत कमल), रक्त कमल, और पीत कमल इत्यादि कमलों में प्रसन्न भ्रमरगण, सुगंधीसे आकर्षित हुए, गुंजारव कर रहे हैं और उस सरोवरमें कदंबक, कलहंस, चक्रवाक, बालहंस, सारस इत्यादि पक्षी गर्व-पूर्वक निवास कर रहेहैं ॥१०॥ ग्यारहवें स्वप्नमें चन्द्रमाकी किरणों जैसी शोभावाले क्षीर-समुद्रको देखा- जिस समुद्रका जल चारों दिशाओंमें बढरहा है तथा चपलसे भी चपल और अत्यन्त ऊँची उठनेवाली कल्लोलें तट-प्रदेशसे टकरा २ कर उसे क्षोभित करती हुई जोरका शब्द कररही हैं. वे लहरें पहिले छोटी, पीछे बडी इस प्रकार निर्मल, उत्कट क्रमके साथ दौडती हुई अत्यन्त शोभित होरही हैं। उस समुद्रमें महामगरमच्छ, तिमिमच्छ, तिमितिमिंगलमच्छ (महाकाय होनेसे दूसरे मच्छोंको निगलें तथा उनको रोकें ऐसे मच्छ), तिलतिलकलघु मच्छ, ये सब जलचर क्रीडा करते हुये पानी पर जब २ अपनी पूँछ पछाडते हैं तो उस (पानी) पर झाग उत्पन्न होते हैं जो फेण किनारे पर आकर कर्पूरके ढेरके तुल्य दिखाई देते हैं और उसी समुद्रमें गंगा, सिन्धु, सीता, सीतोदादि महानदियां बडे वेगसे आकर गिरती हैं. यद्यपि ये नदियां क्षीर समुद्रमें नहीं गिरती,

तथापि समुद्रकी शोभारूपमें इनका वर्णन किया गया है ॥ ११ ॥ बारहवें स्वप्नमें पुंडरीक नामक विमान देखा— जिस प्रकार कमलोंमें पुंडरीक (श्वेत कमल) श्रेष्ठहे, उसी प्रकार देव–विमानोंमें पुंडरीक विमान श्रेष्ठ कहा गयाहे. वह विमान रत्न जटित स्वर्णके १००८ स्थंभों वाला, आकाशमें दीपक तथा उदय होते हुये सूर्य्य जैसा देदीप्यमान्हे. उस विमानकी दिवारों में नागफणके आकारवाली सोनेकी खूँटियां हैं जिनमें जगह २ दिव्य, देव–सम्बन्धी पुष्पों व मोतियोंकी मालायें लगी हुई हें और उन दिवारों में मृग, वृक, वृषभ, अश्व, गज, मगर, मच्छ, भारंड, गरुड, मयूर, सर्प, किन्नर, कस्तुरिया मृग, अष्टापद, शार्दुलसिंह, वनलता, पद्मलता, इत्यादिके चित्र अंकित हैं । उस विमान में होनेवाले नाटकोंके नाना प्रकारके वाजिंत्रोंका तथा महामेघके शब्दके तुल्य गंभीर देव–दुन्दुभी का मनोहर और सब लोकको पूर्ण करनेवाला शब्द होरहा है. देवोंके योग्य तथा सुख-दायक वह विमान कृष्णागर, कुंदरूक, सिलारस वगैरह दशांग धूपसे सुगन्धमय तथा उद्योतवाला है ॥ १२ ॥ तेरहवें स्वप्न में सोनेके विशाल थालमें पुलक, वज्र, नीलम, सासक, करकेतन, लोहिताख्य, (माणिक), मरकत (पन्ना), प्रवाल, सौगन्धिक, हंसगर्भ, अंजन, चन्द्रप्रभ इत्यादि रत्नोका पुंज मेरुके समान उंचा ओर आकाश

मंडलमें देदीप्यमान् प्रकाश करता हुआ देखा ॥ १३ ॥ चौदहवें स्वप्नमें विस्तीर्ण, उज्वल, निर्मल, पीत-रक्तवर्ण वाली तथा मधु, घृतसे सींची हुई, धग् २ शव्द करती हुई जाज्वल्यमान् निर्धूम अग्नि शिखा देखी—वह अग्नि शिखा अनेक छोटी, बड़ी ज्वालाओं से व्याप्त है और धूम्र रहित प्रकाशमान् अनेक ज्वालायें आपसमें प्रवेश करती हुई कहीं २ तो आकाश प्रदेशको पचाती हुई मालूम होती हैं॥ १४ ॥ इस प्रकार इन चौदह महा स्वप्नोंको त्रिशला रानीने आकाशसे उतरते हुए और अपने मुखमें प्रवेश करते हुए देखा. यदि तीर्थंकरका जीव देव—लोकसे च्यवकर माताके गर्भमें उत्पन्न होवे तो माता बारहवें स्वप्नमें देव विमान देखे, परन्तु यदि तीर्थंकरका जीव नर्कसे निकल करके माताके गर्भमें उत्पन्न हो तो १२ वें स्वप्नमें उनकी माता भुवन देखे, इतना विशेष है । इन चौदह स्वप्नोंको शुभग-सौम्य-प्रियदर्शनवाले देखकर त्रिशला रानी शय्या पर जागी, कमल जैसे नयन विकसित हुये, हर्षके कारण उसका सर्व अंग उल्लसित हुआ और सर्व रोम राजी विकाश-मान् हुई ।

इन चौदह स्वप्नोंको, सर्व तीर्थंकरोंकी मातायें, जब तीर्थंकरोंका जीव गर्भमें उत्पन्न होताहै तब अवश्य

देखती हैं। इस कारणसे त्रिशला रानीभी श्रीमहावीर स्वामीके गर्भमें * आनेसे इन चौदह महास्वप्नों को देखकर शय्या पर जाग्रत हुई। तब हर्ष—सन्तोष युक्त हृदयवाली, मेघकी धाराओंसे सींच हुये कदम्बके पुष्प सदृश उठे हुए रोमवाली त्रिशला रानी उन स्वप्नोंको क्रमशः याद करने लगी। उसके बाद शय्यासे उठकर, पादपीठसे उतर करके, मन—काया संबंधी चापल्य—स्खलनादि रहित, दिवार वगैरहका आधार न लेती हुई, राजहंसीके तुल्य गतिसे चलती हुई सेज पर सोते हुये सिद्धार्थ राजाके पास आई और सिद्धार्थ राजाको वल्लभ, सदा वांच्छनीय, द्वेष रहित, मनोज्ञ, मनोरम, उदार, वर्णस्वरके उच्चारणसे प्रकट, कल्याण करने वाली, समृद्धि करने वाली, धनके लाभको कराने वाली, मंगलकारी, अलंकारादि शोभा युक्त, हृदयको प्रसन्न करने वाली, भरतारके हृदयको आह्लाद-दायक, कोमल मधुर रसवाली, सम्पूर्ण उच्चार वाली, मित-पद-वर्णादि वाली तथा कमशब्द परन्तु बहुत अर्थवाली वाणीसे राजाको जगाया. तदनन्तर राजाकी आज्ञासे त्रिशला रानी

---

* इस विषय पर सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करने पर यही बात अच्छी तरहसे सिद्ध होती है कि सूत्रकारने तथा टीकाकारोंने सर्व तीर्थंकरोंके च्यवन कल्याणक की तरह त्रिशला माताके चौदह महा स्वप्न देखनेको ही श्री महावीर स्वामीका च्यवन कल्याणक माना है।

रत्न जटित सोनेके भद्रासन पर बैठकर मार्गमें आनेका श्रम दूर करके, सिद्धार्थ राजासे पूर्वोक्त उत्तम वाणी द्वारा आनन्द पूर्वक इस प्रकार बोली—हे स्वामिन् ! आज पूर्वोक्त शय्या पर कुछ निद्रालेती कुछ जागती हुई मैंने हाथीसे लेकर निर्धूम अग्नि शिखा पर्यन्त चौदह महास्वप्न देखे हैं और अब मैं आपसे पूछती हूं कि इन चौदह महास्वप्नोंका कल्याणकारी क्या फल होगा ? तदनन्तर वह सिद्धार्थ राजा यह बात सुन करके अत्यन्त प्रसन्न, प्रीति सहित भव्य मन वाला, हर्षके कारण विस्तृत हृदयवाला हुआ और मेघकी धारओं से सींचे हुए कदम्ब वृक्षके पुष्प जैसी रोमराजी विकसित हुई. उन स्वप्नों को सुन करके तथा उनपर विचार करके सिद्धार्थ राजा त्रिशला रानीसे कहने लगा— हे देवानुप्रिय ! उदार, कल्याणकारक, उपद्रव हरने वाले, धन्य, मंगलकारक, शोभा साहित तथा निरोगता, तुष्टि, दीर्घआयुः करने वाले जो तूने स्वप्न देखे हैं उन स्वप्नोंसे अर्थका लाभ होगा, भोगका लाभ होगा, पुत्रका लाभ होगा, सुख व राज्य इत्यादिका लाभ होगा, नव महीने साढेसात दिवस के पश्चात् हमारे कुलमें ध्वज समान, दीपक जैसा देदीप्यमान् , पर्वतके समान स्थिर, तिलकके समान कुलकी शोभा बढ़ाने वाला, सूर्य जैसा तेजस्वी तथा द्वीपके समान आधार भूत, कुलकी समृद्धि—निर्वाह—कीर्ति तथा

वृत्ति करनेवाला, कल्प-वृक्षके समान बहुत से लोगोंको आश्रय देकर कुलकी प्रतिष्ठाकी वृद्धि करने वाला, परि-पूर्ण इन्द्रियों व लक्षण, व्यंजन, गुण युक्त शरीर वाला, सुकुमार हाथ पैर वाला, चन्द्रमाके जैसा सौम्याकार, सुन्दर, सदा वांछनीय, प्रिय—दर्शनीय पुत्र होगा। जब वह बालक बडा होगा तब सर्व-विज्ञान-ज्ञाता, शूर, महादानी, अपनी प्रतिज्ञाका पालन करने वाला, संग्राममें अभंग वह समस्त भूमंडलको विजय करके बडे २ राजाओंका राजा होगा। इस प्रकार दो तीन वार कह करके सिद्धार्थ राजाने त्रिशला रानीके देखे हुये स्वप्नोंकी अत्यन्त प्रशंसा की। त्रिशला रानी राजाके मुखसे ऐसा सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुई और हाथ जोडकर अंजली बांधे हुये राजासे इस प्रकार बोली—हे स्वामिन्! जो आपने कहा वह विल्कुल सत्य है, मैंने भी यही सोचा था। इस प्रकार कहकर सिद्धार्थ राजाकी आज्ञासे मणिजटित सोनेके भद्रासनसे उठकर चंचलता रहित होकर, राजहँसी सदृश गतिसे शीघ्रही अपनी शय्या पर आगई। वहां आकर मेरे देखे हुये सर्वोत्कृष्ट प्रधान मंगल-कारी १४ महा स्वप्न किसी खराब स्वप्नके देखनेसे निष्फल न हों इसलिये अब मुझे निद्रा लेना उचित नहीं किन्तु देव—गुरु संबंधी प्रशस्त, मांगलिक धर्म्म—कथाओंसे स्वप्न—जागरिका करनी चाहिये, ऐसा विचारकर

स्वयं जागती हुई, सेवक सखीजनोंको जगाती हुई और धर्म कथा करती हुई त्रिशला रानीने रात्रि व्यतीतकी।

॥ इति तीसरा व्याख्यान सम्पूर्ण ॥

अब चौथा व्याख्यान कहते हैं:—तीसरे व्याख्यानमें त्रिशला रानीके १४ स्वप्न देखनेका अधिकार कहागया और चौथे व्याख्यानमें स्वप्न पाठकोंका तथा भगवान्के जन्मका अधिकार कहते हैं:— सिद्धार्थ राजा प्रभात में कौटुम्बिक पुरुषोंको बुलाकर इसप्रकार कहने लगा–हे देवानुप्रिय ! आज सभा–मंडपमें सुगन्धित जल छिडक कर, गोबरसे लीपकर, पांच वर्णवाले सरस पुष्पोंसे तथा सुगन्धि चूर्णसे और दशांग धूपसे सुगन्धित करके सिंहासन स्थापित करो, इस प्रकार तुम करो दूसरोंसे कराओ और मेरी आज्ञानुसार सर्व कार्य होजाने बाद मुझे सूचना दो. तब वे आज्ञाकारी पुरुष, राजाकी आज्ञा स्वीकार कर, दोनों हाथ जोडकर राजाको नमस्कार करके वहांसे चले और राजाकी आज्ञानुसार सर्व कार्य करके राजाके पास वापिस आकर निवेदन कर दिया। तदनन्तर सूर्योदय समय सरोवरमें कमल विकसित होने लगे, रात्रिमें कृष्णमृगोंके निद्रासे मिले हुए नैत्र प्रभातमें खुलने लगे, रक्त अशोक–वृक्षके प्रकाश, फूलेहुए किंशुले, तोतेके मुख, चीरमीके

अर्धभाग, कबूतरके पर और नैत्र, कोयलके नैत्र, जासुके पुष्प तथा जातिवाले हींगलुके पुंजके तुल्य रक्त-वर्णवाला प्रभात हुआ, सर्व जगत्में कुंकुम समान लालिमा छाई और जाज्वल्यमान् दिनकरकी हजार किरणों से जब अंधकार दूर हुआ तब सिद्धार्थराजा शैजसे उठकर पादपीठपर पैर रखकर नीचे उतरकरके मल्लयुद्ध-शालामें आया। वहां पर डंड-बैठकका करना, मुद्गर वगैरहका उठाना, ऊँचा नीचा कूदना, भुजाओंका मोडना, मल्लयुद्धादि का करना इत्यादि क्रियाओंसे राजा विशेषरूपसे थकगया। उसके बाद राजा सौ औषधियोंसे बनाये हुये अथवा सौ द्रव्यसे निष्पन्न हुये सतपक्व तेलसे तथा हजार औषधियोंसे बनेहुये सहस्रपक्व तेलसे स्वशरीरमें मर्दन करवाने लगा, जो मर्दन अत्यन्त गुणकारी, रस-रुधिर धातुओंकी वृद्धि करनेवाला, क्षुधा अग्निको दीप्त करनेवाला, बल, मांस, उन्मादको बढानेवाला, कामोद्दीपक, पुष्टिकारक, तथा सर्व इन्द्रियोंको सुखदायक था। और मर्दन करनेवाले संपूर्ण अंगुलियों सहित सुकुमार हाथ-पैरवाले, मर्दन करनेमें प्रवीण और अन्य मर्दन करनेवालोंसे विशेषज्ञ, बुद्धिमान् तथा परिश्रमको जीतनेवाले थे. उन पुरुषोंने अस्थि, मांस, त्वग्, रोम, इन चारोंको सुखदायक राजाके मर्दन किया। तदनंतर सिद्धार्थ राजा मोतियोंकी जाली सहित नाना

प्रकारके चन्द्रकान्तादिमणि, तथा वैडुर्यादि रत्नोंसे जटित आंगनवाले मज्जनघरमें प्रवेश करके, नाना प्रकार की मणियोंसे जाटित स्नान पीठपर बैठा और पुष्पोंके रस सहित, चन्दन, कर्पूर, कस्तूरी सहित, पवित्र नि-र्मल गंगाजलसे कल्याणकारक स्नान किया। उसके बाद उसने पक्ष्मयुक्त अर्थात्–सुकुमार केसर, चन्दन, कस्तूरी, वगैरह सुगन्धि द्रव्योंसे वासित वस्त्रसे शरीरको पूँछा, प्रधान वस्त्र धारण किये, गोशीर्ष चंदन का विलेपन किया, पवित्र पुष्पमाला पहिनी, केसर वगैरहका तिलक लगाया, मणि, रत्न और सुवर्णके-बनेहुए आभरण पहिने, अठारह, नौ, तीन और एक लडीके हार हृदयमें धारण किये, बहुतसे हीरों और मणियोंसे जटित मोतियोंके लंबे २ फूंदों सहित कटि–भूषण कमरमें पहिना, हीरे माणिकादिके कंठे आदि आभूषण गलेमें धारण किये, अंगुलियोंमें अंगूठी वगैरह पहिनी, और नाना प्रकारकी मणियोंसे निर्मित बहु-मूल्य कडे हाथमें तथा भुजाका आभरण भुजामें पहिना। इस प्रकार कुंडलोंसे राजाका मुख शोभता है, मुकुटसे मस्तिष्क दीपता है, मुंदरियोंसे अंगुलियां पीली होगई हैं, बहुमूल्य पत्तनका बनाहुआ अत्यन्त उत्तम वस्त्रका उत्तरासन किया है, नाना प्रकारके रत्न, मणि और स्वर्णसे जटित, चतुर कारीगरसे बनाया हुआ

वीरवलय बाहुमें धारण किया है जिनको धारण करनसे वह वीरपुरुष, सिद्धार्थ किसीसे जीता नहीं जासकता था, वहुत वर्ण करनेसे क्या ? जैसे कल्पवृक्ष पुष्प–पत्तोंसे विराजमान होता है, उसी प्रकार सिद्धार्थ राजा भूषण वस्त्रोंसे शोभितथा, कोरंट वृक्षकेश्वेत पुष्पोंकी मालासे शोभित छत्र मस्तिष्क पर धारण किये हुए था, अति उज्वल, चँवर ढुल रहे थे और चारों ओर लोग राजाकी जय जयकार कररहे थे। इस प्रकार पुरुष-सम्वन्धी सौलह श्रृंगार धारण करके अनेक दंड नायक, गणनायक, राजेश्वर, सामंत, महासामंत, मंडलिक, मंत्री, महामंत्री, सेठ, सार्थवाह, अंग–रक्षक, पुरोहित, दंडधर, धनुषधर, खड्गधर, छत्रधर, चँवरधर, तांबूलधर, शय्यापालक, गजपालक, अश्वपालक अंगमर्दक, आरक्षक और संधिपाल इत्यादिके साथ मज्जनघरसे निकलता हुआ धवल महामेघसे निकलते हुये गृह-नक्षत्र तारागणोंमें चन्द्र समान, लोक-प्रिय, नरवृषभ, नरसिंह वह राजा राज्य लक्ष्मीसे शोभित होकर सभा मंडपमें आकर, पूर्व दिशाके सन्मुख सिंहासन पर बैठ गया, ईशान कोनमें वस्त्रसे ढके हुए सर्षोंसे मंगलकारी किये हुए आठ भद्रासन रखवाये और रत्नजटित, दर्शनीय, बहुमूल्य, प्रधान पत्तनसें उत्पन्न, अतीव स्निग्ध उत्तम वस्त्रका पर्दा अपनेसे न अधिक दूर न अधिक पास ऐसे

स्थान पर बंधवाया. वह पर्दा मृग, वृक, रोज, वृषभ, मनुष्य, मगरमच्छ, पक्षी, सर्प, किन्नर (देव--विशेष), कस्तूरिया मृग, अष्टापद, सिंह, चमरी गौ, हाथी, वनलता, पद्मलता, कमलकी वेल इत्यादिके चित्रोंसे शोभित था. उसके मध्यमें त्रिशला रानीके बैठनेके लिये मणिरत्नजडित, कोमल, अंगको सुखकारी स्पर्शवाले मखमलके बनेहुए और ऊपर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित भद्रासनको रखवाया. तत्पश्चात् उस राजाने कौटंबिक पुरुषोंको बुलाकर दिव्य, उत्पात, अंतरिक्ष, भौम, अंग, स्वर, लक्षण, व्यंजन इन अष्टांग निमित्तके पारगामी, शास्त्रोंमें कुशल स्वप्न-लक्षण-पाठकोंको बुलानेकी आज्ञादी, जिसे सुनकर वे कौटंबिक पुरुष हर्षित हुए, सन्तोष पाये और विनय सहित राजाकी आज्ञा स्वीकारके वहांसे निकलकर क्षत्रीयकुंड नगरके मध्यमें होकर स्वप्न लक्षण पाठकोंके घर आये. आकर उन्होंने स्वप्न-लक्षण-पाठकोंसे कहा--हे स्वप्नलक्षणपाठको ! आपको सिद्धार्थ राजा बुला रहाहै. स्वप्नलक्षणपाठक भी कौटंबिक पुरुषोंके मुखसे ऐसा सुनकर अत्यन्त हर्षित हुये, सन्तोष पाये, स्नान किया, देवपूजाकी, निर्मल वस्त्र पहिने, तिलक, सर्षप, दूव, अक्षतादि मांगलिक वस्तुयें मस्तिष्क पर धारणकी, दुःस्वप्नादिका निवारण करने लिये अपने मंगल किये, राज-सभामें प्रवेश योग्य स्वर्णादि बहुमूल्य

तथा कम कीमतके (दृष्टि दोष निवारण के लिये लोह मुद्रिकादि) आभूषण धारण किये और क्षत्रीय-कुंड-नगर के मध्यमें होकर राज-सभाके दरवाजे पर सब इकट्ठे हुए और अपनेमें से एकको मुखिया * बनाकर सभामंडप में सिद्धार्थ राजाके पास आये. वहाँ आकर हाथ जोडकर हाथ ऊंचे करके, हे राजन्! स्वदेशमें आपकी जय हो, विदेशमें आपकी विजय हो इस प्रकार जय-विजयसे राजाको बधाया और आशीर्वाद दिया—

"दीर्घायुर्भव वृत्तिमान् भव, सदा श्रीमान् यशस्वी भव।
प्रज्ञावान् भव भूरिसत्त्वकरुणादानैकशोण्डो भव।
भोगाढ्यो भव भाग्यवान् भव, महासौभाग्यशाली भव।

---

* एक समय विदेशसे पांच सौ सिपाही नौकरीके वास्ते राज-सभामें आये। वे ५०० ही स्वतन्त्र थे मगर हथियारादि से देखने में बड़े खूबसूरत थे। ऐसा देखकर राजाने उनकी परीक्षा करने के हेतु सबके लिये रात्रिमें सोनेको सिर्फ एक शय्या भेजी परन्तु उनमें तो सब अपने आपको बडे समझने वाले थे, इसलिये बीचमें शय्या रखकर पलंगके सामने अपना २ पांव रखकर सब सो गये. राजाने गुप्तचरों द्वारा यह वार्ता सुनकर और मनमें यह विचार करके कि यदि ये लोग लडाईमें जावें तो अफसरके आधीन कदापि नहीं रह सकते, उन सबको निकाल दिया। कुसंपसे कोई कार्य सफल नहीं होता, संपसे ही कार्य-सिद्धि होती है।

प्रौढश्रीर्भव कीर्त्तिमान् भव, सदा विश्वोपजीवी भव ॥ १ ॥"

हे महाराज ! आप दीर्घायुः होवें, वृत्तिमान् होवें, सदा लक्ष्मीवान् होवें, यशस्वी, बुद्धिमान् होवें, प्राणी रक्षक होवें, महादानी–भोग्यसंपदावाले होवें, भाग्यवान् होवें, सौभाग्य शाली होवें, श्रेष्ठ लक्ष्मीवाले, कीर्त्तिवान् और हमेशा समस्त प्राणियोंका भरण पोषण करने वाले होवें। सिद्धार्थ राजाको श्री पार्श्वनाथ स्वामीका श्रावक जानकर श्री पार्श्वनाथजीकी स्तुति–पूर्वक आशीर्वाद दिया—

दशावतारो वः पायात्, कमनीयाञ्जनद्युतिः। किं प्रदीपो नहि श्रीपः, किन्तु वामांगजो जिनः ॥ १ ॥

दश हैं अवतार जिनके वे दशावतार और मनोज्ञ कज्जल जैसी द्युतिवाले ऐसे जो कोई हैं वे आपके रक्षक होवें, ऐसा दीपक है ? किन्तु दीपक भी नहीं, लक्ष्मीकी रक्षा करने वाला कृष्णभी दशावतार है तब कहते हैं कि श्रीकृष्ण भी नहीं। किन्तु वामारानीके पुत्र, कज्जल जैसी हरि और मनोहर शरीरकी कान्तिवाले श्रीपार्श्वनाथ तीर्थंकर, जिनके अमरभूति वगैरह दश-भव हुये हैं, आपकी रक्षा करने वाले होवें।

इस प्रकार आशीर्वाद सुनकर सिद्धार्थ राजाने उन सब स्वप्न-लक्षण-पाठकोंको नमस्कार किया, वस्त्र,

अलंकारादि दे करके सत्कार किया, स्तुतिकी और अभ्युत्थानादिसे सन्मानित करके तथा भद्रासन पर बैठा कर सन्तोष प्रदान किया। सिद्धार्थ राजाने त्रिशला रानीको भी बुलाकर पर्देके भीतर भद्रासन पर बैठाया और राजा-रानी दोनोंके मांगलिक फल-फूलादिसे परिपूर्ण हाथ वाले होनेपर, राजा विनय सहित स्वप्न-लक्षण-पाठकों से इस प्रकार बोला—हे स्वप्न-लक्षण-पाठकों ! राज-भवनमें शय्या पर कुछ निद्रा लेती कुछ जागती हुई त्रिशला रानीने आज हाथी, वृषभ, सिंहादि चौदह महास्वप्न देखे हैं, अब मैं आपसे पूछताहूँ- इन स्वप्नोंका कल्याणकारक क्या फल होगा ? राजाके मुखसे स्वप्नोंका वृत्तान्त सुनकर, प्रसन्न होते हुये उन सर्व स्वप्न-लक्षण-पाठकोंने अपने २ मनमें उनके फल पर विचार किया और फिर परस्पर फलोंके सम्बन्धमें वार्तालाप कर, एक मत होकर और फलका पूर्ण रूपसे निश्चय करके वे इस प्रकार बोले— हे महाराज ! हमारे स्वप्न-शास्त्र में ४२ स्वप्न मध्यम फलके देनेवाले और ३० स्वप्न महा फलके देने वाले कहे हैं, जो कुल मिलाकर ७२ स्वप्न होते हैं। हे राजन् ! तीर्थंकरकी माता, चक्रवर्तीकी माता, तीर्थंकरका जीव तथा चक्रवर्तीका जीव गर्भमें उत्पन्न होनेसे ३० स्वप्नोंमें से हाथीसे लेकर निर्धूम अग्निशिखा पर्य्यन्त १४ महास्वप्न देख करके जाग्रत होती हैं।

वासुदेवका जीव गर्भमें उत्पन्न होने से वासुदेवकी माता सात महा स्वप्न देखकर जागती है, बलदेवका जीव गर्भमें उत्पन्न होनेसे बलदेवकी माता चार महा स्वप्न देखती है, मंडलीक राजाका जीव गर्भमें उत्पन्न होनेसे उनकी माता चौदह स्वप्नोंमें से एक स्वप्न देखकरके जागती है। इसलिये हे नरेन्द्र! त्रिशला रानीने आरोग्य, तुष्टि, दीर्घायुः करनेवाले ये प्रधान स्वप्न देखे हैं, ऐसे उत्तम स्वप्न रोगी, अल्पायुः, दरिद्री और भाग्यहीन नहीं देखसकता. इन स्वप्नों के प्रभावसे आपके धनका लाभ होगा, पंचेंद्रिय सुखका लाभ होगा, पुत्रका और राज्यका लाभ होगा और नौ महीने साढे सात दिनके पश्चात् त्रिशला रानीके गर्भसे आपके कुलमें अद्भुत होनेसे ध्वजा सरीखा, प्रकाशक होनेसे आपके कुलमें दीपक जैसा, अजय होनेसे कुलमें पर्वतके समान, मांगलिक होनेसे कुलमें मुकुटसदृश, सबके वन्दनीय होनेसे कुलमें तिलक सरीखा, कुटुम्बकी शोभा बढाने वाला होनेसे कीर्त्तिकारक, कुलमें कुल-सन्ततिकी तथा समृद्धिकी वृद्धि करने वाला होनेसे कल्पवृक्ष सरीखा, सर्व कुटुम्बका आश्रय--दायक होनेसे कुलका आधार स्वरूप पुत्ररत्न उत्पन्नहोगा, जो कोमलांग, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय सहित, लक्षण, व्यंजन, गुणयुक्त, मान, उन्मान, प्रमाण पूर्ण सुन्दर शरीर वाला, शशिवत् सौम्याकार, मनोज्ञ और प्रिय दर्शनीय होगा। सयाना होने पर

वह बालक सर्व विज्ञानका ज्ञाता होगा और युवावस्थाको प्राप्त करने पर वह महादानी, संग्राममें अजय, वीर, पराक्रमी समस्त पृथ्वीको अपने वशमें करके बडे २ राजा महाराजाओं का स्वामी चक्रवर्ती महाराजा और अन्तमें राग–द्वेषादि कर्म–शत्रुओंको जीतकर तीन लोकका स्वामी तीर्थंकर होगा।

अब उन चतुर्दश महास्वप्नोंका पृथक् २ फल कहते हैं— हे राजन्! त्रिशला रानीके चार दांतवाला हाथी देखनेसे, आपका पुत्र दान–शील–तप और भाव, इन चार प्रकारके धर्मका उपदेशक होगा १, वृषभके देखनेसे भरतक्षेत्रमें सम्यक्त्वरूप बीज बोवेगा २, सिंह देखनेसे आठ–कर्मरूपी हाथियोंका विदारण करेगा ३, लक्ष्मी देखनेसे संवत्सरी दान देकर पृथ्वीको हर्षित करनेवाला अथवा तीर्थंकररूपी लक्ष्मीको भोगनेवाला होगा ४, पुष्पमालाओं के देखनेसे समस्त प्राणी इसकी आज्ञा मस्तिष्क पर धारण करेंगे ५, चन्द्र देखनेसे सर्व भव्यलोगोंके नेत्र व हृदयको आह्लादित करने वाला होगा ६, सूर्य देखनेसे उसके पीछे भामंडल दीप्ति-युक्त होगा ७, ध्वज देखनेसे आगे धर्म्म–ध्वज चलेगा, ८, पूर्णकलश देखनेसे ज्ञान धर्म्मादिसे सम्पूर्ण वह भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाला होगा ९, पद्मसरोवर देखनेसे देवता इसके विहारमें चरणों के नीचे सोनेके कम-

ल स्थापित करेंगे १०, क्षीर-समुद्र देखनेसे ज्ञान-दर्शन-चारित्रादि गुणरत्नोंका आधारभूत वह धर्म्म मर्यादाका धारण करनेवाला होगा ११, देवविमान देखनेसे चार प्रकारके स्वर्गवासी देवोंको मान्य और आराध्य होगा १२, रत्न-राशि देखनेसे समवसरणके तीनगढोंमें विराजमान् होकर धर्मोपदेश करनेवाला होगा, १३ और निर्धूम अग्निशिखा देखनेसे भव्यजीवों के लिये कल्याणकारी तथा मिथ्यात्वशीतका हरनेवाला होगा १४.

अब सर्व स्वप्नोंका एक साथ फल कहते हैं—हे राजन्! त्रिशलारानीके इन चौदह स्वप्नोंको देखनेके कारण आपका पुत्र चौदह राज-लोकके मस्तकपर रहनेवाला होगा। चक्रवर्तीकी माता इन्हीं चौदह स्वप्नोंको कुछ धुंधले देखती है परन्तु तीर्थंकर की माता अत्यन्त निर्मल देखती है, इतना ही अन्तर है।

अब वे स्वप्न-लक्षण-पाठक सिद्धार्थ राजासे स्वप्न देखनेका कारण कहते हैं— यदि मनुष्य अति हास्य करके, शोक करके, अत्यन्त कोप करके, तथा अधिक उत्साह, घृणा व भयके कारण अथवा भूख, प्यास तथा मूत्र-पुरीष की बाधासे सोता होतो उससे देखे हुये स्वप्न निष्फल होते हैं। रात्रिके पहिले प्रहरमें देखा हुआ स्वप्न एक वर्षमें फल देताहै, दूसरी प्रहरमें देखाहुआ छः महीने में, तीसरी प्रहरमें देखाहुआ तीन

महीनेमें, चौथी प्रंहरमें देखा हुआ एक महीनेमें, दो घड़ी रात्रि बाकी रहते जो स्वप्न देखाहो वह दश दिन में फल देनेवाला है, सूर्योदयके वक्त देखा हुआ स्वप्न तत्काल फल–दायक होताहै. मनुष्य नौ प्रकारसे स्वप्न देखते हैं— अनुभव किये हुए कार्यका स्वप्न देखे १, सुनी हुई बात देखे २, देखी हुई वस्तु देखे ३, प्रकृति के विकारसे स्वप्न देखे ४, सहज स्वभावसे स्वप्न देखे ५, चिन्ताके कारण स्वप्न देखे ६, इन छः कारणोंसे देखेहुए शुभ अशुभ स्वप्न निष्फल होते हैं परन्तु देवकी सहायतासे ७, धर्म्मके प्रभावसे ८, अथवा पापके उदयसे ९, देखे हुए ये तीन प्रकारके शुभाशुभ स्वप्न फल–दायक होते हैं। इस प्रकार उन स्वप्न–लक्षण–पाठकोंने सिद्धार्थ राजासे स्वप्नोंका फल कहा। स्वप्नोंका ऐसा फल सुनकर सिद्धार्थ राजा संतुष्ट होकर स्वप्न–लक्षण–पाठकोंसे प्रसन्न चित्तसे इस प्रकार बोला– हे देवानुप्रिय ! जो आपने कहा वह सब सत्य है उसमें कुछभी संशय नहीं है, मैंनेभी ऐसाही सोचाथा। यह कहकर राजाने उन स्वप्न–लक्षण–पाठकों को अन्न, वस्त्र, पुष्प, फल, गंध माला, अलंकार इत्यादि वस्तुयें देकर और जिन्दगी पर्यन्त चले उतने क्षेत्रग्रामादि वृत्तिदानमें देकर संतुष्ट करके जानेकी आज्ञा दी। स्वप्न-लक्षण-पाठकों के चले जानेके बाद राजा खडा होकर, पर्देके अन्दर त्रिश-

ला देवी के पास आकर इस प्रकार बोला—हे देवानुप्रिय ! जो कुछ स्वप्न–लक्षण–पाठकोंने कहा, वह सब तूनेभी सुना होगा कि इन प्रधान स्वप्नोंके प्रभावसे तेरे चक्रवर्ती अथवा तीर्थंकर पुत्र रत्न होगा। त्रिशला रानी उन स्वप्नोंके उत्तम फलको सुनकर, प्रसन्न चित्त होकर, हृदयमें धारणकर, सिद्धार्थ राजाकी आज्ञा से,मणि, स्वर्ण रत्नोंसे बनेहुये भद्रासनसे उठकर अत्वरित् , अचपल, असंभ्रान्त, अविलंब, राजहंसीकी चालसे चलकर अपने राजमहलमें गई और सांसारिक सुख भोगती हुई आनन्दसे दिन व्यतीत करने लगी।

हरिनेगमेषि देव द्वारा भगवान् श्री महावीर स्वामी, जिस दिनसे त्रिशला देवीकी कुक्षिमें आये उसी दिनसे इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने निम्न लिखित प्रकारका धन सिद्धार्थ राजाके घरमें स्थापित किया, स्वामी रहित धन के ढेर, जो पहिले किसीने किसी स्थानपर स्थापन किये हो वह धन, जिसका स्वामी मर गया हो अथवा जिसका स्थापित करनेवाला मरगया हो उसके हक़दार गौत्री भी मर गये हों, स्वामीका कोई भी रिश्तेदार वगैरह न रहाहो, जिस धनको प्रतिवर्ष स्थापित करने वाला भी कोई न रहा हो तथा संभाल करनेवाले गौत्रीके कुनबों में भी कोई न रहाहो ऐसा धन गांव (कांटोंकी वाड़युक्त स्थान), नगर (प्रकोटा वाला स्थान),

आकर (लोह-ताम्रादि धातुओंकी उत्पत्तिका स्थान), खेड़ (धूलिका प्रकोटा वाला स्थान), कर्बट (बुरा नगर), मंडप (जिसके चारों ओर अर्ध २ योजनकी दूरीपर ग्राम होते हैं), द्रोणमुख (जल स्थल मार्ग), पत्तन (उत्कृष्ट वस्तुओंकी उत्पत्ति का स्थान), आश्रम (तापसोंका निवास स्थान), संवाह (समभूमि), सन्निवेश (पथिकों के विश्रान्तिका स्थान) वगैरह जगह परसे अथवा तीन रास्ते या चार रास्ते जहां मिलें वहाँ से ,बहुत से रास्ते मिलें वहाँसे, राज—मार्गसे, नगरके पानी जानेके रास्तेसे, दुकानोंसे, मंदिरोंसे, राजसभा से, जल पानेकी जगहसे, आरामसे, उद्यानसे, वनसे, वनखंडसे, श्मशानसे, टूट फूटे घरोंसे, गिरि, गुफा वगैरह अनेक स्थानोंसे, (जहां पर प्रायः कृपणजन निर्भय स्थान जानकर धन गाड देते हैं,) इन्द्रके भंडारी वैश्रमण कुंडधारी धनदके आज्ञाकारी तिर्यग् जृंभक देवोंने धन लालाकर सिद्धार्थ राजाके भंडारों में रक्खा.

जिस रात्रिमें हरिनेगमेषि देवने श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामीका सिद्धार्थ राजाके घरमें संक्रमण किया, उसी समयसे चाँदी, सौना, धन (सौनेये रुपये आदि), धान्य *, राज्य, राष्ट्र (देश), बल (हाथी, घोडे, रथ,

* यव, गेहूँ, साली, शाठी, व्रीहि, कोद्रव, अणुआ, कंगु, राल, तिल, मूंग, उडद, अलसी, चना, तिउडा, निप्पाव, सिलिंद, राजमास उच्छु, मसूर, तुअर, कुलथी, धनियाँ, कलायरो इत्यादि २४ प्रकारका धान्य.

पैदल इन चारप्रकारकी सेनाओंका बल), वांहन, कोश (धनका भंडार), कोठार (धान्यका भंडार), नगर, अन्तःपुर, जनपद, और विस्तीर्ण धन, स्वर्ण, रत्न, मोती, दक्षिणावर्त्त शंख, विषापहारिणी शिला, प्रवाल (मूंगे), रक्त रत्न (माणिक) वगैरह उत्तमोत्तम वस्तुओंकी वृद्धिके साथ २ तथा यशोवादसे निरन्तर सिद्धार्थ राजा बढने लगा जिसे देखकर महावीर स्वामीके माता पिताने यह विचार किया कि ऐसी उत्तमोत्तम वस्तुओंकी वृद्धिका मूल कारण यह गर्भ ही है इसलिये ऐसे गुणोंसे युक्त पुत्रका जन्म होनेपर हम उसका वर्द्धमान नाम रक्खेंगे.

औरोंकी मातायें जब गर्भवती होती हैं, तब कुक्षिमें गर्भके फिरनेसे उन माताओंके उदरमें पीडा होती है परन्तु महावीर स्वामीने माताकी भक्तिसे, माताको कोई दुःख नहीं हो ऐसा विचार कर, निश्चल, निष्कंप तथा स्थिर होकर ध्यानारूढ मुनीश्वरकी तरह अंगोपांगका हिलाना बंद किया. अपने गर्भको हिलते न देखकर, त्रिशला माता चिन्तासे शोकाकुल हुई, हाथकी हथेली पर मुंहको रखकर, पृथ्वी पर देखती हुई सोचने लगी– मेरा गर्भ पहिले तो चलता था, अब नहीं चलता है इसका क्या कारण है ? शायद मेरे गर्भको किसी दुष्ट देवने हर लिया, अथवा वह मेरा गर्भ मर गया, गर्भ स्थानसे भ्रष्ट होगया, अथवा गल गया और अब मेरे गर्भको

कुशल नहीं है। निश्चय ही मैं अभागिनी हूँ, मैं ही पृथ्वी पर एक पापिनी हूँ। पंडितोंके कथनानुसार मेरे घरमें पुत्ररूपी निधान उसी तरह नहीं रह सकता, जैसे कि दुर्भागी, दरिद्रीके हाथमें चिन्तामणि रत्न नहीं रह सकता, मरुस्थलमें कल्पवृक्ष उत्पन्न नहीं हो सकता और पुण्यहीन मनुष्योंकी अमृत पीनेकी इच्छा पूर्ण नहीं हो सकती। हे दैव! मेरे मनरूपी भूमिमें अनेक मनोरथरूपी कल्पवृक्ष उत्पन्न हुए, उनको जड सहित काटकर यह तूनें क्या किया! पहिले नेत्र देकर फिर उसे वापिस लेलिया, निधान देकर, वापिस छीन लिया। हे दैव! तूनें मुझे मेरुपर्वत पर चढाकर पीछी नीचे गिरादिया, अरे दैव! मैंने तेरा क्या बिगाडा था जो तूने मेरे साथ ऐसा बर्ताव किया। अब क्या करूँ—कहाँ जाऊँ—किसके आगे जाकर पुकार करूँ, इस पापी दैवने जैसा किया वैसा तो कोई शत्रुभी नहीं करेगा। इस गर्भ के विना अब मेरा जीना व्यर्थ है। पूर्वोक्त चौदह महास्वप्नोंसे सूचित, तीन लोकके पूजनीय, अनन्तगुण सहित पुत्ररत्न बिना अब मेरे लिये सर्व शून्य है। अथवा हे दैव! इसमें तेरा भी क्या दोष है। मैंने ही पूर्व-भवमें घोर पाप किये होंगे, गाय, भैंस, हरिणी वगैरहके छोटे २ बच्चोंका उनकी माताओंसे वियोग कराया होगा, तोते, तीतर और मैना वगैरह पक्षी

पिंजरेमें डाले होंगे, छोटे २ बच्चोंको दूधके लोभसे अन्तराय किया होगा, चूहोंके बिलोंमें गर्म पानी डाला होगा, धूम्र दिया होगा, उनके बिल पत्थरोंसे बन्द किये होंगे, चूनादिसे लीप दिये होंगे, कीडियों व मकोडोंके बिल जलसे बहादिये गये होंगे, अन्य स्त्रियोंके अथवा सोक (सौत) के बच्चोंको क्रोधसे कटुक वचन बोले होंगे, धर्मके प्रतिकूल होकर अंडे वगैरह फोडे होंगे, साधुओंको सताये होंगे, स्त्रियोंका गर्भपात किया अथवा करवाया होगा, शील-खंडन किया होगा अथवा करवाया होगा. अत्यन्त शोकाकुल हुई त्रिशला रानी दैवको इस प्रकार वार २ उपालम्भ देने लगी-अरे निर्दय, पापी, दुष्ट, धीठ, कठोर, नीच कर्म्म करनेवाला, निरपराधी को मारने वाला, विश्वासघातक, अकार्य्य करनेमें तत्पर, निर्लज्ज दैव! तू निष्कारण मेरा बैरी क्यों होता है? मैंने तेरा क्या अपराध किया और अगर किया भी हो तो तू उसे प्रकटरूपसे कह। इस प्रकार विलाप करती हुई त्रिशला रानीसे सखियाँ पूछने लगी—हे महारानी! तुम आज इतनी दुःखित क्यों हो! तब त्रिशला निःश्वास—पूर्वक कहने लगी—क्या कहूँ! कहने योग्य कोई बात नहीं है। में मन्दभागिनी हूँ जो मेरा जीवित गया, ऐसा कहकर, मूर्च्छा खाकरके पृथ्वी पर गिर पडी। जब सखियोंने शीतल उपचारसे त्रिशलाको सचेत

किया तब त्रिशला और भी अधिक विलाप करने लगी सखियों से वार २ पूछने पर गर्भ के सब हाल सुनाती २ ही मूर्च्छित हो जाती थी। ऐसा सुनकर सर्व लोग चिन्तातुर होगये, तब कोई सखी कहती– हे कुलदेवियों! आप कहां गई, हमतो निरन्तर आपकी पूजा में लगी रहती हैं। कुल में वृद्ध स्त्रियाँ मंत्र, यंत्र, तंत्र इत्यादि शान्तिक–पौष्टिक कर्म करतीं। कोई स्त्री निमित्तिए से पूछती. नाटक, गीत, गान, वादित्रादि राज–महलमें बन्द हुए, सिद्धार्थ राजाभी शोकाकुल हुए, सब लोग कर्तव्यतामें मूढ हुए, सर्व नगरी शोककी राजधानी जैसी हुई, स्नान, खाना, पीना, दान, जल्पन, सोना वगैरह सब भूल गये। किसीके कुछ पूछने पर निःश्वास डालकर उत्तर देते, ऐसा सर्व क्षत्रिय-कुण्ड-ग्राम-नगर होगया।

तदनन्तर श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने माताके मनके दुःखको अवधि-ज्ञानसे जानकर और अवधि-दर्शनसे देखकर, मनमें इस प्रकार विचार किया— अहो! क्या किया जाय, किसके आगे कहें, मोहकी गति कैसी विषम है। मैंने तो यह सब माताके सुखके लिये कियाथा परन्तु दुःख रूपहुआ, जैसे–नारियलके जलमें शीतलताके लिये मिलायाहुआ कर्पूर ज़हर होताहै, उसीप्रकार यह मेरा किया हुआ हित माताके अहित

के वास्ते हुआ। नहीं देखनेसे भी मुझपर माता पिताका इतना स्नेह है तो जब ये मुझे देखेंगे, तब कितना मोह करेंगे। यदि इनके जीते हुए मैं दीक्षा ले लूँ, तो कदाचित् ये मर जावें, ऐसा विचार कर माता पिताके जीतेजी मैं दीक्षा नहीं लूँगा *, ऐसा अभिग्रह माताके गर्भमें साढे छः महीने रहने बाद महावीर स्वामीने किया।

तत्पश्चात् शरीरका एक देश चलाया, त्रिशला रानी गर्भको चलता, फिरता जानकर, हर्षित हुई और संतोष--पूर्वक बोली--हे सखियों ! मेरा गर्भ किसीने नहीं हराहै, वह न गला है, न मरा है पहिले नहीं चलता था और अब चलता है। मैं भाग्यवती, पुण्यवती तथा तीनों लोकमें मान्य हुई। मेरा जीवित प्रशंसनीय है। श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकर भी मुझपर प्रसन्न हैं, मुझपर श्रीसद्‌गुरु भी निरन्तर प्रसन्न है। मैंने जैनधर्म्म की आराधना की और वह मेरी आराधना सफल हुई। मुझपर सम्यक्-दृष्टि-देवता और गौत्र देवियाँ प्रसन्न

---

* जब भगवान् ने माता पिता को दुःख न होने के लिये ऐसा नियम ग्रहण किया तो भगवान् की आज्ञा में रहने वाले जैनी नाम धारण करने वालों को, जब वे कुछ पढाई करने पर, कमाई होने पर या स्त्री मिल जाने पर माता पिता से अलग होवें अथवा किसी अन्य प्रकार से उन्हें दुःखित करें, भगवान् के दृष्टान्त पर विचार करके अपनी भूल सुधारना चाहिये।

हैं। इस प्रकार त्रिशला देवीकी रोम राजी व नेत्र विकसित हुये, मुँह हर्षित हुआ और उसके हर्ष स्वरूप को देखकर वृद्ध स्त्रियाँ उसे आशीर्वाद देने लगी, सधवा स्त्रियाँ गीत—गान करने लगीं, वेश्याओंका नाटक शुरू हुआ, सर्व नगरमें अष्ट मांगलिक स्थापित किये गये, जगह २ पर कुंकुम-केसरके थापे दिये गये, नगरमें स्थान २ पर ध्वजायें बांधी गईं, मोतियोंका स्वस्तिक किया गया, पांचवर्ण—पुष्पों के ढेर किये, सर्व नगरमें तोरण बांधे, सर्व स्त्री पुरुषोंने नवीन वस्त्र तथा नवीन आभूषण धारण किये, सधवा स्त्रियां श्रीफलसहित अक्षतों के थाल लेकर गीत-गान करती हुईं बधाई के लिये त्रिशला रानीके पास आईं, भट्टलोग राजाकी विरुदावली कहने लगे। यद्यपि राजद्वार विशाल था, तथापि स्त्री-पुरुषोंकी भीड़के कारण वह दरवाजा सकडा प्रतीत हुआ, राज-मार्गभी मनुष्यों के समूहसे रुक गया, अनेक रथ, हाथी, घोड़े शृंगारे गये, जगह २ पर गीत, वादित्र, मृदंगों तथा दुंदुभियोंका शब्द मेघके जैसा गंभीर सुनाई देने लगा, तीर्थंकरों के मन्दिरों में स्नात्र पूजा प्रारम्भ हुई। बन्दीखानों से कैदी मुक्त कर दिये गये। साधुओंको आहारादि दान दिया और साधर्मियोंकी भक्ति पक्वान्न वगैरह से की जाने लगी। सर्वत्र नगरमें आनन्द ही आनन्द छा गया।

उसके वाद त्रिशला रानीने स्नान किया, बलिकर्म यानी देवपूजा की, तिलकादि लगाये तथा विघ्न दूर करने के लिये मंगल किया, वस्त्राभूषणों से सुशोभित हुई और गर्भकी रक्षाके लिये अति शीत, अति उष्ण, अति तीक्ष्ण, अति कटुक आहार नहीं करती, नींबादि तिक्तरस, सुपारी वगैरह अति कषायरस, इमली, नींबू, दही, वगैरह अति खट्टारस, गुड़, खांड वगैरह अति मीठा रस इत्यादि रसोंवाला आहार नहीं करती, सूखीहुई पुड़ी, चना वगैरह का अति शुष्क तथा अति आर्द्र, हरे पुष्प, फल, कन्दमूल वगैरहका आहार नहीं करती, बहुत घृतादिवाला खानपान तथा अति रूक्ष घृतादि रहित आहार नहीं करती। वायु-जनक चना, उर्द वगैरह खानेसे गर्भ कुब्ज, अन्ध, जड और वामन होताहै, पित्त—जनक वस्तु खानेसे गर्भ स्खलित (मार्ग में चलने से स्खलित गतिवाला), कफ-कारक दही वगैरह खाने से चित्री (चर्मरोग—युक्त) होताहै। गर्भवती स्त्री के अति लवण-युक्त आहार करने से बालक के नेत्रों में हानि होती है, अति शीतल आहार करने से उसके शरीरमें वायुप्रकोप होता है, अति उष्ण करनेसे बालक निर्बल होताहै और मैथुन सेवन करने से गर्भ गिर जाताहै। अधिक पानी पीने से, उकड़ासन बैठनेसे, दिनमें सोने से, रात्रिमें जागने से, मल—मूत्र की बाधा रोकने से बालक के रोग उत्पन्न

होते हैं और श्रावण—भाद्रमासमें लवण, आश्विन—कार्त्तिकमें जल, मार्गशीर्ष—पौषमासमें गायका दूध, माघ—फाल्गुनमें दही, छाछ आदि खट्टारस, चैत्र—वैशाखमें घृत और ज्येष्ठ—आषाढमें गुड़ अमृतके समान है।

नीचे लिखी हुई वातें गर्भवती स्त्रियाँ न करें——विषय सेवन, गाड़ी, ऊंट वगैरह सवारियों पर वैठना, मार्गमें चलना और ऊँचे—नीचे स्थानोंसे कूदना, भार उठाना, लड़ाई करना, दास-दासी-पशुओंका ताड़न करना, शिथिल शय्यापर सोना, छोटी शय्या तथा शरीर प्रमाणसे अधिक लंबी शय्यापर सोना, छोटे आसन पर वैठना, उपवासादि तप करना, अतिरूखा, कटुक, तीखा, कषायला, मीठा, सच्चीकन, खट्टे आहारका करना, अति राग करना, अति शोक करना, अधिक आहारका करना, और अति खारा आहारका सेवन, अतिसार, वमन इत्यादि कार्य गर्भवती स्त्री न करे, यदि करे तो गर्भको हानि पहुंचे, इसलिये त्रिशला रानी उपरोक्त वातें नहीं करती हुई गर्भकी प्रतिपालना करने लगी. गर्भके भारसे अलसाती हुई त्रिशला रानीको सखियाँ इस प्रकार शिक्षा देती रहीं——हे सखि! धीरे २ चलो, धीरे २ वोलो, किसीपर क्रोध न करो, पथ्य भोजन करो, साड़ीकी गांठ दृढ़ मत बांधो, वहुत हँसो मत, अछायावाली जगहमें अथवा शय्या विना पृथ्वी पर सोवो मत, भूमिघर

वगैरहमें उतरो मत। त्रिशला रानीभी सर्व ऋतुओंमें पथ्य तथा सुखदायक आहारको ही करती, सुखदायक वस्त्रोंको, पुष्प, अवीर, कर्पूर आदि सुगंधद्रव्योंको धारण करती, रोग-भय-शोक-मोह-परित्रासका त्याग करती, देश तथा समयानुसार गर्भके लिये हितकारक, परिमित, पथ्य और पोषक भोजन करती, अपनी मनोज्ञ सखियोंके साथ बैठती, रोष-रहित होकर कोमल वस्त्रादिको शरीर पर धारण करती, दिनको नहीं सोती, क्योंकि दिनमें सोनेसे गर्भस्थ बालक सोनेके स्वभाववाला होता है, बहुत काजल डालनेसे बालक अन्धा, स्नान व विलेपन अधिक करनेसे दुःशील, तेल मर्दन करानेसे कोढ़ी, नख कटवानेसे खराब नखों वाला, दौड़नेसे चंचल, हँसनेसे काले दांत, ओष्ठ, जिह्वा और तालूवाला, बहुत बोलनेसे वाचाल, अतिगान—वादित्र सुननेसे बधिर, अति खेल-कूद करनेसे स्खलित गतिवाला, और बहुत हवा खानेसे उन्मत्त होता है * ।

---

* माता—पिताके आचरण व स्वभावका उनके संतानों पर पूरा २ प्रभाव पड़ता है, गर्भवती स्त्री शुभाशुभ जैसे २ कार्य्य करती है, वैसे २ ही शुभाशुभ लक्षण उनके बच्चोंमें होते हैं, कल्प—सूत्रको प्रति वर्ष करीब २ सर्व जैनी सुनते हैं इसलिये अब उनके लिये यह आवश्यक है कि वे भगवान्‌की माताके गर्भ-रक्षाकी बातोंपर ध्यान देकरके गर्भकी प्रतिपालना करें, जितनी ही उत्तम रीतिसे गर्भ की रक्षा की जावेगी, उतनाही अधिक गुणवाला संतान उत्पन्न होगा और स्त्री-पुरुषके बीचमें विनय—विवेक पूर्वक जितनाही उत्तम व्यवहार

त्रिशला रानीको जो २ उत्तम दोहले उत्पन्न हुए, वे सब पूर्ण किये गये और वे भी शीघ्रता-पूर्वक और इच्छानुसार—जैसे कि शत्रुंजयादि तीर्थोंकी यात्रा करना, साधुओंको (सुपात्रोंको) दान देना, देव-दर्शन करना, देवताओंकी पूजा करना, धर्म्मशालाओं व दानशालाओंका बनाना, अभयदान देना, याचकोंको इच्छित दान देना, जैलखानों से कैदियोंको निकालकर, उन्हें स्नान कराकर भोजन कराकर और वस्त्रादि देकर सन्तुष्ट करके अपने २ घर भेजना, सम्पूर्ण पृथ्वीको ऋणरहित करना, नगरके लोगोंके हृदयमें उत्कृष्ट हर्षका उत्पन्न करना, हथनीपर बैठ करके हर्षसे नगरमें दान करना, क्षीर-समुद्रका पान करना, चन्द्रसे अमृतका पान करना, सधर्मियोंको भोजन करवाना, शरीरमें सुगन्धित वस्तुओंका धारण करना, उत्तम २ आभूषण पहिनना, और बहुतसे अन्य २ पुण्यकार्योंका करना इत्यादि २ इनमेंसे जिन मनोरथोंको पूर्ण करनेमें सिद्धार्थ राजा असमर्थ हुआ,

---

होगा, गृहस्थाश्रममें उतनेही शांति व आनन्दके साथ उनके दिन व्यतीत होंगे और उसी क्रमसे उनके सुख व संपदाकी भी वृद्धि होगी, जिससे सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करके वे सद्गतिको प्राप्त होसकेंगे। सिद्धार्थ राजा व त्रिशला रानीके विनय-विवेक व स्नेह-भावके उत्तम व्यवहार की ओर ध्यान देकरके जैनी मात्रको अपना जीवन सुखमय बनाना उचित है।

उन मनोरथोंको, इन्द्रने आकर, * पूर्ण किया. इस प्रकार त्रिशला रानीके सम्पूर्ण दोहलोंके पूर्ण होनेसे प्रसन्न चित्तसे गर्भकी रक्षा करती हुई सुख-पूर्वक दिन व्यतीत करने लगी। अब भगवान्‌के जन्म—समयका वर्णन करते हैं—तिसकाल और तिस समयमें नौ महीने साढे सात दिन जाने के बाद, ग्रहोंके + उच्च स्थान में आने पर उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेपर, दिशाओंमें सौम्यता आनेपर, धूल वगैरह के तूफानसे रहित ऋतुके आनेपर, पक्षिगणसे जयजयकारका शब्द निकलने पर, वृष्टि हवाकी अनुकूलताके कारण

* एक समयमें त्रिशलाको जबरदस्ती से इन्द्राणीके कुंडलोंको लेकर पहिनने की इच्छा उत्पन्न हुई, जिसे सिद्धार्थ राजा पूर्ण नहीं करसका और त्रिशला रानी दुर्बल होनेलगी, भगवान् की माताके पुण्य प्रभावसे इन्द्रका आसन चलायमान हुआ, इन्द्र अवधिज्ञानसे भगवान्‌की माताका मनोरथ जानकर उसे पूर्ण करनेकी इच्छासे इन्द्राणी सहित मनुष्य-लोकमें आकर क्षत्रीय कुंड ग्राम नगरके पास इन्द्रपुर नगर बसाकर राज्य करने लगे। सिद्धार्थ राजाको मालूम होने पर दूत भेजकर इन्द्र से इन्द्राणी के कुंडल मांगे। इन्द्रने देनेसे इन्कार करदिया, तब सिद्धार्थ राजा फौज लेकर इन्द्रसे लड़ाई लड़ने गये। दोनों के बीच में युद्ध हुआ, इन्द्र महाराज हारकर भाग गये, इन्द्राणी भी भागने लगी तब सिद्धार्थ राजाने कुंडल बलात् छीनकर मंगवा लिये और त्रिशला रानी को देकर उसका दोहला पूर्ण किया।

+ तीन ग्रह उच्च हों तो बालक राजा होताहै, पांच ग्रहों से वासुदेव, छः ग्रहोंसे चक्रवर्ती और सात ग्रह उच्च होंतो तीर्थंकर होताहै।

अनाजके क्षेत्रोंमें अधिक उत्पन्न होनेपर, सर्व लोग सुखी दिखाई देतेथे, ऐसे आनन्दके समयमें चैत्रसुदी त्रयोदशी को मध्य रात्रिमें भगवान्‌की जन्म-कुन्डलीमें सूर्य--चंद्र--मंगल--बुध--गुरु--शुक्र और शनि ये ७ ग्रह उच्च स्थानमें आगये थे, उस समय मकर लग्नमें माता त्रिशलादेवी ने श्रीमहावीर स्वामीको सुख-पूर्वक जन्म दिया.

अब प्रसंग--वश संघके मंगलके लिये चौवीस तीर्थंकर भगवानों के जन्मका अधिकार बतलाते हैः—

१. ऋषभ देवजी का	२. अजित नाथजीका	३ संभव नाथजीका	४. अभिनन्दनजीका	५. सुमति नाथजीका	६पद्मप्रभु जीका	७. सुपार्श्व नाथजीका	८.चंद्रप्रभुजीका	९. सुविधि नाथजीका	१०. शीतल नाथजीका	११ श्रेयांस नाथजीका	१२ वासु पुज्यजी का
९ महीने ४ दिन में जन्म हुआ	८ महीने २५ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिनमें जन्म हुआ	८ महीने २८ दिनमें जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	९महीने ६दिनमें जन्म हुआ	९ महीने १९ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ७दिन में जन्म हुआ	९ महीने २६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ६ दिनमें जन्म हुआ	९ महीने ६ दिनमें जन्म हुआ	८ महीने २० दिनमें जन्म हुआ

१३. विमलनाथजीका	१४ अनंत-नाथजीका	१५ धर्मनाथजीका	१६. शांतिनाथजीका	१७ कुंथु-नाथजीका	१८ अर नाथजी का	१९. मल्लीनाथजीका	२०. मुनि-सुव्रत नाथजीका	२१. नमिनाथजीका	२२. नेमि-नाथजीका	२३. पार्श्वे नाथजी का	२४. श्री महावीर स्वामी का
८ महीने २१ दिनमें जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	८ महीने २६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ५ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ७ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ८ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ६ दिन में जन्म हुआ	९ महीने ७॥ दिन में जन्म हुआ

॥ इति चौथा व्याख्यान समाप्त ॥

अब पंचम व्याख्यान कहते हैं:— अर्हन्त भगवन्त इत्यादि प्रत्येक व्याख्यानकी आदिमें कहना चाहिये. चौथी वाचनामें महावीर स्वामीका जन्माधिकार कहा. अब पांचवीं वाचनामें श्रीमहावीर स्वामी के जन्म-महोत्सवादिका वर्णन करते हैं:—जिस समय श्रीमहावीर स्वामीका जन्म हुआ, उस समय तीनों लोकमें प्रकाश हुआ, आकाशमें देव-दुन्दुभि बजी, नरकवासी जीवभी क्षणमात्र सुखी हुए, सर्व जगत्में आनन्दही आनन्द छा गया. उसी समय जब छप्पन दिक्कुमारियोंके आसन कंपायमान हुए, तब गजदन्तोंके नीचे अधोलोक

में रहने वाली भोगंकरा, भोगवती, सुभोगा, भोगमालिनी, तोयधरा, विचित्रा, पुष्पमाला, आनन्दिता इन आठ दिक्कुमारियोंने अवधिज्ञानसे श्रीमहावीर स्वामीका जन्म जानकर वहां आकरके प्रभुको और प्रभुकी माताको नमस्कार करके ईशान कोनमें एक सूतिकागृह किया, संवर्त्तक वायुसे एक योजनभूमिको शुद्ध करके सुगन्धित जल छिटका. मेघंकरा, मेघवती, सुमेघा, मेघमालिनी, सुवत्सा, वत्समित्रा, वारिषेणा, बलाहिका इन आठोंने ऊर्ध्वलोकसे आकर, जिन और जिनकी माताको नमस्कार करके वहां पुष्पवृष्टि की. नन्दोत्तरा, नन्दा, आनन्दा, नन्दवर्धना, विजया, वैजयन्ती, जयन्ती, अपराजिता ये आठ दिक्कुमारियाँ पूर्वदिशाके रुचकपर्वतसे आकर मुँह देखनेके लिये भगवान्के आगे दर्पन लेकर खड़ीरहीं. समाहारा, सुप्रदत्ता, सुप्रबुद्धा, यशोधरा, लक्ष्मीवती, शेषवती, चित्रगुप्ता, वसुन्धरा ये आठों दिक्कुमारियाँ दक्षिण दिशाके रुचक पर्वतसे आकर कलश हाथमें लेकर भगवान् और भगवान्की मातको स्नान करानेके वास्ते खड़ी रहीं. इलादेवी सुरादेवी, पृथ्वी, पद्मावती, एकनासा, नवमिका, भद्रा, सीता, ये आठों दिक् कुमारियाँ पश्चिम दिशाके रुचक पर्वतसे आकर भगवान्की माताके आगे पंखा उड़ाने लगीं. अलंबुसा, मितकेशी, पुंडरिका, वारुणी, हासा, सर्वप्रभा, श्रीः, ह्रीः ये आठों दिक्कुमारियाँ

उत्तर दिशाके रुचक पर्वतसे आकर चँवर ढोलने लगीं. विचित्रा, चित्रकनका, तारा, सौदामिनी ये चारों विदिशाके रुचक पर्वतसे आकर, हाथमें दीपक लेकर भगवान्‌के आगे खड़ी रहीं. रूपा, रूपासिका, सुरूपा, रूपकावती, इन चारों देवियोंने आकर चार अंगुल छोडकर, बाकी की नाल छेद्‌कर, पासही में एक गड्डा खोद कर उसमें उसे डालकर, वैडुर्य्य रत्नका एक चबूतरा बनाकर ऊपर दूर्वा बोई और सूतिका घरसे पूर्व, दक्षिण, और उत्तर तीन दिशाओं में केलके तीन गृह बनाकर उनमें सिंहासन रक्खे. उनमेंसे दक्षिण दिशाके कदलीगृहके सिंहासन पर भगवान् और उनकी माता दोनोंको बैठाकर, दानों के शरीरमें सुगन्धित तेलका मर्दन किया, पूर्वके कदलीगृहके सिंहासन पर बैठाकर दोनोंको स्नान कराकर, शरीरमें चन्दनका विलेपन करके दोनोंको रमणीक वस्त्र धारण कराये । उसके बाद उत्तरके कदलीगृहके सिंहासन पर उन दोनोंको बैठाकर, अरणी के काष्टसे अग्नि जलाकर चन्दनादि का शांति के लिये होम करके रक्षा-पोटली बाँधकर, 'पर्वत सम आयुः वालेहो' ऐसा आशीर्वाद देकर, मणिरत्नके दो गोलोंको आस्फालन कर, बजाकर, भगवान्‌के क्रीडाके वास्ते पालनेपर बांधकर भगवान् और उनकी माता दोनोंको जन्म—स्थानमें लाकर गीतगान करती हुईं दिक्कुमा-

रियाँ अपनी २ दिशाओंमें चली गईं। छप्पन दिक्कुमारियोंके महोत्सव करनेके बाद भगवान् के पुण्य प्रभाव से चौसठ इन्द्रोंके सिंहासन काँपने लगे, तव अवधिज्ञानसे श्रीमहावीरस्वामीका जन्म जानकर सौधर्मेन्द्रने हरिनेगमेषि देवको बुलाया जिसने आकर ५०० देवोंके साथ बारह योजन विस्तीर्ण, आठ योजन ऊंची और एक योजन लम्बी नाल वाला सुघोषा घंटा बजाया। उस घंटे के शब्दसे बत्तीस लाख विमानों के सब घंटे बजने लगे, जिन्हें सुनकर सब देव सावधान हुए। इसी प्रकार ईशानेन्द्रने लघुपराक्रम देवको बुलाकर महाघोषा घंटा बजवाया, और अन्य देवेन्द्रों ने भी इसी प्रकार किया. जब भगवान्के जन्म महोत्सव करनेको जानेकी सर्वत्र उद्घोषणा की गई, तब सर्व देव इन्द्रके पास आये. हरिनेगमेषि देव द्वारा लाख योजनका पालक नामक विमान बनाया गया, जिसके मध्यमें पूर्व दिशाके सन्मुख इन्द्र बैठा। शक्रेन्द्रके आगे आठ इन्द्रानियाँ नाटक करने लगीं। इन्द्रके बाईं ओर सामानिक देव बैठे, दाहिनी ओर तीनों परिषदा के देव बैठे, पीछे सात अनिकों के स्वामी विराजमान हुए, इसी तरह सर्व इन्द्र अपने २ विमानों में बैठकर परिवार सहित नन्दीश्वर द्वीपमें आये। उनमें से कितनेही देव इन्द्रकी आज्ञासे, कितनेही अपने मित्रके वचन

से, कितनेही अपनी देवांगनाओं के आग्रह से, कितनेही अपने २ भावसे, कितनेही कौतुकसे, कितनेही अपूर्व आश्चर्य देखेंगे ऐसा विचार करके अपनी २ अलग २ सवारियों पर बैठकर आपसमें वार्त्तालाप करते हुए रवाना हुए. सिंहपर बैठा हुआ देव हाथीपर बैठे हुए देवसे कहने लगा— तेरे हाथीको मार्गसे दूर कर, नहीं तो मेरा सिंह उसे मार डालेगा. इसी तरह गरुडस्थ देव सर्पस्थ देवसे कहे और चीतेपर बैठा देव बकरे पर बैठे देवसे कहे. इस प्रकार असंख्य देव अलग २ वाहनोंपर बैठेहुये चले, उस समय विस्तीर्ण आकाशभी सकड़ा दिखाई देनेलगा. मार्गमें कितनेही देव मित्रके आगे जाने लगे, तब पीछेका मित्र बोला— हे मित्र! क्षणमात्र ठहरो, मैं भी साथ चलूंगा, तब आगेका देव बोला— जो कोई पहिले जाकर भगवान् को नमस्कार करेगा वह भाग्यवान् होगा, ऐसा कहकर आगे ही चला। जिन देवोंके वाहन बलवान् थे और आपभी बलवान् थे वे सबसे आगे २ चले। जब निर्बल देव कहे कि अहो! क्या किया जाय, आजतो आकाश भी सकड़ा हो गया, तब दूसरा देव बोले—मौन धारण करो, पर्वके दिन संकीर्ण ही होते हैं। आकाशमें चलते हुए देवोंके मस्तक पर तारोंकी किरणें लगीं, तब मस्तकमें श्वेत केश जैसे दिखाई देनेके कारण वे देव निर्जर

होते हुए भी जरासहित दिखाई देने लगे, जब देवोंके शरीर तारागणका स्पर्श करें, तब उनके शरीरमें पसीने के कण जैसे मालूम होने लगे, और मस्तिष्कमें तारे मुकुट जैसे मालूम पडे, इस प्रकार चलते हुए देवोंने नन्दीश्वर द्वीपमें विमानोंका संक्षेप किया, विश्राम लिया और सीधे मेरु–पर्वत पर गये। सौधर्मेन्द्र महावीर स्वामी के पास आकर, भगवान् और उनकी माता दोनों को तीन प्रदक्षिणा देकर, नमस्कार करके भगवान्‌की मातासे कहने लगा— हे रत्नकुक्षि! आपको नमस्कार हो, मैं सौधर्मेंद्र हूँ, आपने चौवीसवें तीर्थंकरको जन्म दिया है मैं उनका जन्म-महोत्सव करने आया हूं—आप डरना नहीं. ऐसा कहकर माताको अपस्वपिनी निद्रा दी, उसके पास प्रभुके बदले प्रभुका प्रतिबिम्ब मंगलके लिये और स्थान–शून्यका दोष निवारणके लिये रक्खा और अपने पांच रूप बनाकर, एक रूपसे चन्दन–लिप्त हाथोंमें भगवान्‌को लिये, दो रूपोंसे दोनों बाजू चँवर ढुलाने लगा, चौथे रूपसे भगवान्‌के मस्तकपर छत्र लगाया, पांचवें रूपसे वज्र लेकर छडीदार जैसा आगे २ चलने लगा. वह सौधर्मेन्द्र भगवान्‌को इस प्रकार लेकर मेरुपर्वतके ऊपर दक्षिण दिशामें पांडुकवनमें पांडुकम्बला शिलापरके सिंहासनपर, भगवानको गोदमें लेकर बैठगया। वहांपर सर्व देवेन्द्र अपने २ सेवकोंको

इस प्रकार आज्ञा देनेलगे– हे देवों ! एक हजार आठ सोनेके कलश, उतनेही चांदीके कलश, उतनेही रत्नोंके कलश, उतनेही सोने-चांदीके कलश, उतनेही सोने और रत्नोंके कलश, उतनेही चांदी और रत्नोंके कलश, उतनेही सोने, चांदी और रत्नोंके कलश, उतनेही (१००८) मिट्टीके कलश, इस प्रकार आठ प्रकारके सब मिलकर आठ हजार चौसठ कशल लाओ। वे सब देव, पच्चीस योजन ऊँचे, बारह योजन चौड़े, एक योजनकी नालवाले, क्षीर-समुद्र, गंगा, सिन्धु, पद्मद्रहादि तीर्थोंके तथा पुष्प-चूर्ण-केशर-कस्तूरी-मिश्रित जलसे भरे हुये कलशों को लेकर पूजाकी सर्व सामग्री सहित शीघ्रही आगये और भगवान्‌को अभिषेक कराने के वास्ते इन्द्रकी आज्ञाकी राह देखने लगे। उस समय इन्द्रके मनमें संशय उत्पन्न हुआ– भगवान्‌का शरीर छोटासा है और जब इतने कलशों की धारा पड़ेगी तब भगवान्‌का शरीर मेरी गोदसे कहांका कहां बह जायगा। इसप्रकार विचार करके जब इन्द्र भगवान्‌को अभिषेक करानेके लिये देवोंको आज्ञा नहीं देने लगा, तब भगवान्‌ने अवधि-ज्ञानसे इन्द्रके मनका संशय जानकर उसे दूर करनेके लिये अपने बायें पैरके अगूंठे से सिंहासन दबाया, सिंहासनके दबनेसे शिला कांपी, शिलाके कांपनेसे मेरुकी चूलिका कांपने लगी और लाख योजनका मेरु पर्वत थर २ कांपने लगा। मेरुके कांपनेसे सर्व

पृथ्वी धूजने लगी, पर्वतों के शिखर टूटने लगे, समुद्रोंका जल उछलने लगा, ब्रह्मांड फूटे ऐसा हुआ, समस्त देव क्षोभित हुए, देवांगनाएँ भयसे भर्तारों के कंठों में लगी। उस समय इन्द्रने विचार किया— अहो! यह क्या हुआ, इस शांतिके समयमें किस दुष्ट असुरने उत्पात किया। ऐसा जानकर हाथमें वज्र लेकर जब अवधिज्ञानका उपयोग दिया, तब भगवान्का बल जानकरके विचार किया— अहो! तीर्थंकरमें अनन्त बल है। ऐसा विचार कर श्रीमहावीर स्वामी से अपने अपराधकी क्षमा मांगी और भगवान्का अभिषेक करने के लिये देवोंको आज्ञा दी। तब प्रथम बारहवें देव-लोकके इन्द्रने अभिषेक किया, उसके पीछे यथानुक्रम बड़े, फिर छोटे और अन्तमें सूर्य, चन्द्रने अभिषेक किया, उसके बाद ईशानेन्द्रने भगवान्को गोदमें लिये और सौधर्मेन्द्रने चार वृषभोंके रूप धारण करके आठ श्रृंगोंकी एक धारासे क्षीरसमुद्रके जलसे भगवान्को अभिषेक किया. इस प्रकार अभिषेक करके देव-दुष्य वस्त्रसे शरीरका पूंछना १, चन्दनका विलेपन करना २, पुष्प चढाना ३, दशांग धूप करना ४, दीपक करना ५, अक्षत चढ़ाना ६, फल चढ़ाना ७ और नैवेद्य चढ़ाना ८, ऐसी अष्टप्रकारी पूजा की और प्रभुके आगे श्रीवत्स १, मत्सयुगल २, दर्पण ३, पूर्णकलश ४, स्वस्तिक ५, भद्रासन ६, नन्द्यावर्त्त ७ और सराव-

संपुट ८, ये अष्टमंगल स्थापित किये. तत्पश्चात् उन्होंने आरती की, गीत-गान किये, वादित्र बजाये, नाटक किया, भावना भाई और भगवान्को माताके पास रखकर, भगवान्की माताकी अपस्वपिनी निद्रा दूर कर, भगवान्के प्रतिबिम्बको उठाकर, रत्नोंसे जड़े हुये दो कुंडल और देव-दुष्य वस्त्रोंका जोड़ा माताको देकर, रत्नोंसे जड़े हुये सोनेके दड़ेको क्रीड़ाके वास्ते भगवान्के पास रखकर और अंगूठेमें अमृत स्थापित करके, ३२ करोड़ स्वर्णमुद्राकी वृष्टि करके, इन्द्र महाराजने समस्त देवोंमें यह उद्घोषणा की—जो कोई भगवान् अथवा उनकी माताका अशुभ विचार करेगा, उसके मस्तकके एरंड वृक्षकी भाँति इस वज्रसे टुकड़े २ कर दूंगा. इसप्रकार वे चौसठ इन्द्र श्रीमहावीरस्वामीका जन्मोत्सव करके नन्दीश्वरद्वीपमें आठ दिन तक अठाई महोत्सव करके जिनेश्वर भगवान्की पूजन व भक्ति करके अपने २ स्थान गये ॥ इति जन्माभिषेक अधिकार ॥

जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी जन्मे, उस रात्रिमें बहुतसे देव-देवियोंके आनेसे समस्त लोकमें महान् उद्योत हुआ और बड़े जोरका कलकलका शब्द हुआ। जिस रात्रिमें भगवान्का जन्म हुआ, उस रात्रिको इन्द्रकी आज्ञासे तिर्यग् जृंभक देवोंने सिद्धार्थ राजाके भंडारमें बत्तीस करोड़ रुपया, बत्तीस

करोड़ अशर्फियाँ, बत्तीस करोड रत्न, बहुतसे उत्तम २ रेशमी वस्त्र, मुद्रिका वगैरह आभरण, बहुतसे पुष्प व मालाएँ, आम वगैरहके बहुतसे फल, नागर वेलके पत्र, बहुतसे चांवल-गेहूँ-जौ इत्यादि धान्य, कर्पूर, चन्दनादि बहुतसे गन्ध द्रव्य, अबीर इत्यादिका बहुतसा चूर्ण, और हींगलु-हरिताल वगैरह बहुतसे अच्छे २ वर्णवाले पदार्थोंके साथ २ स्वर्ण धाराकी वृष्टि की ❋ ।

प्रातः कालमें प्रभुके जन्मके शुभ समाचार लेकर प्रियभाषिणी दासी सिद्धार्थ राजाके पास बधाई देनेको गई, तब सिद्धार्थ राजाने प्रमोदसे सन्तुष्ट होकर, छत्रके नीचे बैठाकर मुकुटके सिवाय सर्व आभूषण उसे इनाममें दिये और दासीपन दूर किया। भुवनपति, व्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक इन चारों प्रकारके देवोंके रात्रिमें प्रभुके जन्म महोत्सव करनेके बाद, प्रातःकाल सिद्धार्थ राजाने कोतवालको बुलाकर इस प्रकार कहाः— हे देवानुप्रिय ! शहरमें जितने कैदी हैं, उन सबको कैदसे मुक्त करो, तमाम दुकानदारोंसे कह दो– अनाज, घी आदि भोजन सामग्री तथा वस्त्र सस्ते बेचें, उनका जो नुकसान होगा वह राज–कोषसे दिया जावेगा.

❋ ग्रन्थांतरके अनुसार जन्म दिनसे लेकर पन्द्रह महीनों तक निरन्तर साढ़े तीन करोड़ रत्नोंकी वर्षा धनद देव करता रहा ।

नगरमें संघाटक, त्रिक, चौक, चच्चर, महापथ इत्यादि रास्तोंमें तथा सब गलियों में, शहरके अन्दर और बाहर सर्वत्र सफाई कराओ, सुगन्धी जलका छिड़काव कराओ, गोबरसे लिपाओ, खड़ी-चूनेकी पोताई कराओ, गली व बाजारोंको श्रृंगारों, नाटक देखनेके लिये मंचादि बांधो, सिंहध्वज, गरुडध्वज वगैरह ध्वजा-पताकायें बांधो, जगह २ पर चन्दवे बांधो, पुष्पों के ढेर लगाओ, गोशीर्ष चन्दन, रक्त चन्दन, दर्दर चन्दनसे भींतोंपर थापे लगाओ, मांगलिक कलश घरों के चौकमें रखाओ, तोरण बांधकर, घरके दरवाजे शोभायमान करो, लम्बी२ फूलोंकी मालायें लटकाकर नगरको शोभायमान करो, फूलोंके गृह बनाओ, स्थान २ पर पांचवर्णके पुष्प बिखेरो, कृष्णागुरु शिलारस वगैरह दशांग धूप करो और कर्पूर–कस्तूरी की गोलियोंकी तरह सर्व नगर को सुगन्धित करो, स्वयं नाटक करने वाले–नट, दूसरोंसे नाटक करवाने वाले–नर्तक, बांसपर खेलने वाले, मलयुद्ध–मुष्टियुद्ध करने वाले, विदूषक (मश्करे), भांड, रसिक कथाओंको कहने वाले, रासलीलाओंको करने वाले, ऊँट, हाथी व खाडको कूदने वाले, तैरने वाले, राजाकी वंशावली कहने वाले, कवि, शुभाशुभ-निमित्तके कहने वाले, मंख–चित्रपट हाथमें लेकर भिक्षा मांगने वाले, वीण बाजा बजाने वाले, तुम्बेकी बीणा बजाने

वाले, ताली वजा २ कर नाटक करने वाले, इन सवको बुलाकर स्थान २ पर गीत–गान–वादित्र–नाटक शुरू कराओ और मांगलिकके लिये हजारों मुसलोंको खड़े कराओ. राजाकी ऐसी आज्ञा सुनकर कौटुंविक पुरुष हर्षित हुए और हाथ जोड़कर सन्तोष-पूर्वक उस आज्ञाको अंगीकार करके शीघ्रही वन्दीखानों से कैदियोंको छोड़े, और पूर्वोक्त सव कार्य करके राजाके पास आकर उसकी सूचना दी। उसके वाद राजा अट्टनशालामें जाकर मल्लकुश्ती वगैरह कर, तैलकी मालिश करवाकर, स्नान कर, विलेपन करके अच्छे २ वस्त्र पहिन कर सर्व प्रकारके शृंगार धारण कर, अपने परिवार सहित पुष्प, वस्त्र, गंधमाला, अलंकारोंसे शोभित हुआ और वड़ी ऋद्धिसे, वड़ी ध्वनिसे, वड़ी सेनासे, वहुत वाहनसे, वहुत समुदायसे शंख, पणव, भेरी, झालर, खरमुखी, हुडक्क, ढोल, मृदंग, दुन्दुभि (देवोंके वादित्र) और लौलिक–घन्टा वगैरह, ताल–कांसादि, तांत्रिक–वीणा वगैरह, स्वासि-क–सहनाई वगैरह, पुटक–ढोल वगैरह, इन पांच प्रकारके वादित्रोंके शब्दसे सिद्धार्थ राजा जन्म-महोत्सव करने लगा. दशदिन तक जकात तथा कर (टैक्स) वगैरह बन्द किये, क्षेत्रोंके लगान छोड़ दिये और लोगोंको सूचना दी कि दशदिन तक जो २ चीजें चाहें, प्रसन्न चित्त होकर राजाकी दुकानसे ले लें, राजा उनके दाम देगा.

राजाके सिपाही किसीके घरमें जाकर किसीको तकलीफ नहीं देने पाते. राजाने दंड—अपराधके अनुसार द्रव्य लेना, अदंड—बहुत अपराधमें थोड़ा द्रव्य लेना, कुदंड—थोड़े अपराधमें बहुतसा द्रव्य लेना, इन सबका त्याग किया. आपसमें कोई धरना नहीं देता और ऋण नहीं मांगता. सर्व नगरमें रूपवती वैश्याओंका नाटक शुरू हुआ. अनेक तालचर वगैरहके नाटक प्रारम्भ हुए. अनेक प्रकारके वादित्र बजने लगे. पांचवर्णे पुष्पोंकी मालाओंका समूह बांधा गया. नगरमें और देशमें बहुत हर्ष फैला. इस प्रकार अपनी कुल मर्यादाके अनुसार राजा दशदिन तक पुत्रका जन्मोत्सव मनाने लगा. सैकड़ों, हजारों और लाखों रुपये देव-पूजनके लिये तथा अष्टमी-चतुर्दशी का पौषध करने वालोंके लिये और अन्य दान—धर्मादिके लिये स्वयं खर्च किये और दूसरोंसे करवाये। सैकडों, हजारों और लाखों रुपयोंकी वस्तुएँ सिद्धार्थ राजाने स्वयं भेट स्वरूपमें ग्रहणकी और अन्यसे ग्रहण करवाई.

तीसरे दिन श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीके माता—पिताने चन्द्र-सूर्य्यके दर्शन कराये। इस वक्तमें माता पुत्रको दर्पन दिखाती है परन्तु मूलविधि तो यह है कि कुलगुरु आकर पुत्र-सहित माताको स्नान करवा कर अच्छे २ वस्त्र पहिना कर, चाँदी अथवा स्फटिककी चन्द्रमाकी मूर्त्ति बनवाकर उसकी पूजा कर चन्द्रोदयके

समय चन्द्रमाके सन्मुख पुत्र सहित माताको बैठाकर यह मंत्र पढे–

"ॐ अर्हं चन्द्रोऽसि, निशाकरोऽसि, नक्षत्रपतिरसि, सुधाकरोसि, औषधीगर्भोऽसि, अस्य कुलस्य ऋद्धिं वृद्धिं कुरु कुरु स्वाहा"

चन्द्रमाको नमस्कार करनेके बाद् माता कुलगुरुको नमस्कार करे. कुलगुरु आशीर्वाद् देवे, और मूर्त्ति का विसंर्जन करे. कृष्णचतुर्दशी, अमावस्या हो अथवा चन्द्रमा बाद्लोंसे ढका हुआ हो तो चन्द्र-मूर्त्तिके आगे पूर्वोक्त विधि की जाती है. उसी दिन प्रातःकाल सूर्योदयके समय सोनेकी या तांबेकी सूर्य्यकी मूर्त्ति बनवाकर, पूर्वोक्त प्रकारसे सूर्यके सामने माता-पुत्रको बैठाकर, इस मंत्रका उच्चारण करे—

"ॐ अर्हं सूर्योऽसि, दिनकरोऽसि, तमोऽपहोऽसि, सहस्रकिरणोऽसि, जगच्चक्षुरसि, प्रसीद् अस्य कुलस्य तुष्टिं पुष्टिं प्रमोदं कुरु कुरु स्वाहा"

माता पुत्रको सूर्यके दर्शन करावे. बाद्लादिके कारण सूर्य नहीं दीखे तो सूर्यकी मूर्त्तिके सामने उपरोक्त विधि किये बाद् माता कुलगुरुको नमस्कार करे, गुरु आशीर्वाद् देवे. छठे दिन माता–पिता धर्म्म जागरण

करें, ग्यारहवें दिन अशुचि निवृत्त कर, मिट्टीके वर्तन वदलकर स्नानादि करके नवीन वस्त्र धारण करें। वारहवें दिन अशन, पान, खादिम, स्वादिम यह चार प्रकार का आहार तैयार करावें, रसोई वनवाकर सिद्धार्थ राजाने अपने मित्रोंको, जातिवालों को, पुत्र–पौत्रादिको, स्वजनों को, पिताके भाई आदिको, श्वसुरादि सम्वंधियोंको, दास-दासियोंको, अपने गौत्रवालों को, अन्य क्षत्रियोंको तथा सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि नगर निवासियोंको और भी वहुतसे आसपासके गावोंके लोगोंको निमंत्रण दिया। पीछे भगवान् और भगवान्की माता दोनोंको स्नान कराकर, नये पवित्र वस्त्र पहिरा कर, घरमें देरासरकी पूजाकर, विघ्ननिवारणके लिये प्रायश्चित्त करके कौतुक कज्जल तिलकादि लगाये, मांगलिक किये, सर्षप दूर्वा वगैरह मस्तक पर धारण किये तथा दृष्टिदोष निवारणके लिये लोह मुद्रिकादि कम कीमतके व शरीरकी शोभारूप वहुमूल्य आभूषण पहिने. भोजनके समय पूर्वोक्त सर्व लोग भोजन–मंडपमें सुखसे बैठे, जिनको अशन, पान, खादिम, स्वादिम यह पूर्वोक्त चार प्रकार का आहार पुरुसा. उनमें से ईक्षु खंडादि कितने ही आहार कम तो खाये जावें और वहुतसे छोड़े जावें ऐसे आस्वादक थे, खजूर वगैरह कितने ही आहार वहुत तो खाये जावें और कम छोड़े जावें, ऐसे विस्वादक थे,

लड्डू वगैरह कितने ही आहार परिभुज्यमान थे जो सर्व खाये जावें, विल्कुल भी न छोडे जावें। ऐसे आहार करके गुरु-साधर्मियोंको व पूर्वोक्त सर्व लोगोंको सिद्धार्थ राजाने भक्तिपूर्वक भोजन कराया *।

---

* अब वाग्विलास ग्रन्थसे उस भोजन-युक्तिको कहते हैं जिसको सिद्धार्थ राजाने भक्ति-पूर्वक किया-ऊपर की माल, मध्याह्नकाल. केल पत्रसे छाये, ऐसे मंडप बनाये. कुंकुम का छड़ा, मोतियोंका पासमें कड़ा. नीचे रखे पाट, ऊपर विछाये रेशमी घाट. चाचर चाकले, ऊपर वैठे कुमर पातले. चौरस चौकीवट, टाली मनकी खटपट. ऊंची आडनी, भूखकी भियाडनी. निर्मल पानीसे पखाली, आगे रखी सौनेकी थाली. करे रंगरोला, वहुत रक्खा सौने रूपेका कचोला. कुछ रहा नहीं कुरूप, वहां वैठे वत्तीस लक्षणे पुरुप. फान्दवाले, फुंदवाले, दूंदाले, झाग झमाले, गुवियाले, सुद्दाले, आंखे अणियाले. केशपाश काला, कितने जमाई कितने शाला. कितने योद्धाला, चलति हलति अग्नि ज्वाला, ऐसे पांत वैठा राजवी ढींचाला. सुजान सहेली, लाड गहेली. हंसगति चालति, गजगति मालति. काम कामिनी पालति, आंखके मटकारे मदनकी वागुरा डालति. कस्तूरी अलंकृत भालपट्ट, तरुणोंका भांगे मरट्ट. पूर्ण चन्द्र समान वदन, हेलामात्र जीतो मदन. कानोंमें कुण्डल, साक्षात् सूर्य मंडल. लहकति वैनी, ओढ़नी ओढ़ी झीनी. दिखति रूड़ी, खलकति हाथोंमें सौनेकी चूड़ी. कौन करे मूल, रत्नजड़े शीशफूल. जैसी देव नारी, ऐसी मनोहर राजकुमारी. ढलतैं हाथ, सौनेकी झारी साथ. पहले दिये हाथ धोवन, मानों स्वर्गसे आये इन्द्र जोवन. विनयसे लुलिलुलि, प्रथम पुरसे फल फुलि. वह कौन-कौन फोड़ा हुआ अखरोट, किया ऊंचा कोट. मिश्रीकी पातसे लग थोली, ऐसी पुरसी चारोली. केलेकी कतलि छुलि, रखी रायनकी कुलि. पुरसे नीले नालेर, पासमें रखे सूखे मीठे बोरोंके ढेर. और नीली दाख, पके आमकी लाये शाख. खातां प्यारा, पुरसा अच्छा छुहारा. करता मगजा, पुरसा निवजा. हाथ वहै सुस्ता, पुरसा पिस्ता. रस रेडली, छोलि शेडली. सर्व हजूर, मंगाइ पिंड खजूर. मिश्रीसे मिली, अनारकी कली. करना और सदाफल, मिटावे जीभकी झल. नारंगी

उसके बाद मुख-शुद्धि करके आसन पर बैठे हुए मित्र, ज्ञाति और निज संबन्धियों का विस्तीर्ण पुष्प, फल, वस्त्र, गंध और अलंकारोंसे सिद्धार्थ राजाने सत्कार किया. सत्कार करके त्रिशला रानी और सिद्धार्थ राजा

और विजौरी, ऐसी फलेरी पुरसे नारी गौरी. अब देहरों का छाजा, ऐसा पुरसा खाजा. वह कैसे-मालवे की भूम, वहां के नीपजे गोधूम. हाथसे मले, धोयके दले. छानिये सूधी, नीपजे परसूधी. धीरे हाथ चाले, मांहसे थूली टाले. सुजान स्त्री जोइये, तब घोइये. इकलग पाटो, अन्दर दीजे शाटो. जो बैठतीर्थी मेड़ी, वे नगरकी बहुआं तेड़ी. तैयार होवे पकवान, सब होवे सावधान. चित्रामकी जाति, छत्तीस फूल की भांति. धीरेसे भेलिये, वेलन से वेलिये. घृतसे मिला, लोहके कड़ाये तला. शब्द कलकले, निर्धूम अग्नि बले. ऐसा प्रधान खाजा, चारों कोने साजा. इनोंकी पुरसन हार, सांवली सुकुमार. झलहलति राखडि, पगे चाकडि. रंभाके वेश, मगधदेश. ऐसी नारी पुरसे, देखता मन हींसे. पीछे आये मोदक, रावणोंका मनमोदक. वह कौन कौनसा लाडु, जैसा वहेडा उपर गाडु. पाटनके कन्दोई, घृतसे मैदा मोई. बनी सेव पातली, सुगंध घृतमें तली. घने पाकसे मिली, मिश्रीके खेरोंसे अधमिली. अन्दर लवंगका चमत्कार, अत्यन्त सुकुमार. कपूर परिमल वासा फूल, अन्दर प्रतिवास्या अतिवर्तूल. महा उज्वल ऐसे लाडु, वह कौन कौनसे-सैविया, कांसेलिया, दालिया, वलि वाजना, लाजना भाजना, झगरिया, मगरिया, केसरिया, सिंहकेसरिया. तदनन्तर, मुर मुरति मुरकी, खानेको जीभ फुरकी. लाये सेव झीनी. फगफगती फीनी. इन्द्ररसा आकरा, दूध वर्णा दहीथरा. घृतकी घारी, स्वादसे आहारी. मिश्रीसे रली, ऐसी तिल सांकली. सुकुमाल सुहाली, जो कीजे दिवाली. शक्करपारा साडी, कैसेही नशके छांडी. ऐसे पुरसे पकवान, जीमनेको सब हुये सावधान. पुरस्यो सीरो, जीमतां मनहुयो धीरो. मोकले हाथसे पुरसी लाफसी, जिससें छोटा वडा सब धापसी. उसके बाद लाए शाल, कौन कौनसी शाल-सुगंधशाल, कमोदशाल, जीराशाल, कुंकुनशाल, देवजीराशाल इत्यादि उनको सरहरो, अनियालो, सुहालो, उज्वलो. अंगुल जैवडा प्रमाण वाला पुरसा कूर, भूख

दोनों इस प्रकार बोले–हे देवानुप्रिय ! जिसदिनसे यह बालक कुक्षिमें उत्पन्न हुआ, तभीसे हमारे सोना, चांदी, रत्न, धन, धान्यसे युक्त प्रीति-सत्कारकी वृद्धि होने लगी और चंडप्रद्योतनादि सामन्त राजा वशी हुए, इसलिये हमने विचार किया था कि–जब यह पुत्र जन्मेगा तब इसका नाम गुण निष्पन्न 'वर्धमान' रक्खेंगे, वह हमारा मनोरथ पूर्ण हुआ, अतः इस कुमारका नाम आपके समक्ष 'वर्धमान' रखते हैं.

करी चकचूर. नीपजी सुकाल, मंडोवर मूंगकी दाल. हलवे हाथे खांडी, तुपगया छांडी. सोनारे थाने, जीमता मन माने. यहां काम नहीं छोकरी, पुरसे डोकरी. बाखरी गायका घृत, तत्काल तपाके स्वर्णपात्र भृत. सरहराति धार, संतोषीयें जीवनहार. पीछे बहु प्रकारका शाक– मुंगिया, केरडोडी, लीलाथोर, वालोल, केला, चोलोंकी फली, गुंवार फली, नीला चना, मिर्च इत्यादि शाक, अच्छा किया पाक. और सूंठ की पलेव, मिरचकी पलेव, हड्डेकी पलेव. हींग वघारी कढी. पतलापापड तला, मिर्च हींगमांहीं मिला. नागर बेलके पान, जीमतां दुगुणो भावे धान. बिचबिच चमचमता शाक, ऊतरे जीभका थाक. खाते कलाकंद, उपजे आनन्द, दूध साकरभरा माट, पीतां उतरे जीभ दांतों को काट. स्वभावे मिलाया शुद्ध, मिश्रीसे अधोअद्ध. ऐसा बाखरी गायका दूध, कटोराभर गटगट पीथ. तदनन्तर छोड़ा विलंब, लाये कपूरवासित करंब. जीरा लोचन मिलाया घोल, ऊपर राइका झोल. अब चलु कीजे, अर्थीरसे हाथ धोइजे. उत्तम वस्त्र हाथ लोहीजे, पंच- सुगंध पानबीड़ा अरोगीजे, चोवाचन्दन अगरजाका छांटना दीजे, केसर चन्दन कपूर कस्तूरीसे पूजीजे. अच्छे सुगंध पुष्पोंकी माला कंठे ठवीजे, ऊपर यथा–योग्य आभरण वस्त्र तंबोल दीजे. मनकी भ्रांति भांजीजे, ऐसी सिद्धार्थराजा और त्रिशलाराणीकी भक्ति-युक्तिसे सर्वकुटुंब रीजे. सर्वकुटुंबीपोषी, सगासंतोषी, नाठा दुश्मन दोषी. इस प्रकारसे माता–पिता प्रवृत्तें.

काश्यप गोत्रीयके तीन नाम हुए—माता पितासे दिया हुआ वर्धमान १, राग–द्वेषरहित होकर तपमें परिश्रम करनेसे श्रमण २, जो अकस्मात् उत्पन्न होनेवाले भय, सिंहादिसे उत्पन्न होने वाले भैरव, इन सब भय–भैरवों से अचल, निर्भय, क्षुधा, तृषादि परिषह–उपसर्गोंको सहन करने वाले, तीन ज्ञानसे विराजमान्, बुद्धिमान्, ज्ञानवान्, धैर्य्यवान्, अरति–रतिको सहन करने वाले, सुख दुःखमें समभाव वाले, द्रव्यवीर्य सम्पन्न, मुक्ति प्राप्त करनेका निश्चय वाले होकरभी चारित्र पालने वाले इत्यादि गुणोंसे सम्पन्न होनेसे 'महावीर' नाम हुआ ३. दशम देवलोकके पुष्पोत्तर प्रवर पुंडरीकविमान से च्यवकर आनेसे अनुपम शोभायुक्त, दास दासी सेवकोंसे सेव्यमान भगवान् बढने लगे. श्याम बाल वाले, सुनयन, धोले दातोंकी पंक्तिवाले, कमलके गर्भ जैसे गौरवर्ण वाले, विकसित कमलके सदृश सुगन्धित निःश्वास वाले भगवान्के रूपमें सब देवभी उनके बायें पैरके अंगूठेकी भी बराबरी नहीं कर सकते। सबसे अधिक रूपवान् भगवान् हैं। उनसे कुछ न्यूनरूप गणधरोंका है, कुछ न्यून आहारक शरीर करने वाले चौदह पूर्व धारियों का है, उनसे कुछ कम पंचानुत्तर विमानवासी देवोंका है, उनसे कुछ कम नवग्रैवेक देवोंका है, उनसे कम क्रमशः बाहर देवलोकोंके देवोंका है, उनसे कम भवनपति,

ज्योतिषि और व्यन्तर देवोंका है, उनसे कम क्रमशः चक्रवर्ती, वासुदेव, वलदेव और अन्य सामान्य राजाओंका है, इसी प्रकार उनसे अनुक्रमसे उतरता हुआ छः संस्थान, छः संघयणवाले मनुष्योंका है, परन्तु देहकी कान्तिमें श्रीमहावीर इन सर्वमें उत्कृष्ट हैं। जातिस्मरण ज्ञानवान्, अप्रतिपाति मति, श्रुति, अवधि, इन तीनों ज्ञानोंसे विराजमान् श्री महावीर स्वामी जव कुछ कम आठ वर्षके हुए, तव अपने समान राजकुमारोंके साथ आमलिकी क्रीड़ा करने लगे. नगरके बाहर पीपलका वृक्ष था, वहाँ सर्व वालक इकट्ठे होकर दौड़ते, क्रीड़ा करते. उस क्रीड़ामें यह नियम था कि नियत स्थानसे दो वालक दौड़े, जिनमें जो पीपलपर पहिले चढें वह तो जीता, दूसरा हारा और जीता हुआ वालक हारे हुए के कंधेपर बैठकर, जहाँसे दौड़े वहीं पर आवे। उस समय इन्द्रने देवोंके आगे भगवान्का वल वर्णन किया, और कहा कि सर्व देव और दानव मिलकर भी भगवान्को नहीं डरा सकते। यह सुनकर इस वातपर विश्वास नहीं करता हुआ एक मिथ्यात्वी देव वालक का रूप धारण करके भगवान्के समीप आया और उनके साथ क्रीड़ा करने लगा। भगवान् और देव दोनों दौड़े। भगवान्, अतीव शीघ्र–गामी होनेसे, देवके आगे होगये, तव देवने भगवान्को डरानेके लिये पीपलके

पासमें, स्कन्धमें, शाखाओंमें फुत्कार करते हुए सर्प रचे. श्री वर्धमान कुमार, सर्पोंको देखकर निर्भय होकर उन्हें हाथसे फैंककर, पीपलपर चढ़गये. जब वह देव हारा और श्रीवर्धमान जीते, तब उस देवने भगवान्‌को कंधेपर चढ़ाये. अब भगवान्‌को छलनेके लिये उस देवने एक ताड़से लेकर सात ताड़ तक अपना रूप ऊँचा किया. सर्व बालकोंने भय-भ्रान्त होकर भागकर त्रिशला रानी व सिद्धार्थ राजाके पास जाकर समाचार कहे. श्रीवर्धमान कुमार तो नहीं डरे, परन्तु माता पिताकी चिन्ता दूर करने के लिये भगवान्‌ने उस देवके मस्तकपर वज्र जैसे मुष्टि-प्रहार किये, जिससे वह देव आक्रन्द शब्द करता हुआ कमर तक पृथ्वीमें घुसगया, बहुत लज्जित हुआ, अपना स्वरूप प्रकट किया और बोला—इन्द्रने सभामें आपकी जैसी प्रशंसा की थी, वैसेही आप महा वीर हैं. ऐसा कहकर, नमस्कार कर, 'महावीर' नाम रखकर अपना मिथ्यात्व गमाकर और सम्यक्त्व प्राप्त करके वह देव देव-लोकमें गया। इस प्रकार आमलिकी क्रीडामें भगवान्‌का नाम महावीर हुआ।

अब भगवान्‌के लेखक-शाला जानेका स्वरूप कहते हैं:—जब भगवान् आठ वर्षके हुए, तब माता—पिताने मोहके वशीभूत होकर ऐसा विचार किया—

लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रं मित्रं समाचरेत् ॥ १ ॥

जब तक बालक पांच वर्षका हो तब तक माता-पिता पुत्रका लाड़ करें, और जब दश वर्षका होवे, तब पढाने के लिये ताड़ना करें, इसी तरह जब सौलह वर्षका होजाय तब उसके साथ मित्रवद् वर्तांव करना चाहिये।

माता वैरी पिता शत्रुर्बालो येन न पाठितः । सभामध्ये न शोभते हंसमध्ये बको यथा ॥ २ ॥

जिस बालकको माता पिताने नहीं पढ़ायाहै, वह माता वैरी है, पिता शत्रु है, जैसे हँसों की सभामें बक नहीं शोभता, वैसेही पंडितों की सभामें वह शोभा नहीं पाता ॥ २ ॥ ऐसे विचार करके शुभ मुहूर्त्तमें अपना कुटुम्ब, क्षत्रियवर्ग, स्वजन सर्वको भोजन कराकर, यथा-योग्य वस्त्र आभूषणादि देकर, हाथी-घोड़े-रथ वगैरह श्रृंगार कर, वर्धमान कुंवरको स्नान कराकर, वस्त्राभूषणसे अलंकृतकर, तिलक कर, हाथमें श्रीफलादि देकर, शिरपर छत्र धारण करके चंवर विजाते हुए हाथीपर बैठाया और पंडित तथा विद्यार्थियोंको देनेके लिये मेवा, मिष्टान्न, वस्त्राभूषण वगैरह लेकर वादित्रों के और सधवा स्त्रियोंके गीत—गानके साथ वर्धमान कुंवरको विद्यालय की तरफ़ बड़ी धूम धामके साथ पढ़ानेके लिये लेजाने लगे, तब पंडित भी अच्छे २ वस्त्र पहिन कर, बड़ी

आशासे श्रीवर्धमान कुमारका आगमन देखने लगा। उस समय इन्द्रासन कांपा, इन्द्र अवधिज्ञानसे इस बातको जानकर सर्व देवों के आगे कहने लगा— हे देवों! देखो, मोहके वशीभूत होकर भगवान् के माता-पिता पागल होगये हैं जो वे तीन ज्ञात सहित, सर्व शास्त्रतत्त्वज्ञ भगवान् श्री महावीर स्वामीको अल्प-बुद्धि वाले अध्यापकके पास पढाने को लेजाते हैं। तीर्थंकर भगवान् तो बिना अध्ययनके ही पंडितहैं, द्रव्य बिनाही परमेश्वर हैं, और अलंकार बिनाही शोभाके धारण करने वाले हैं। लोकोक्ति भी यह है कि शरद् ऋतुमें (आशोज—कार्त्तिकमें) बादल बहुत गर्जें परन्तु वरसें नहीं, वर्षाकालमें (श्रावण—भाद्रमें) थोड़े गर्जें परन्तु बहुत वरसें, मूर्ख—अल्पबुद्धि वाला बहुत बोले परन्तु अपने बोले हुएका निर्वाह न करे, तत्त्वज्ञ पंडित बोले थोड़ा परन्तु अपने बोले हुएका निर्वाह करे, असार पदार्थका आडम्बर बहुत होताहै; जैसे—कांसीके पात्रको थोडासा ठोकने परभी बहुत शब्द होताहै और सौनेके पात्रका बहुत ठोकने परभी वैसा शब्द नहीं होता, उसी प्रकार त्रिकालज्ञ भगवान् गम्भीर हैं और बिना पूछे कुछभी नहीं कहते. ऐसा कहकर इन्द्र उसी वक्त स्वयं ब्राह्मणका रूप धारणकर, उपाध्यायके सामने भगवान्‌को नमस्कार करके, भगवान्‌से शब्दोंका सन्देह पूछने

लगा, तब भगवान् श्रीमहावीर स्वामी आठों व्याकरणों का*तत्त्व-शब्द-साधन इन्द्रसे कहने लगे। उस समय सर्व लोग भगवान्‌की वाणी सुनकर विचार करने लगे— अहो! यह वर्धमान कुमार, जिसने वर्ण-मात्रभी नहीं पढा, इस परदेशी सर्व विद्यापारगामी ब्राह्मणके कठिन प्रश्नोंकाभी उत्तर देताहै, आश्चर्य है! जब वहांके अध्यापकने भगवान्‌से जो २ प्रश्न पूछे उनकाभी समाधान भगवान्‌ने किया, तब इन्द्र अपना स्वरूप प्रकट कर के सर्व लोक और माता-पिताके समक्ष बोला— अहो! यह वर्धमान कुमार सामान्य मनुष्य नहीं है किन्तु तीनों लोकका स्वामी सर्वज्ञ है. जो अन्तर मूर्ख और विचक्षणमें, शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें, राजा और रंकमें, सर और सागरमें, सूर्य्य और दीपकमें है, वही अन्तर तीर्थंकर और सामान्य लोगोंमें है. तीन जगत्‌के स्वामी तीर्थंकर का इस संसारमें कोईभी सादृष्य नहीं कर सकता। ऐसा कहकर इन्द्र तीनों ज्ञानोंसे सम्पूर्ण श्रीवर्धमान स्वामी

---

* उस समय जिनेन्द्र व्याकरण बना, जिसके भगवान्‌ने सूत्र कहे, इन्द्रने वृत्ति व उदाहरण दिखलाये और जिसके निम्नलिखित दस अंग अबभी व्याकरणोंमें देखने में आते हैं—संज्ञा १, परिभाषा २, विधि ३, नियम ४, अतिदेश ५, अनुवाद ६, प्रतिषेध ७, अधिकार ८, विभाषा ९, निपात १०।

की स्तुति करके, स्वर्गमें गया, और वर्धमान कुमारभी अध्यापकको व विद्यार्थियों को मनो वांच्छित दान देकर हाथीपर बैठकर माता-पिता आदि परिवार सहित वापिस घर आये ॥ इति लेखक-शालागमन-महोत्सव ॥

जब भगवान् बाल–भावको छोड़कर यौवनावस्था को प्राप्त हुए, तब माता-पिताने भोग समर्थ जानकर, अच्छे मुहूर्त्तमें, समरवीर सामन्त राजाकी 'यशोदा' नामकी पुत्रीके साथ वर्धमान कुमारका पाणी–ग्रहण कराया. उसके साथ विषय सुख भोगते हुए वर्धमान कुमारके एक पुत्री उत्पन्न हुई जिसका नाम प्रियदर्शना रक्खा गया और जिसका विवाह भगवान्की बहिनके पुत्र जमालीके साथ किया गया. भगवान्के इस प्रकार गृहस्थावास में रहते हुए अट्ठाईस वर्ष होगये। उस समय भगवान्के माता–पिता चौथे देव–लोकमें गये (कहीं २ बारहवें देव लोकमें गये, ऐसाभी कहा है). जब सर्व प्रजाने भगवान्के बड़े भाई नन्दीवर्धनको राज्याभिषेक किया, तब श्री वर्धमानने दीक्षा लेनेके वास्ते नन्दीवर्धनसे आज्ञा मांगी। नन्दीवर्धन बोला—हे भाई ! इसी समय तो माता-पिता का वियोग है और तू भी दीक्षा लेनेको तय्यार हुआ है. यह तो बले हुए के ऊपर क्षार डालने जैसा है, अभी मैं दीक्षा की आज्ञा नहीं दूंगा– तब भाईके आग्रहके कारण भगवान् दो वर्ष तक

सूत्र ३॥

प्रासुक अन्न-पानी लेते हुए साधु-वृत्तिसे पुनः घरमें रहे ।

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां । गृहेऽपि पंचेन्द्रिय निग्रहस्तपः ॥
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते । निवृत्तरागस्य गृहे तपोवनम् ॥ १ ॥

जो पुरुष रागसहित होते हैं, उनके वनमें रहते हुए भी दोष उत्पन्न होते हैं और जिस पुरुषकी पांचों इन्द्रियाँ वशमें होती हैं और जो निरन्तर धर्मकार्य में प्रवर्त्त होता है, राग-द्वेष रहित हुए उस पुरुषके लिये गृह भी तपोवन ही है ।

राग-द्वेषौ यदि स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम् । तावेव यदि न स्यातां, तपसा किं प्रयोजनम् ॥ २ ॥

राग-द्वेष होवे तो तप पूर्णतया फलदायक नहीं होता और राग द्वेष न होवे तो तप पूर्णतया फलदायक होता है. इस प्रकार राग-द्वेष रहित होकर श्रीमहावीरस्वामी प्रासुक अन्न-पानी लेते हुए दो वर्ष तक घरमें रहे । पहले जब त्रिशला रानीने चौदह स्वप्न देखे थे, तब सबको मालूम होगया था कि चक्रवर्ती पुत्र होगा. उसके बाद जब सिद्धार्थ राजाके वर्धमान कुमार हुए, तब उनकी सेवाके वास्ते श्रेणिक-चंड प्रद्योतन इत्यादि राज-

कुमार आये, परन्तु वर्धमान स्वामी को दीक्षा लेनेके वास्ते तय्यार हुए जानकर अपने २ घर चले गये।

अब भगवान्का सर्व कुटम्ब कहते हैं:— श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पिताके तीन नाम हुए— सिद्धार्थ १, श्रेयांस २, यशस्वी ३. भगवान्की माताकेभी तीन नाम हुए— त्रिशला १, विदेहदिन्ना २, प्रीतिकारिणी ३. भगवान् के काका का नाम सुपार्श्व, बड़े भाईका नन्दीवर्धन, बहिनका सुदर्शना और भार्य्याका नाम यशोदा था. भगवान्की पुत्रीके दो नाम हुए– अनोद्या १, प्रियदर्शना २. भगवान् की पुत्री की पुत्री के भी दो नाम हुए–शेषवती १, यशस्वती २. श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी प्रवीण, प्रतिज्ञाका निर्वाह करनेवाले हैं, प्रतिरूप (जैसे– दर्पनके सामने रक्खी हुई वस्तु स्पष्टरूपसे दिखाई देती है, उसी प्रकार भगवान्में सर्व गुण स्पष्टरूपसे दिखाई देते हैं), सर्व गुणयुक्त, गुप्तेन्द्रिय, सरल स्वभाव, विनयवान्, ज्ञात लोगों में प्रसिद्ध, सिद्धार्थराजाके पुत्र, सिद्धार्थराजाके कुलमें चन्द्र, विशिष्ट देहकी कान्ति वाले, वज्र–ऋषभ–नाराच–संघयण वाले, समचतुरस्र संस्थानवाले, विदेहदिन्ना (त्रिशलारानी के पुत्र), घरमें निस्पृही, दीक्षा के इच्छुक भगवान्ने दीक्षा लेनेके एक वर्ष पहलेसेही सम्वत्सरी दान देना शुरू किया, और सूर्योदयसे ११

बजे तक एक करोड़ आठ लाख सौनेयों का प्रतिदिन दान किया*. इस प्रकार एक वर्षमें तीन सौ अट्ठासी करोड़ अस्सी लाख सौनेयोंका दान दिया गया। रत्न, वस्त्र, घोड़ा, हाथी वगैरह वस्तुयें इतनी दी गई कि उनकी तो कोई संख्याही नहीं है। जिसको जो वस्तु चाहिये सो मांग ले, ऐसी उद्घोषणा नित्य नगरमें होती. इसप्रकार प्रभु तीस वर्षतक घरमें रहे। माता-पिताके स्वर्गवास बाद बड़े भाईकी आज्ञानुसार और गर्भमें की हुई अपनी प्रतिज्ञा पूरी होनेके पश्चात् श्रीवधर्मान स्वामी दीक्षा लेनेको तय्यार हुए. पांचवें देवलोकके तीसरे प्रतरमें

---

* अनादि कालका यह नियम है- कि तीर्थंकर भगवान् के वार्षिक दानके समय इन्द्रकी आज्ञासे उनका भण्डारी धनद देव एक करोड़ आठ लाख सौनेये नित्य बना २ तीर्थंकर के भण्डारमें रखताहै, जिनपर तीर्थंकरके माता-पिता और तीर्थंकरका नाम खुदा रहता है। यद्यपि तीर्थंकरमें अनन्त बल होताहै, तथापि दानके समय सौधर्मेन्द्र भगवान्के हाथोंमें ऐसी शक्ति डालता है कि भगवान् को दान देते २ श्रम नहीं मालूम होता १, ईशानेन्द्र रत्न जटित छड़ीको लेकर, आकाशमें खड़ा होकर ६४ इन्द्रों को छोड़ कर बाकीके देवों को दान लेने से रोके तथा मनुष्य के भाग्यमें जितना लिखा होवे, इन्द्र देवानुभावसे उसके मुखसे उतनेकी ही याचना करावे २, चमरेन्द्र व बलीन्द्र दान देते समय भगवान् की मुष्ठिमें अधिक द्रव्य हो तो निकाल लें और कम होवे तो रख दें ३, भुवनपति देव भरत क्षेत्रके सब देशों के मनुष्यों को दान लेने के लिये बुला लावें ४, व्यन्तरदेव दान लिये हुए मनुष्यों को अपने २ स्थान पहुचा देवें ५,

कृष्णराजी के अन्तमें आठ दिशाओंमें आठ विमान हैं और नवां विमान उनके मध्यमें है. उनमेंसे आठ विमानोंमें अल्प भवोंमेंही मुक्ति जानेवाले देव रहते हैं और मध्यस्थ विमानमें एक भव करके मुक्ति जाने वाले देव रहते हैं. देवलोकके अन्तमें रहने वाले अथवा संसारका भी अन्त करने वाले होनेसे ये लोकांतिक देव कहे जाते हैं. उसी समय सारस्वत, आदित्य, वह्नि, वरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाद, आग्नेय, अरिष्ट, इन नौ प्रकार के लोकान्तिक देवोंने श्रीवर्धमान स्वामी से दीक्षा लेनेकी विनति की. यद्यपि तीर्थंकर स्वयं बुद्ध होते हैं, तथापि लोकान्तिक देवोंका यह कर्तव्य है कि दीक्षावसरमें आकर तीर्थंकरको दीक्षाका अवसर जय २ शब्द—

ज्योतिपि देव विद्याधरों को दान लेनेकी सूचना देवे ६. इस प्रकार तीर्थंकरों के दानमें ६ अतिशय होती हैं और उस समय तीर्थंकर के पिता अथवा बड़े भाई वगैरह घरके तीन दानशालायें बनाते हैं, एकमें मनोवांच्छित भोजन, दूसरीमें मन चाहे वस्त्र और तीसरी में आभूपण मिलते हैं. देवानुभावसे तीनों शालायें सर्व प्रकारकी वस्तुओं से परिपूर्ण रहती हैं और तीर्थंकरके दानके प्रभावसे ६४ इन्द्रों के आपसमें विरोध नहीं होता। राजा, चक्रवर्ती आदि भगवान्‌के दानको लेकर भंडारमें रक्खें तो बारह वर्ष तक भंडार भरे रहें, सर्वत्र यश–कीर्त्ति की वृद्धि होवे, रोगियों के रोग जावें और अन्तमें परम्परासे मुक्ति प्राप्त करें. इस प्रकार भगवान्‌से दान लेने वालोंको अनेक गुणों की प्राप्ति होती है। इसलिये इन्द्रादि देव व राजा महाराजा सभी भगवान्‌के हाथसे दान लेते हैं।

पूर्वक इस प्रकार कहकर बतलावें—हे स्वामिन्! हे क्षत्रियवरवृषभ! आप जयवन्त होवें, जगत्के जीवोंका हित करें और सर्व जीवोंका कल्याण करने वाले होवें। हे लोकनाथ! आप प्रतिबोध पावें और दीक्षा लेकर तथा केवल ज्ञान पाकर सकल जन्तुहितकारक धर्मतीर्थको प्रगट करें। पहिले भी गृहस्थावस्थामें स्त्री सेवनादिसे भगवान्का मन विरक्त था और अब अवधि ज्ञानसे भी दीक्षाका अवसर जानकर, स्वर्णादिका परिग्रह त्याग कर, पृथ्वीमें गाड़े हुए सौनेये आदि धनको प्रगट किया और अपने गौत्रियोंको देकर दीक्षा ग्रहण करनेको तय्यार हुए.

अब भगवान्का दीक्षावसर कहते हैं—तिसकाल और तिस समयमें शीतकालके पहिले महीने, पहिले पक्षमें, मार्गशीर्ष कृष्ण दसमीके दिन, पूर्व दिशामें छाया जाते समय, एक प्रहर दिन रहने पर सुव्रत नामक दिनमें, विजय नामक मुहूर्त्त में नन्दीवर्धन राजाने भगवान्का दीक्षा महोत्सव करना प्रारम्भ किया। उसी समय सर्व इन्द्रोंके आसन कांपनेसे, अवधि ज्ञानसे भगवान्का दीक्षा लेनेका समय जानकर, देवेन्द्र आये. स्नान, विलेपनादिसे जन्म—महोत्सवके जैसा पहिले नन्दीवर्धनने भगवान्का दीक्षा महोत्सव किया, फिर इन्द्रोंने किया. पचास धनुष लम्बी, पच्चीस धनुष चौड़ी, छत्तीस धनुष ऊँची चन्द्रप्रभा नामकी एक पालकी राजाने बनवाई.

और दूसरी इन्द्रने बनवाई. उनमें भगवान्के बैठनेके वास्ते रत्न जडित सोनेका सिंहासन रक्खा गया. जब भगवान् नन्दीवर्धन राजाकी बनाई हुई पालकीमें बैठें तो इन्द्र मनमें उदास होवे और यदि इन्द्र की बनाई हुई पालकीमें बैठें, तो राजा उदास होवे, इसलिये देव-प्रभावसे दोनों पालकियाँ एक होगई. उसमें भगवान् पूर्व दिशाकी ओर मुंह करके विराजमान् हुए. सौधर्मेन्द्र और ईशानेन्द्र चँवर ढालने लगे. कुल महत्तरिका हंसलक्षण पटशाटक लेकर भगवान्के बाईं ओर बैठी. दाहिनी ओर प्रभुकी धायमाता दीक्षाके उपकरण लेकर बैठीं. भगवान्के पीछे सुन्दर शृंगार वाली एक तरुण स्त्री श्वेत छत्रको प्रभुके सिरपर लगाये हुए बैठी. गंगा जलका कलश लेकर एक स्त्री ईशान कोनमें बैठी. एक स्त्री रत्न जटित दंडे वाले पंखेको वींजती हुई आग्नेय कोनमें भद्रासन पर बैठी. नगरके दरवाजे तक मनुष्योंने पालकी उठाई. उसके बाद देवोंने उठाई. शक्रेन्द्रने पालकी के दक्षिणकी ऊपरकी बाह उठाई. ईशानेन्द्रने उत्तरकी ऊपरकी बाह उठाई. चमरेन्द्रने दक्षिणकी नीचेकी बाह उठाई. बलीन्द्रने उत्तरकी नीचेकी और भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक इन्द्रोंने जहाँ जगह मिली वहींपर पालकी उठाई। पालकीके आगे कितने ही देव मार्गमें पांचवर्ण पुष्पोंकी वर्षा करते चले, कितने ही देव

देवदुन्दुभि बजाते चले, कितने ही देव नाटक करते चले. स्त्री-पुरुष और देवोंका महान् समुदाय भगवान्की दीक्षा का महोत्सव देखनेके लिये साथ हुआ, जिससे क्षत्रीय–कुन्ड–ग्राम–नगरका मार्ग भी अत्यन्त संकीर्ण दिखाई देने लगा। आठ मनुष्य पालकीके आगे सौने के थालमें आठ मंगल लिये हुए चले. उनके आगे सिर पर गंगा जलसे भरे हुए कुम्भको उठाये हुए सधवा स्त्री चली. उसके बाद क्रमशः भृंगार, चँवर, बहुतसी ऊँची २ ध्वजायें, श्वेत छत्र, रत्न जटित स्वर्णका सिंहासन, १०८ कोतल घोड़े, इन सबके बाद अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, घन्टानाद सहित और वीर पुरुषोंसे आश्रित १०८ रथ चले। पीछे सन्नद्धबंद्ध, सर्वांग सुन्दर १०८ वीर पुरुष चले. पीछे सिन्दूर तैलसे पूजित मस्तक वाले तथा सौनेके घन्टोंसे विराजित १०८ हाथी चले. पीछे हजार योजन ऊँचा रत्न जटित इन्द्र-ध्वज चला. पीछे चक्रधर, हलधर, शंखधर, मुखमांगलिका, वर्धमान (छोटे २ कुमारोंको शृंगारकर कांधेपर उठाकर चलने वाले) पुरुष चले. पीछे राजाकी वंशावली कहने वाले, घंटा बजाने वाले आदि पुरुष जय २ शब्द-पूर्वक भगवान्की स्तुति करते हुए चले. पालकीपर बैठेहुए मनुष्य और देवोंसे परिवृत श्री वर्धमान स्वामी क्षत्रीय–कुंड–नगरके मध्यमें होकर पग २ में दान देते हुए चले.

उनके पीछे नन्दीवर्धन राजा हाथीपर बैठे हुए चले. उस समय सर्व जन इस प्रकार कहने लगे– हे क्षत्रीयवर वृषभ, आप जयवन्त होवें, वृद्धि पावें, आपका कल्याण होवे और अभंग ज्ञान-दर्शन-चारित्रसे अजय इन्द्रियों और मनको जीतो. हे स्वामिन्! जितविघ्न होकर आप साधु धर्मका पालन करो, उत्कृष्ट तपके बलसे राग-द्वेषादि शत्रुओंके साथ युद्ध कर, सन्तोष धैर्यसे कक्षा बांधकर आठ कर्मरूपी शत्रुओंका मर्दन करो, उत्कृष्ट शुक्लध्यानसे तीन लोकरूप रंग मंडपमें विजय प्राप्त करो और अप्रमादी होकर, आवरण रहित केवल ज्ञान को प्राप्त करके मोक्षमें जाओ. ऋषभादि तीर्थंकरोंके कथनानुसार हे स्वामिन्! आप ज्ञान-दर्शन-चारित्रकी आराधना करके बाईस परिषहरूपी शत्रुसेनाको जीतकर, बहुत दिन, बहुत पक्ष, बहुत मास, बहुत ऋतु, बहुत अयन *, तथा बहुत वर्षों तक परिषह उपसर्गोंसे निर्भय होकर क्षमासे सर्व भय-भैरवादिको सहन करते हुए साधु धर्मका पालन करो, और सदा निर्विघ्न बनो। तदनन्तर जगह २ पर बैठे हुए मनुष्य समुदायके हजारों नेत्रोंसे देखे जाते हुए, हजारों मुखोंसे स्तुति किये जाते हुए, हजारों हृदयोंसे चिंत्यमान भगवान्की

* दो महीनोंकी एक ऋतु, छः महीनोंका एक अयन और दक्षिणायन–उत्तरायनका एक वर्ष होता है।

आज्ञाको सर्वदा मस्तक पर धारण करें ऐसे हजारों मनुष्योंसे प्रशंसमान् , हजारों अंगुलियोंकी श्रेणिसे आ-
दर सहित दिखाये जाते हुए, ऐसे भगवान् सबका नमस्कार ग्रहण करें. वेणु-वीणादि वादित्रोंके शब्दोंके साथ
गीत-गान सहित, जय २ नन्दा इत्यादि वचनमिश्रित, ऐसे अव्यक्त कोलाहलमें भी सावधान श्रीवर्धमानस्वामी
छत्र-चँवरादिकी समृद्धि, आभरणादिकी सर्वकान्ति, सर्व हाथी, घोड़े, रथ और मनुष्यादिकी सर्व विभूति, सर्व
शोभा, सर्व हर्षोत्कर्ष, सर्व सज्जनोंका मिलाप, सर्व नगरमें रहने वाले अठारह श्रेणि प्रश्रेणि सहित, सर्व नाटक
इन सबके साथ, १९ कोटितालभेद सहित, सर्व पुष्प, फल, गन्धमाला, अलंकारादि सहित, शंख, भेरि,
पटह, मृदंग, झल्लरी, खरमुखी इत्यादि वादित्रोंके प्रतिशब्द सहित क्षत्रीय-कुन्ड-ग्राम-नगरके मध्यमें होकर
ज्ञातवनखन्ड उद्यानमें, जहाँपर अशोक वृक्षहै, वहां आये. वहाँ आकर अशोक वृक्षके नीचे पालकी रक्खी गई.
पालकीसे उतरकर स्वयंही अंगोपांगसे आभरण उतारकर नन्दीवर्धनको देने लगे। तत्पश्चात् स्वयं भगवान्ने
पंचमुष्टि केशोंका लोच किया. भगवान्के केस लेकर इन्द्रने क्षीर समुद्रमें बहाये और सौनेकी छड़ी घुमाकर,
वादित्रादिका कोलाहल बन्द करके उच्च स्वरसे कहने लगा—सर्वलोक सावधान रहे और छींके नहीं। लोच

करनेके पश्चात् "नमः सिद्धेभ्यः" ऐसा कहकर "करेमि सामाइयं" इत्यादि पाठका उच्चारण करके भगवान्ने चारित्र लिया, परन्तु 'भन्ते' ऐसा पद नहीं कहा. इसका कारण यह है कि भगवान् स्वयं संबुद्ध जगत् गुरु हैं, उनका कोई गुरु नहीं है। भगवान्ने दो चौविहार उपवास किये, एक उपवास पहिले दिन, दूसरा उपवास दीक्षाके दिन। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेसे तथा दुःषम कालविशेषके कारण भगवान्के साथ किसीने भी दीक्षा नहीं ली. अकेलेही भगवान् दीक्षा लेकर, द्रव्यमुंड होकर, क्रोधादि कषायोंसे रहित होकर भावमुंड हुए, गृहस्थावासका त्यागकर अनागार हुए. जब इन्द्रने सवालाख सौनेयोंकी कीमतका देव-दुष्य (रेशमी) वस्त्र बायें कन्धेपर रक्खा, तब भगवान्को चौथा मनपर्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ. सर्व तीर्थंकर जब तक घरमें रहते हैं, तब तक तीन ज्ञानसहित ही होते हैं, परन्तु चौथा ज्ञानतो तभी उत्पन्न होताहै, जब चारित्र ले लिया जाय और केवल ज्ञानकी उत्पत्ति भी तभी होती है जब घाति कर्मों का क्षय होजाय।

भगवान् महावीर स्वामीके दीक्षा लेने के पश्चात्, इन्द्रादि देव भगवान्को वन्दना कर, नन्दीश्वर द्वीपमें जाकर अट्ठाई महोत्सव करके अपने २ स्थानों को चले गये. श्री महावीर स्वामी भी नन्दीवर्धन राजासे आज्ञा लेकर

विहार करने लगे, क्योंकि साधु राजाकी आज्ञा के विना विहार नहीं करता. नन्दीवर्धन राजाभी भगवान् को वन्दना करके, उदास होता हुआ घर आया. नगरके और लोग भी अपने २ घर आये। जब दो घड़ी दिन रहा, तब भगवान् विहारकर कुमार ग्रामके पास आकर काउसग्गमें खड़े रहे। उसी समय गोवाल प्रभुको अपने बैल संभलाकर घरको गया. बैल चरते २ दूर निकल गये, गोवालने वापिस आकर बैलोंको न देखकर प्रभुसे पूछा, परन्तु प्रभुके उत्तर न देने पर रातभर बैलोंको ढूंढा तोभी बैल नहीं मिले. अन्तमें थककर जब गोवाल वापिस आया, तब प्रभुके पास बैलोंको बैठा देखकर बड़ा क्रोधित होकर बैलकी रस्सी को दुगुनी, तीगुनी करके मारने को तय्यार हुआ. अवधिज्ञानसे इन्द्रने वह बात जानकर, एकदम आकर और गोवालको शिक्षा देकर रवाना किया। उसके बाद इन्द्र वर्धमान स्वामीसे इस प्रकार विनति करने लगा—हे स्वामिन्! आपको बारह वर्षतक छद्मस्थावस्थामें जो २ उपसर्ग होंगे, उन सबका मैं निवारण करूंगा और आपकी सेवामें रहूंगा—मुझे आज्ञा दो. तब भगवान् बोले—हे इन्द्र! ऐसा न हुआ है, न होताहै और न होवेगा जो अरिहन्त, देवेन्द्र या असुरेन्द्रकी सहायतासे केवल ज्ञान उत्पन्न करें अथवा मोक्ष प्राप्त करें, किन्तु अपने उत्थान—बल, वीर्य,

पुरुषार्थ और पराक्रमसे केवल ज्ञान उत्पन्न करते हैं अथवा मोक्षमें जाते हैं। भगवान्के ऐसा कहने परभी इन्द्र, मरणांत उपसर्ग दूर करने के लिये गृहस्थावस्थाके भगवान् के काका सुपार्श्व को, जो अभी सिद्धार्थ नामक व्यन्तर देव हुआ था, भगवान् के पास रखकर अपने स्थान चला गया. भगवान् भी प्रातःकाल विहा-रकर 'कोल्लास' सन्निवेश गये. वहां बहुलनामा ब्राह्मणके घरमें परमान्न (क्षीर) से पारणा किया. तब देवोंने पांच दिव्य प्रगट किये—आकाश में ध्वजाका फैलाना १, सुगन्ध पानी की वृष्टिकरना २, पुष्पोंकी वृष्टि करना ३, देवदुन्दुभिका बजाना ४, अहो! यह सम्यक् दान है, यह सम्यक् दानहै, ऐसी उद्घोषणा का करना ५. इन पांच दिव्यों को प्रकट करके, साढ़े बारह करोड़ सौनेयोंकी वर्षा की. तदनन्तर भगवान् ने वहां से विहार किया। दीक्षाके समय इन्द्रों ने भगवान् के शरीरमें बावन-चन्दनका विलेपन किया था. उसकी सुग-न्ध से आकर्षित भ्रमरगण भगवान्को डसने लगे, कामी दुष्ट पुरुष भगवान्के शरीर को घिसने लगे, स्त्रियां स्वामीके शरीरसे आलिंगन करके भगवान्से सुगन्ध मांगने लगीं, परन्तु भगवान् मेरु जैसे अकम्प रहे।

अब भगवान् विहार करते हुए मोराक सन्निवेश गये, जहाँ सिद्धार्थ राजाके मित्र 'दूइज्जन्त' नामक तप-

स्वीका आश्रम था. वह भगवान्‌को आते देखकर सामने आया. भगवान् भी पूर्व परिचयसे मिले। 'वर्षाकालमें आप यहां पधारना' इस प्रकारके तपस्वीके आग्रहसे शेषकालमें अन्यत्र विहारकर वर्षा ऋतुमें भगवान् वहां आये। और तपस्वी की दी हुई झोंपड़ी में काउसग्ग ध्यानमें रहे. वहां दैवयोग से वर्षा न हुई. तब वहां के गाय-भैंस वगैरह पशु आते जाते उस झोंपड़े के तृण खाते, भगवान् मना करते नहीं। तब तापस भगवान् को उपालम्भ देने लगा—हे देवानुप्रिय! आप बड़े आलसी हैं, जो इन पशुओं को नहीं भगाते. इस प्रकार अप्रीति जानकर भगवान् ने वहाँ से विहार किया और पांच अभिग्रह धारण किये—अप्रीतिकर स्थानमें रहना नहीं १, छद्मस्थावस्था में प्रायः मौनसे कायोत्सर्ग में ही रहना, २, गृहस्थों का विनय नहीं करना ३, सदा खड़े रहना ४, हाथमें ही आहार करना ५. चौमासे के पन्द्रह दिन जाने पर भगवान् ने विहार किया और अस्थिग्राम के बाहर शूलपाणि यक्षके मन्दिर में काउसग्ग में रहे. वह यक्ष महा दुष्ट था और पूर्व-भव में धनदेव सेठ का धवलधोरी वृषभ था। एकदा धनदेव पांच सौ गाड़े भरकरके चला. मार्ग में वर्धमान ग्रामके पास वेगवती नदी में गाड़े उतारने में सर्व वृषभ असमर्थ हुए, तब धनदेवने सब गाड़े धवल वृषभसे उतारे, जिससे

उसकी नसें टूटगईं, चलने में असमर्थ हुआ, तब धनदेवने ग्रामके मुख्य २ लोगों को बुलाकर, बैलको संभलाकर और गुड़, घी, घास, जल आदिसे उसकी संभालके लिये बहुतसा द्रव्य देकर आगे चलागया. उसकेबाद वे लोग उस द्रव्य को खागये, परन्तु वृषभ को किसीने नहीं संभाला. वह वृषभ मरकरके शूलपाणि नामक व्यंतर देव हुआ, अवधिज्ञानसे पूर्वभव देखकर क्रोधित होकर गांवमें बीमारी फैलाकर लोगोंको मारनेलगा. बहुत से लोगों के मरनेसे हाडोंका समूह ग्रामके पास होगया, जिससे उस ग्रामका नाम 'अस्थिग्राम' हुआ. बहुत से लोगों का मरना देखकर, लोगोंने जब उस यक्षकी आराधना की, तब आकाश में वह देव इस प्रकार बोला—अरे पापियों! मेरा द्रव्य तो तुम सब खागये और किसीने मेरी ख़बर भी नहीं ली. मैं धनदेव सेठका बैल हूं, मरकर शूलपाणि यक्ष हुआ हूं. मेरी मायासे ही लोग मरते हैं, यदि शूलपाणिधारी मेरी मूर्त्ति को, मन्दिर बनाकर, नित्य पूजोगे, तो नहीं मारूंगा, अन्यथा सबको मारूंगा. ऐसा सुनकर डरे हुए लोगोंने उसी तरह किया. उस देव-मन्दिर में इन्द्रशर्म्मा ब्राह्मण पुजारी था. वहाँ भगवान् संध्या समय आकर काउसग्गमें रहे. पूजारीने कहा—हे आर्य्य! यहाँ नहीं रहना, यह यक्ष क्रुर है, परन्तु भगवान् ने

कुछभी उत्तर नहीं दिया. रात्रिमें यक्ष ने प्रगट होकर अट्टहास किया, हाथी का रूप धारण करके भगवान्को आकाशमें उछाला, राक्षसका रूप कर छुरी हाथ में लेकर डराने लगा, सर्प वनकर डसा, तोभी भगवान् ध्यानसे नहीं चले. तव मस्तक, कान, नासिका, दांत, नख, नेत्र और पीठ, इन सात स्थानों में वहुत वेदना उत्पन्न की, तवभी भगवान् ध्यानसे नहीं चले. तव यक्ष थक कर आपही शांत हुआ, ज्ञानसे भगवान्को जानकर, अपने अपराध की क्षमा मांगकर, सम्यक्त्व पाकर, गीत-गान नाटकादि से पूजाकरके भक्ति दिखाता हुआ चला गया । पिछली रात्रि में दो घडी तक भगवान्को निद्रा आई. उसमें भगवान् ने दश स्वप्न देखे. प्रातःकाल अष्टांग निमित्त का जानने वाला 'उत्पल' नैमित्तिया वहाँ आकर भगवान् के पास, लोगों के समक्ष निमित्तके वलसे, उन स्वप्नों का फल इस प्रकार कहने लगा— हे स्वामिन् ! आपने प्रथम स्वप्नमें ताड प्रमाणे पिशाचको मारा, उससे आप मोहका क्षय करोगे १, श्वेत कोकिला देखने से शुक्लध्यान ध्याओगे २, विचित्र पांच वर्ण की कोकिलाओं का समूह देखा, उससे अनेक अर्थ वाली द्वादशांगीका प्रकाश करोगे ३, पुष्पों की दो मालायें देखने से साधुधर्म और श्रावकधर्म का प्रकाश करोगे ४, गायों का समुदाय देखने से चार प्रकार

का संघ स्थापित करोगे ५, मानसरोवर देखने से आपकी देव सेवा करेंगे ६, समुद्र देखनेसे आप संसार समुद्रसे तिरोगे ७, सूर्य देखने से केवल ज्ञान प्राप्त करोगे ८, आंतों की जालसे मनुष्यक्षेत्रको लपेटा हुआ देखने से प्रतापवान् होवोगे ९, मेरु-पर्वतके शिखर पर चढनेका स्वप्न देखने से आप सिंहासन पर बैठकर धर्मो-पदेश दोगे १०. उत्पल नैमित्तिये के ऐसे वचन सुनकर, लोग प्रभुको वन्दना करके अपने २ घर गये। भगवान् ने वहाँ पन्द्रह दिन कम चौमासा निर्विघ्नता से व्यतीत किया। वहाँ पारणा कर विहार करके स्वामी मौराक सन्निवेश गये और उद्यान में काउसग्ग ध्यानमें रहे. वहाँ पर भगवान् का माहात्म्य बढ़ाने के लिये सिद्धार्थ व्यंतर भूत, भविष्यत् और वर्तमान निमित्त कहने लगा, जिससे लोग स्वामी की सेवा करने लगे। उस समय अच्छन्दक नामक नैमित्तियेने द्वेषसे स्वामीके पास आकर एक तृण हाथ में लेकर पूछा—भो आर्य ! यह तृण टूटेगा या नहीं ? सिद्धार्थ बोला—नहीं टूटेगा। तब वह उस तृणको तोडने लगा, इतनेही में इन्द्र ने आकर उसकी अंगुलियां स्थंभित कर दीं. सिद्धार्थ ने उसपर नाराज होकर लोगों से कहा कि यह अच्छन्दक चोर है, वीरघोषका कांसीका पात्र चुराकर सरघु वृक्षके नीचे गाड़ आया है, और इन्द्रशर्म्मा ब्राह्मणका बकरा मारकर,

उसका मांस खाकर उसके हाड़ घरके पीछे बोरडीके वृक्षके नीचे गाड़े हैं। तीसरा दोष इसकी स्त्री ही जानती है– मैं क्या कहूँ. स्त्री बोली–बहिनका पति है। ऐसा सुनकर अछन्दक बड़ा लज्जित हुआ और एकान्तमें आकर भगवान्से बोला–हे स्वामिन् ! आपके लिये तो बहुत स्थान हैं, परन्तु मैं कहाँ जाऊँगा. भगवान्ने अप्रीति जानकर वहांसे विहार किया। श्रमण भगवान् महावीर स्वामी तेरह महीनों तक देवदुष्य-वस्त्र धारी रहे, उसके बाद वस्त्ररहित हुए, परन्तु भगवान्का यह अतिशय है कि नग्न कभी नहीं दिखाई देते।

अब भगवान्के वस्त्र रहित होनेका सम्बन्ध कहते हैं:– सोमभट्ट नामक एक ब्राह्मण सिद्धार्थ राजाका मित्र था, स्वामीके सम्वत्सरी दान देते समय वह भिक्षाके वास्ते देशान्तरमें गया था। भगवान्के दीक्षा लेनेके बाद वह ब्राह्मण जैसा गया था वैसाही दरिद्री पीछा आया. तब उसकी स्त्री ने उसका बहुत तिरस्कार किया और कहा कि अरे निर्भाग्य ! भैंसा जहाँ जावे वहाँ पानी ही भरता है, कपास जहाँ जावे वहाँ विलोडा जाता है, वैसेही तेरे पीछे दरिद्र पडा है और तेरा पीछा नहीं छोडता. कहाभी है कि एक दरिद्री द्रव्यके लिये विदेश जाते समय दरिद्र को कहने लगा—

रे दारिद्द विअक्खण, वत्ता इक्क सुणिज्ज । हम देसन्तरि चालियां, तु घरि भल्ला हुज्ज ॥ १ ॥

दरिद्रने पीछा उत्तर दिया—

पडिवन्नउ गुरुआं तणउ, पालिज्जइ सुविहाण । तुम्ह देसन्तरि चलियां, हमहीं आगेवाण ॥ २ ॥

इसका तात्पर्य्य यही है कि दरिद्र निर्भाग्य के साथही रहता है. भाग्य हीन जो खेती करे, तो बलद मरे या वर्षा न होवे, भाग्यहीन को भोजनके लिये बुलावे तो नाराज होवे अथवा भोजनमें मक्खी पड़ने से वमन होवे. तू भी वैसाही है । वर्धमान कुमारने जब यहां सोनेकी वृष्टिकी, तब तू परदेश चला गया. अरे, अब भी जा, वर्धमानस्वामी दयालु-दाता हैं, त्यागी हैं तो क्या, तुझे तो कुछ न कुछ देवेंगे ही. जैसे सुखी हुई नदी को खोदने से पानी निकलता है, परन्तु मारवाड़ की नीली भूमि में जल कदापि नहीं मिलता. अन्य कृपणों से मांगने से क्या प्रयोजन है ? भगवान्के पास कुछ मिलेगाही. स्त्रीकी ऐसी प्रेरणासे ब्राह्मण भगवान् के पास आया और अपनी दीनता दिखाकर धन मांगने लगा । स्वामीने कृपाकरके कंधे पर पड़े हुए देवदुष्य वस्त्र में से आधा फाड़कर ब्राह्मणको देकर दान धर्म दिखाया. उस वस्त्र को लेकर ब्राह्मणने अपने नगर में आकर

तूणकारको दिखाया, तव उस तुणारने कहा–यह वस्त्र पूरा होवे तो तूण देवें– इसके १ लाख सोनैये आवेंगे– उनमें से आधे हम लेंगे और आधे तुझे देंगे, इससे आधा वस्त्र और ले आ। यह सुनकर ब्राह्मण विचारने लगा–अभी तो स्वामी से याचना करके आधा वस्त्र लाया हूँ अव फिर माँगूगा तो वड़ा लोभी दिखाई दूंगा, इस प्रकार लज्जासे स्वामीके पीछे २ फिरने लगा और विचार लिया कि जव यह वस्त्र भगवान् के कंधेपरसे उड़कर नीचे पड़ेगा तभी इसे लेकर घर जाऊंगा. एकदा वह आधा देवदूष्यवस्त्र स्वामीके कन्धेपर से वायुसे उड़कर उत्तर–चावाल ग्रामके पास स्वर्णवालू नदी के तटपर वदरी वृक्ष के कांटों में गिर गया, ब्राह्मण जिसे लेकर शीघ्र ही घरको चला। भगवान् ने वस्त्र को कांटों पर पड़ा हुवा देखकर समझ लिया कि मेरे पीछे जो साधु होवेंगे, उनमें वहुतसे तो कलह व उपद्रव करने वाले मुंड होंगे और थोडे श्रमण होवेंगे। उधर ब्राह्मण ने वह वस्त्र तूणार के पास तुणाकर बेचकर उसका आधा मूल्य पचास हज़ार सोनैये पाये और अर्धलक्ष सोनैये तुणारने लिये इस प्रकार भगवान् की कृपासे दोनों का दरिद्र गया। उसके वाद स्वामी वस्त्र रहित हुए परंतु शेष सर्व तीर्थंकर जीवन पर्य्यंत देव दुष्य वस्त्र सहित रहे. श्रीमहावीर स्वामी का प्रथम

पारणा कांशी के पात्र से हुआ, उससे स्वामीने सपात्र धर्म्म दिखलाया ※।

श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी ने बारह वर्ष साढे छः महीनों तक निरन्तर शरीर की शुश्रुषा का त्याग किया, और देवांगनाओं का नाटक देखना, तथा आलिंगनादि अनुकूल और अट्टहासादि भयकारी प्रतिकूल देव-सम्बन्धी, मनुष्य-सम्बन्धी, तिर्यंच-सम्बन्धी सर्व प्रकारके उपसर्गों को निर्भय, क्रोध रहित होकर,

---

※ एक समय प्रभु विहार करते हुए गंगाके किनारे २ जा रहे थे. वहां सूक्ष्म, कोमल रेतमें प्रभुके चरणोंकी छापमें छत्र, ध्वज, अंकुश वगैरह उत्तम २ लक्षण देखकर पुष्पनामक सामुद्रिक शास्त्री विचार करने लगा—यह अकेला कोई चक्रवर्त्ती जाता है- मैं उसकी सेवा करूँ, जिससे मेरे लाभ हो. ऐसा विचार कर वह भगवान् के पीछे २ गया और ऐसे उत्तम लक्षण वाले पुरुषको भिक्षुक अवस्थामें देख कर बोला- अहो! मैंने सामुद्रिक शास्त्रको वृथा ही पढ़ा. ऐसा कहकर शास्त्रको जलमें डालने लगा. उसी समय इन्द्रने आकर, भगवान् को वन्दना करके पुष्प से कहा- यह तेरा शास्त्र सत्य है. भगवान् इन्हीं लक्षणोंसे तीन जगत्के पूजनीय, सुरासुरोंके स्वामी तीर्थंकर हैं- उनका शरीर पसीना, मल और रोगसे मुक्त है, श्वासोश्वास सुगन्धित है और रुधिर-मांस गोदुग्ध जैसा सफेद है इत्यादि गुण कहकर, सामुद्रिक को बहुत सा धन देकर इन्द्र अपने स्थानको गया और सामुद्रिक भी प्रसन्न होता हुआ अपने स्थान गया।

क्षमा और धैर्य पूर्वक, अदीन मनसे सहन करने लगे. अव भगवान् ने उत्तर-चावाल ग्रामके पास कन-कंखल नामक वनमें चंडकौशिक सर्पको प्रतिवोध दिया ❀ जिससे मरकर वह सर्प आठवें देवलोक में गया. वहां

❀ वह सर्प पूर्व-भवमें एक तपस्वी मुनि था. मासक्षमणके पारणे गौचरी जाते समय प्रमाद से उसके पैरके नीचे मेंडकी आगई. वह मेंडकी पहले किसी अन्य के पैरसे मरी या साधुके पैर से मरी इसकी तो कुछ खबर नहीं परंतु पीछे चलने वाले लघु शिष्यने उसे मरी हुई देखा. जब वह साधु स्वस्थान में आया तब छोटे शिष्यने कहा-हे स्वामिन्! मंडूकी की विराधना का मिच्छामि दुक्कडं दें. साधुने उस बात पर ध्यान नहीं दिया. लघु शिष्यने शामको आलोयणा के समय फिर याद दिलाई, परन्तु साधुने नहीं मानी. लघुशिष्य ने संथारे के वक्त जब फिर कहा, तब तपस्वी साधुको क्रोध आगया और छोटे शिष्यको मारनेके लिये दौड़ते हुए उसके मस्तक में स्थम्भकी लगी, जिसकी वेदनासे मरकर वह दूसरे भवमें ज्योतिषिदेव हुआ. वहां से च्यव कर वह तापस हुआ. वहां भी क्रोधसे हाथ में फरसी लेकर अपने वनमें आये हुए राजकुमारोंको भगाने के लिये दौड़ता हुआ पग डिगने से खाड़में गिरपड़ा और फरसी लगने से मरकर चौथे भव में चंडकौशिक सर्प हुआ। वहां पर प्रभुको ध्यानमें खड़ा देखकर उसने गुस्सा लाकर प्रभुको जलाने को सूर्य्य की ओर देखकर प्रभुकी तरफ दृष्टि ज्वाला फेंकी, परंतु भगवान् तो उसी तरह ध्यान में रहे. तब अत्यन्त क्रोधित होकर भगवान्को काटा, परन्तु भगवान्को अव्याकुल और दुग्ध जैसा लोहू निकलता

से विहार कर भगवान् श्वेताम्बिका नगरी गये, जहां पर परदेशी राजा केशीकुमार स्वामीका श्रावक था। उसने भगवान् की भक्ति की। वहांसे सुरभीपुरको जाते हुए भगवान् मार्ग में गंगानदी नावसे उतरने लगे. एकदा भगवान्ने त्रिपृष्ठ वासुदेवके भवमें सिंह मारा था. वह सिंहका जीव, जो उस समय सुदृढ नामक नागकुमारदेव हुआ था, पूर्व-भवके वैरसे भगवान्की नाव डुबोने लगा. तब जिनदास श्रावकके ❀ कंबल संबल

हुआ देखकर सर्पका क्रोध शांत हुआ. प्रभुने कहा- हे चंडकौशिक! कुछ समझ. भगवान्का वचन सुनकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हुआ, अपने पूर्व भव देखे और भगवान्को तीन प्रदक्षिणा देकर बोला- अहो! करुणा-सागर भगवान्ने कृपा करके दुर्गतिसे मेरा उद्धार किया. इस प्रकार विचार कर वैराग्य भावसे अनशन कर, एक पक्ष तक बिलमें अपना मुख रखकर रहा. जब लोगोंने घृतादि से उसकी पूजा की. तब गन्धसे आकर्षित कीड़ियोंने उसे बहुत दुःखित किया, किन्तु प्रभुकी सुधादृष्टिकी वृष्टिसे सींचा हुआ वह समताभावसे मरकर अष्टम देव-लोकमें देव उत्पन्न हुआ।

❀ कंबल-संबलकी उत्पत्ति-मथुरा नगरीमें साधु-दासी श्राविका और जिनदास श्रावक (स्त्री-पुरुष) ने पंचम व्रतमें गाय आदि पशुओं को न रखनेका नियम लिया था. वहाँ पर एक आभीरीके उन्हें उचित मूल्य पर अच्छा

नामक बैलों ने, जो मरकर देव लोकमें गये थे, आकर नाव पार उतार दी। दूसरी चौमासी स्वामी राजगृह नगरमें वणकर शालामें मासक्षमण करते हुए रहे। वहां मंखली पुत्र, गोशाला, भिक्षा मांगता हुआ आकर, भगवान् के पारणे की महिमा देखकर, 'मैं भी आपका शिष्य होता हूं', ऐसा कह कर माथा मुंडाकर भगवान् के

दुग्ध देनेसे उनमें प्रीति होगई. एकदा आभीरीने विवाह पर सेठ-सेठाणी को निमंत्रण दिया. वे तो आ नहीं सके, परन्तु चंदवादि बहुतसी वस्तुएं देकर उनके विवाहकी शोभा बढ़ा दी. इससे वे खुशी होकर, समान उम्रवाले दो सुन्दर बछड़े, सेठकी इच्छा न होने पर भी, उनके घरमें बांधकर चले गये. सेठने विचार किया-यदि वापिस देता हूँ तो बोझ उठाने आदिसे ये दुःखित होंगे. ऐसा विचार कर वह अचित्त घास-जलसे उनका पालन करने लगा. जिनदास अष्टम्यादि पर्व में पौषध करके पुस्तक बांचता था, जिन्हें सुनकर बैल भी धर्मी हो गये. जिस दिन श्रावक उपवास करता, उसी दिन बैलभी घास आदि कुछभी नहीं खाते. एकदा जिनदासका मित्र, बिना पूछेही, सुन्दर व बलिष्ठ देखकर, उन बैलोंको यक्षकी यात्रामें ले गया और रास्तेमें इतने भगाये कि उनकी नसें टूट गईं और शामको वापिस लाकर, बांध कर वह चला गया. सेठने उनका मरना समीप जानकर, नवकार आदि धर्म-ध्यान सुनाया और अनशन कराया। वे बैल शुभ-ध्यानसे मरकर नागकुमार देव हुए, ज्ञानसे भगवान्का उपसर्ग जानकर, आकर, दुष्ट देवको भगाकर, नाव पार उतार कर, भगवान् की भक्ति करके देव-लोकको वापिस चले गये।

साथ होगया. एकदा स्वामी स्वर्णखलग्राम को जाते थे. मार्ग में गोवालियों को खीर पकाते देखकर गोशाला बोला—खीर खाकर आगे चलेंगे. सिद्धार्थ बोला— हांडी फूटेगी. यद्यपि गोवालियों ने बहुत रक्षा की, तथापि हांडी फूटही गई । यह देखकर "यद्भाव्यं तद्भवत्येव" ऐसा मत गोशालाने अंगीकार किया । उसके बाद भगवान् ब्राह्मणग्रामको गये, जहां पर नंद और उपनंद नामक दो मोहल्ले थे—नंदने भगवान्को उत्तम आहारसे पडिलाभे, उपनन्दने गोशाले को वासी अन्न दिया, तब नाराज होकर गोशालाने श्राप देकर उसका घर जला दिया. तीसरी चौमासी स्वामी चम्पामें रहे । वहां से कालाय सन्निवेश गये, शून्य गृहमें काउसग्ग ध्यानमें रहे, जहाँ पर सिंह नामक ग्रामणी पुत्रको गोमती दासीके साथ रमण करते हुए देखकर गोशाला हँसा. उसने गोशालाको पीटा, तब गोशालाने भगवान्से कहा— मुझको बचाओ. सिद्धार्थ बोला—आगेसे ऐसा काम नहीं करना. एकदा स्वामी कुमार सन्निवेश गये, जहाँ पर श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के शिष्य मुनिचन्द्रनामक आचार्य्य थे. उनके शिष्योंको देखकर गोशाला बोला—तुम कौन हो ? साधु बोले—हम निर्ग्रन्थ हैं. गोशाला बोला—कहां तुम और कहां मेरा धर्म्माचार्य्य, मेरु-सरषोंका अंतर है. साधु बोले—जैसा तू है, वैसाही तेरा धर्माचार्य होगा.

तब गोशालाने नाराज होकर साधुओंको शाप दिया कि तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जाय. परन्तु उपाश्रय जला नहीं, तब उसने स्वामीसे कहा—आजकलतो तपका प्रभाव कम होगयाहै. सिद्धार्थ बोला—तेरे कहनेसे साधु नहीं जलेंगे. रात्रिमें जिनकल्पीकी तुलना करते हुए काउसग्गमें रहे हुए मुनिचन्द्राचार्यको मदोन्मत्त कुम्हारने मारा. वे स्वर्ग गये. उनकी महिमाके वास्ते देव आये. उद्योत हुआ देखकर गोशाला बोला—अब देखो, उनका उपाश्रय जलता है. सिद्धार्थने यथावत् कहा, प्रातःकाल गोशाला वहां जाकर, देखकर मुंह उतार कर पिछा आया. तत्पश्चात् स्वामी चौराग्राम गये. वहां लोगोंने हेरक समझकर, पकडकर पहले गोशाले को फिर भगवान्को कुएमें डाल दिया. उस समय श्रीपार्श्वनाथ स्वामी की शिष्या सोमा और जयन्तिने, जिन्होंने साधुपना छोड दिया था, भगवान् को और गोशालाकों छुडाया. चौथा चौमासा पृष्ठ चंपा रहे. वहां जीर्ण सेठ प्रतिदिन पारणेकी विनति करता था तोभी भगवान्ने पूर्ण सेठके यहां पारणा किया. वहांसे कयंगल गये, जहांपर माघ महीनेमें वृद्ध दरिद्री स्त्री को जागरण में गाती हुई देखकर गोशाला हँसा. लोगों ने उसे मारा, परन्तु अधिक न मारकर, आर्य शिष्य जानकर छोड दिया। वहांसे भगवान् सावत्थी गये, जहांपर पितृदत्त सेठकी

स्त्री, निन्दुरोगवाली भद्रा सेठानी के मरे हुए पुत्र उत्पन्न होते थे. उसने शिवदत्त नैमित्तियेके वचनसे,अपने पुत्रको जीवित करने के लिये, गर्भ मांस मिश्रित खीर गोशाला को दी. सिद्धार्थ के वचनसे गोशालाने वमन कर, यह बात जानकर, नाराज होकर, तपके प्रभावसे मोहल्ले सहित उसके घरको जला डाला। एकदा स्वामी बहुत निर्जरा के वास्ते लाडदेशमें गये. बीचमें दो चौर मिले और स्वामीको मारने के लिये खड्ग लेकर दौड़े, तब प्राणान्त उपसर्ग जानकर इन्द्रने निवारण किया. उसके बाद स्वामी भद्रिका नगरी गये, और पंचमी चौमासी वहींपर रहे. एकदा कूपसान्निवेश गये, हेरु समझ कर गांव वालोंने पकड लिये, तब विजय नामक पार्श्वनाथ स्वामी की शिष्याने छुड़ाये. इसके बाद गोशाला स्वामीसे अलग होगया और जहां भी गया, वहीं पर मार खाई. तब उसने विचार किया कि स्वामीके साथमें रहनाही ठीकहे. इस प्रकार विचार करके भगवान् की तलाश करने लगा. स्वामी विशाला गये, जहां लौहारकी शालामें रहे. बहुत दिनों के पश्चात् लौहार आया, स्वामीको देखकर, 'यह मुंड अमंगल है,' ऐसा कहकर लोहे के घनसे जब भगवान्को मारने दौड़ा, तब इन्द्रने आकर उसको मारा। छः महीनों के पश्चात् गोशाला मिला. स्वामी छठी चौमासी भद्रिकामें रहे और

उस समय आठ महीनों तक कोई उपसर्ग नहीं हुआ. भगवान् सातवीं चौमासी आलंभिका नगरीमें देवकुलमें रहे। गोशाला बलदेवकी मूर्त्तिकी कुचेष्टा करने लगा. लोगोंने खूब मारा. एक समय वहांपर लम्बे दांतवाले स्त्री-पुरुषको देखकर गोशाला हँसकर बोला— अहो ! दैवने प्रसन्न होकर कैसा इनका संयोग मिलाया है। इसपर उन्होंने गोशालाको पीटा. एकदा स्वामी बहुशाल ग्रामके शालवान–उद्यानमें माघ-महीने में काउ-सग्गमें रहे. वहां त्रिपृष्ठ वासुदेवके भवमें अपमानिता स्त्री ने, जो अभी कटपूतना व्यतरी हुई थी, तापसीका रूप करके दुस्सह शीतोपसर्ग किया, तथापि भगवान्को ध्यानमें निश्चल देखकर, उपशांत होकर, स्तुति करके चली गई. इस उपसर्गमें भगवान्को विशुद्ध लोकावधि उत्पन्न हुआ, और देवों ने आकर महोस्सव किया. उसके बाद स्वामी पुरिमतालनगर गये, उद्यान और नगरके बीचमें काउसग्गमें रहे. उस नगरमें वग्गुरसेठ और उसकी सुभद्रा स्त्री दोनों ने पुत्रके लिये श्रीमल्लीनाथ स्वामीका मन्दिर बनाने की मान्यता की थी. जब उनके पुत्र हुआ, तब उन्होंने नवीन मन्दिर बनवाया, जिसमें सेठ नित्य पूजा करता था. एकदा वह जब पूजाके लिये जा रहाथा, तब इन्द्र भगवान्की महीमा के वास्ते सेठसे बोला– श्रेष्ठिन् ! जिनकी तू पूजा करता है, उनको मैं तुझे

प्रत्यक्ष दिखादूँ। ऐसा कहकर उसने भगवान् के चरणों में नमस्कार कराया. सेठने भी शुद्ध भावसे भगवान् को वन्दना करने के बाद मल्लीनाथ स्वामीकी प्रतिमा पूजी. इसके बाद स्वामी राजगृहमें आठवीं चौमासी रहे और अनार्य देशमें नवमी चौमासी की, जहाँपर बहुतसे उपसर्ग हुए. इसके बाद सिद्धार्थपुरसे स्वामी कूर्म-ग्राम को चले. मार्गमें एक तिल ऊगा हुआ देखकर, गोशालाने स्वामीसे पूछा— क्या इसमें तिल निष्पन्न होंगे? स्वामीने कहा—इन्हीं सात पुष्पोंके जीव एक फलीमें इकट्ठे सात तिल होंगे। स्वामीका वचन अन्यथा करने के लिये गोशालाने उसके मूलसे तिलको उखाड़ दिया, तोभी वर्षा होनेसे, गायके खुरसे उसकी जड़ पृथ्वी में घुसगई और तिल उत्पन्न हुआ. भगवान् उसी रास्तेसे वापिस आये. गोशालाने तिलका स्वरूप पूछा. स्वामी ने उसे बताया और उसका स्वरूप कहा, तब 'होनहार होवे सो होवेही है' ऐसा गोशाले का मत हुआ।

राजगृह—चंपानगरी के बीचमें गुबरग्राममें कौशाम्बि नामका कौटुम्बी था. उसके ग्रामके पासका ग्राम कटकने भागा. वहांके निवासी भागे, जिनमें पुत्र सहित एक स्त्री भी भागी. उसको चौरों ने पकड़ा. जंगलमें रोते हुए बालकको कौशांबि कौटुम्बीने लिया। उसके पुत्र नहीं था, इस बालकको पुत्र मानकर बड़ा किया.

अनुक्रमसे वह बालक युवा हुआ. उसकी माताको चौरोंने पकड़ कर चंपा नगरी में वेश्याको बेच दिया. वह भी वेश्या हुई. कर्म-योगसे वह कौटुम्बी पुत्र व्यापारके वास्ते चंपा नगरी आया और अज्ञानतासे अपनी माता वेश्याके संग आसक्त हुआ, परन्तु गोत्र देवी ने गाय और वच्छडा का मैथुन दिखा कर देववाणी से उसे प्रतिबोधा, तब सर्व त्याग करके वह कौटुम्बी पुत्र वैश्याय ऋषि नामक तापस हुआ. और कुर्म ग्राममें आतापना करता हुआ वह मुंह नीचा करके अग्निमें झंपाता हुआ धूम्रपान करने लगा. अपनी जटासे जो जुवां नीचे पड़ने लगतीं उन्हें वारम्बार वापिस जटामें रखते हुए उसऋषिसे गोशाला बोला—यह तो जुंओंका घर है. ऐसा कहकर वह हँसा, जब उस तपस्वीने नाराज होकर गोशालाको जलाने के लिये तेजोलेश्या फैंकी, तब स्वामीने शीतल लेश्या डाल कर गोशाल को बचाया. गोशालेने तेजोलेश्या का सिद्धार्थसे साधन पूछा तब सिद्धार्थ ने उसका साधन बताया. दशमी चौमासी स्वामी सावत्थी रहे। वहांपर गोशालेने एक मुट्ठी उर्दका बाकुल खाकर ऊपरसे तीन चुल्लु पानी पीकर, सूर्य्य के सन्मुख छः महीनों तक आतापना करके तेजोलेश्या सिद्ध की, बादमें अष्टांग निमित्त सीखा, जिन नहीं तब भी मैं जिन हूँ, ऐसा लोगोंसे कहता हुआ अलग फिरने लगा।

एकदा स्वामी म्लेच्छ देशमें गये, जहां उन्हों ने कुत्तों के बहुतसे उपसर्ग सहे। बादमें स्वामी दृढभूमिका में पेढाल ग्रामके उद्यानमें पोलास नामक देव-मन्दिरमें एक रात्रि की प्रतिमा में रहे। उस समय इन्द्रने स्वामीके धैर्यकी प्रशंसा की, जिसे सुनकर संगम नामक इन्द्रका सामानिक देव इन्द्रके वचनको नहीं मानता हुआ, स्वामीको चलाने को आया और एक रात्रिमें बीस उपसर्ग किये– धूलिकी वर्षा की १, वज्रमुखी कीड़ियोंसे शरीर को चूँटा २, वज्रमुखी डांससे शरीरको खाया ३, घीमेलोंसे शरीरको काटा ४, बिच्छुओंने डंक मारे ५, सर्पों ने डसा ६, नौलियों ने नख मुखों से विदारण किया ७, चूहों ने काटा ८, हाथी व हथनी ने आकर सूंड़से पकड़कर आकाशमें फेंक दिया ९, दांत–पैरों से मर्दन किया १०, पिशाचका रूप करके डराया ११, व्याघ्रने फाल भरकर डराया १२, माता बनकर कहा– पुत्र ! किस वास्ते दुःखी होताहै ? मेरे साथ चल, सुखी करूँगी १३, कानोंमें तीक्ष्ण मुखवाले पक्षियों के पिंजरे बांधे जिन्होंने भगवान् को काट २ कर दुःखित किया १४, दुष्ट चांडालने आकर दुर्वचनों से तर्जना की १५, दोनों पैरों के ऊपर हांडी रखकर बीचमें अग्नि जलाकर खीर पकाई १६, कठोर वायुका विकुर्वण करके दुःख दिया १७, गोल वायुसे शरीरको चक्रवत् घुमाया,

और ऊंचा उठा २ कर पृथ्वी पर गिराया १८, हजार भार प्रमाण वाला लोहे का गोला भगवान् के मस्तकपर गिराया, जिससे भगवान् कमर तक पृथ्वी में धँस गये परन्तु तीर्थंकरका शरीर होने से कुछ भी नहीं हुआ, औरका शरीर होता तो चूर्ण २ हो जाता १९, रात्रि रहते भी प्रभात बना दिया. उस समय कोई आकर कहने लगा—हे आर्य्य! प्रभात हुआ है, विहार करो, अब क्यों ठहरे हो? परन्तु स्वामी ने अवधि-ज्ञानसे रात्रि जान ली. उसके बाद देव अपनी ऋद्धि दिखाकर स्वामी से कहने लगा— आर्य्य! वर मांगो— स्वर्ग चाहिये तो स्वर्ग दूँ अथवा देवांगना दूँ। ऐसा सुनकर के भी भगवान् चलायमान नहीं हुए २०. इन वीसों उपसर्गों को एकही रात्रिमें करनेके बाद उस देवने ग्राम २ में आहार अशुद्ध किया, स्वामीपर चौरीका कलंक लगाया, और कुशिष्यका रूप करके घर घरमें भेद देखता और लोगोंके पूछने पर कहता—— मेरा गुरु रात्रिको चौरीके वास्ते आवेगा—— इससे मैं छिद्र देखता हूँ. इसपर जब लोग भगवान्को ताडन करने लगे, तब भगवान्ने अभिग्रह लिया— जब तक उपसर्ग निवृत्त नहीं होगा, तबतक आहार नहीं लूंगा। संगमदेवने छः महीनों तक इस प्रकार उपसर्ग किये परन्तु इन्द्रने उसे मना नहीं किया. इन्द्रने विचार किया कि यदि मैं मना करूंगा तो यह कहेगा

कि भगवान्को तो मैं चला देता परन्तु तुमने ही तो मना किया। इस प्रकार जबतक संगमने स्वामीको उपसर्ग किये, तब तक इन्द्र निरानन्द, निरुत्साह रहा और देव—देवांगनाएँ भी शोक सहित रहे। छः महीनों के अन्तमें जब वह देव थककर स्वर्ग गया और इन्द्रने उसे स्वर्गसे निकाल दिया, तव वह अपनी देवांगनाओंको लेकर मेरुचूला पर जाकर रहा। इस तरह दशवें वर्ष में बहुतसे उपसर्ग हुए, परन्तु वे सब भगवान्ने सहे। जब भगवान्ने छः मासीका पारणा वज्रग्राममें गोवालके घरमें खीरसे किया, तव देवोंने उसकी महिमा की और इन्द्रादि देवोंने आकर भगवान्से सुखशाता पूछी। ग्यारहवीं चौमासी स्वामी विशालामें रहे। उसके बाद सुसुमारपुरमें चमरेन्द्रका उत्पात हुआ।

एकदा कौशाम्बी नगरी में पौष वदी एकमके दिन स्वामीने ऐसा अभिग्रह ग्रहण किया—बन्दीखानेमें डाली हुई, पैरोंमें बेडी पडी हुई, मस्तक में मुंडी हुई, तीन दिन की भूखी होने से दुर्बल शरीर वाली, रोती हुई और अश्रुपात करती हुई, पैरों के बीचमें देहली करके खडी हुई, ऐसी राजकुमारी जब दो प्रहरके बाद उर्द के बाकुले दे, तब पारणा करूं। इस प्रकार अभिग्रह लेने के चार महीने बाद कौशाम्बी नगरी के राजा, शता-

नीकने चम्पानगरी तोड़ी. दधिवाहन राजा भागा. धारणी रानी को चन्दन वाला पुत्री सहित किसी सिपाहीने पकड लिया. रानी तो अपने शील-खंडनके भयसे जिह्वा काटकर मर गई परन्तु चन्दना धन सेठको बेच दी. सेठने चंदना को पुत्री करके रक्खा. सेठके मूला नामकी स्त्री थी. उसने चन्दना को देखकर विचार किया— मैं तो बुड्ढी होगई हूँ, अब सेठ इसको सेठाणी बना लेगा. एकदा सेठ किसी कार्य्यको बाहर गया था. पीछे से मूला चन्दनाको पकडकर, मस्तक मूंडकर, पैरों में बेडी डालकर, एक कोठे में बन्द कर, दरवाजे के ताला लगाकर अपने पिताके घर चली गई। चौथे दिन सेठने आकर चंदनाको ढूंढकर कोठेसे निकाला और मस्तक में मुंडी हुई, और पैरों में लोहेकी सांकल सहित उसे देखकर कहा कि हे पुत्री ! जब तक मैं लोहारको बुला कर तेरे पैरोंकी बेड़ी कटवाऊँ, तब तक तू मुँह धोकर सूपके कौनेमें रहे हुए उर्दके ये बाकुले खा. ऐसा कहकर सेठ गया. पीछे चन्दनाने विचार किया— आज मेरे अष्टमका पारणा है, यदि कोई साधु आवे तो कुछ देकर पारणा करूं. ऐसे विचारती हुई चन्दना के आगे तीसरे प्रहरमें भिक्षाके वास्ते स्वामी आये. सर्व अभिग्रह पूर्ण हुए, परन्तु चन्दनाके अश्रुपात न देखकर भगवान्ने आहार नहीं लिया और जब स्वामी बिना

आहारके लिये ही निकले, तब चन्दना रोती हुई कहने लगी– अहो ! मैं अभागिनी हूँ जो स्वामीने भी आज मेरे हाथसे उर्दके बाकुले नहीं लिये. चंदनाका ऐसा रोना सुनकर, और आंखों में आंसु देखकर भगवान्ने पीछे लौटकर उर्दके बाकुले ग्रहण किये. तब देवों ने पांच दिव्य प्रगट किये—साढ़े बारह करोड़ सौनैयों की वर्षा की, और चंदन बालाके मस्तकमें नवीन वेणी रची. लोहेकी सांकल ही सौनेके नेवर हुए. स्वामीके आहार लेकर चले जाने के बाद सेठ आया. मालूम होनेपर राजाभी आया और जब धन लेने लगा, तब इन्द्रने आकर सबके समक्ष कहा– जब स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न होगा, तब यह धन चन्दनाके दीक्षा-महोत्सवमें खर्च किया जावेगा. राजा चन्दनाको अन्तःपुरमें ले आया. रानीने भी चन्दनाको बहिनकी पुत्री पहिचान कर रक्खा. इस प्रकार भगवान्का पांच दिन कम छः मासका पारणा चन्दनाने कराया।

बारहवीं चौमासी स्वामीने चम्पामें की और पारणा करके षाण्मासिक ग्रामके बाहर काउसग्गमें रहे. भगवान्ने त्रिपृष्टके भवमें शय्यापालकके कानोंमें कथीर गिरवाया था. वह शय्यापालक कितनेही भव करके अभी गोवालिया हुआ. उसने भगवान्के कानोंमें कांसवृक्षकी शलाका डालकर ऊपरसे काटकर गुप्त कर दी. भगवान्

विहार करते हुए अपापा नगरीमें सिद्धार्थ बनियेके घरमें आहारके लिये आये हुए स्वामीके कानोंमें खरक वैद्यने कांसकी शलाका देखी. भगवान् बाहिर काउसग्गमें रहे, तब वैद्यने कीलों को संडासीसे पकडकर, वृक्षकी शाखा को नमाकर बांधा, और एकही वक्तमें शाखा छोडी. इस रीतिसे जब स्वामी के कानोंकी शलाका निकाली, तब भगवान्‌ने बहुत वेदना होनेसे पुकार किया. भगवान्‌ने मनसे वेदना सही, परन्तु काय-व्यापार से पुकार होगई. संरोहिणी औषधि से कानोंकी परिचरिया की गई. गोवालिया मरकर सातवीं नरकमें गया और खरक वैद्य पांचवें देव—लोकमें गया। अब सर्व उपसर्गों में जघन्य, मध्यम, उत्कृष्ट का भेद बतलाते हैं— जघन्य उपसर्गों में कटपूतना व्यन्तरी द्वारा किया हुवा शीतोपसर्ग हुआ। मध्यम उपसर्गों में संगम देवने हजार भारका लोहे का गोला डाला। उत्कृष्ट उपसर्गों में कानोंकी कीलें निकाली गई।

अब बारह वर्ष किस रीति से बीते? दीक्षा लेनेके बाद श्रमण भगवान् महावीर स्वामी अनागार हुए. इरिया समिति १, भाषा समिति २, ऐषणा समिति ३, आदान भंड मत्त निक्षेपणा समिति ४, उच्चार प्रश्रवण खेल्ल जल्ल संघाण पारिट्ठापनिका समिति ५ सहित हुए, जिसमें भी तीन समितियां तो निश्चय ही होती हैं

परन्तु तीर्थंकरके पात्रादि न होनेसे चौथी समिति नहीं होती और तीर्थंकरकी आहार–निहार–विधि अदृश्य होती है इसलिये पांचवीं पारिट्ठावणिया समिति की भी जरूरत नहीं होती, तथापि पांच समितियोंका कथन बहुत अपेक्षा से किया गया है. पुनः–भगवान् मन–वचन–कायाकी तीन गुप्तियों से गुप्त हैं, पाठान्तरमें मन-वचन-कायासे सम्यक् प्रकार से प्रवर्तन रूप तीन समिति युक्त हैं, पांच इन्द्रियोंके तेवीस विषयों का निवारण करके गुप्तेन्द्रिय हैं, नौ वाड सहित ब्रह्मचर्यके पालने वाले हैं, और क्रोध, मान, माया, लोभ रहित अतिशय–उपशान्त हैं, भगवान्‌के पास आने से दूसरों के भी क्रोधादि उपशान्त होते हैं. पंच आश्रवों के रोकने से भगवान् निराश्रव, ममत्वरहित, बाह्य–अभ्यन्तर परिग्रह रहित और निर्लेप हैं. कांसीके पात्रमें जैसे–जल नहीं लगता, उसी प्रकार भगवान्‌को मोह नहीं लगता. जैसे–शंखमें रंग नहीं लगता, वैसे ही भगवान्‌को भी किसी पर राग नहीं लगता और स्वामीका किसीपर द्वेषभी नहीं है. जैसे–जीवकी गति कोई नहीं रोक सकता, उसी प्रकार भगवान्‌का विहार भी कोई नहीं रोक सकता. जैसे–आकाश निराधार है, वैसेही भगवान् भी किसी के आधारकी इच्छा नहीं करते. जैसे–वायु कहींभी स्खलित नहीं होती, वैसेही भगवान्‌भी अप्रतिबद्ध विहारी

तथा शरद् ऋतुके जलके तुल्य निर्मल हृदय वाले हैं. जैसे—कमल कीचड़में उत्पन्न होकर जलसे बढ़ता है, और दोनोंसे निर्लिप्त होकर ऊपर अधर रहता है, वैसेही स्वामीभी संसाररूपी कीचड़में उत्पन्न हुए, भोगरूपी जलसे बढ़े और अनुक्रमसे दोनोंसे पृथक् रहे हैं. भगवान् परिषह—उपसर्ग सहनेमें सिंहके जैसे शूर, समुद्र के जैसे गंभीर, चन्द्रके जैसे सौम्य, कच्छप जैसे गुप्तेन्द्रिय, गैंडे के सींग जैसे एकाकी, भारंड पक्षी के जैसे अप्रमादी, हाथीके जैसे पराक्रमी, वृषभ जैसे संयम-भारके निर्वाह करने वाले, मेरु जैसे अप्रकंप, सूर्य जैसे तेजस्वी और पृथ्वी जैसे सर्व सहन करने वाले हैं। द्रव्य—क्षेत्र—काल—भावसे चार प्रकारके प्रतिबंध होते हैं, परन्तु भगवान्के किसी प्रकारकाभी प्रतिबंध नहीं है— द्रव्यसे—सचित्त, अचित्त, मिश्रवस्तुओं में १, क्षेत्रसे—ग्राम, नगर, उद्यान वगैरह किसीभी स्थानमें २, कालसे—समय, मुहूर्त्त, प्रहर, दिवस वगैरह कालमें ३, और भावसे—अठारह पापस्थानों में ४, कहींभी भगवान्की प्रवृत्ति नहीं है और ग्राममें एकदिन, नगरमें पांचदिन और वर्षाकाल में चारमहीने ठहरने के सिवाय आठमहीने तक हमेशा विहार करते रहे. जैसे—कुठारसे चन्दनवृक्षको काटने परभी चन्दन कुठार के मुखमें सुगन्धी देता है, उसी प्रकार भगवान् दुःखदायक परभी उपकार

करते थे। फरसीसे भगवान्के शरीरको काटने वाले तथा चन्दनसे पूजा करने वाले दोनोंपर भगवान् समभाव रखते. मणि, स्वर्ण, पाषाण और सुख-दुःख को समान मानते थे, इस लोक, परलोक तथा जीवन–मरण के ऊपर समभाव रखते और कर्म–शत्रुको जीतनेमें सावधान रहते थे. इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट चार ज्ञान, क्षायिक सम्यक्त्व और यथा-ख्यात-चारित्रादिसे विराजमान् भगवान् बारह वर्ष छःमहीने पन्द्रह दिन तक छद्मस्थ विचरे.

अब भगवान् का तप वर्णन करते हैं– छः मासी एक, पारणा एक. संगम उपसर्ग में पांच दिन कम छः मासी एक, पारणा एक. चौमासी नौ, पारणे नौ. तीन मासी दो, पारणे दो. अढाई मासी दो, पारणे दो. दोमासी छः, पारणे छ. डेढमासी दो, पारणे दो. एक मासी १२, पारणे १२. अर्धमासी ७२, पारणे ७२. छट्ठ २२९, पारणे २२९. भद्रप्रतिमा दो दिनकी, महाभद्र प्रतिमा चार दिनकी, सर्वतो भद्र प्रतिमा दस दिनकी, ये तीनों प्रतिमाएँ लगातार वहन की जिनके १६ उपवास, पारणे तीन और बारह अट्ठम, बारह पारणे हुए. इस तरह से ग्यारह वर्ष, छः महीने, पच्चीस दिनका भगवान्का तप हुआ. दीक्षाके तपके पहिले पारणे सहित ३५० पारणे हुए और सर्व मिलाने से बारह वर्ष, छः महीने, पन्द्रह दिनका सर्व छद्मस्थ काल हुआ. उसमें भगवान्को सिर्फ

एक मुहूर्त्त तक खड़े २ प्रमाद हुआ, उसमें भी स्वामीने दशस्वप्न देखे थे.

अब भगवान्के केवल ज्ञान उत्पन्न होनेका अधिकार कहते हैं:— स्वामीको तेरहवें वर्षमें, उष्ण कालके दूसरे महीने में, चौथे पक्षमें, वैशाख सुदी १० के दिन, पिछले प्रहरमें, सुव्रत नामक दिनमें, विजय नामक मुहूर्त्तमें, ऋजुवालिका नदीके तटपर, व्यावर्त्तक नामक जीर्ण उद्यानमें, विजयावर्त्त व्यन्तर के चैत्यसे न बहुत दूर, न बहुत नजदीक ऐसे श्यामाक कौटुम्बी के क्षेत्रमें शाली वृक्षके नीचे गोदोहिकासन से आतापना करते हुए बेलेकी तपस्यामें उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेपर, शुक्ल ध्यान ध्याते हुए श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीको अनन्त अर्थका बतलाने वाला, सर्व ज्ञानों से अधिक, भींत वगैरह व्याघातों से रहित, आवरण रहित, क्षायिक, अप्रतिपाति, सर्व द्रव्य पर्यायका ग्राहक होनेसे पूर्णमासी चन्द्रके जैसा सम्पूर्ण, सहाय रहित ऐसा केवल ज्ञान और केवल—दर्शन उत्पन्न हुआ। अर्हन् हुए, आठ महा प्रातिहार्य सहित अथवा राग-द्वेष रूपी शत्रुका नाश करने वाले केवली, केवल ज्ञानी, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी हुए. श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी देव-मनुष्य-असुर सहित सर्वजीवोंके पर्याय, उत्पत्ति, स्थिति, गति, आगति, च्यवन, उत्पात, तर्क, मनके शुभा-

शुभ विचार, आहार-चौरी-मैथुन प्रकट या गुप्तसे भी गुप्त बात हो, इन सबको जानने और देखने वाले हुए. तब देवोंने समवसरण किया. स्वामीने, लाभका अभाव जानते हुए भी आचारके वास्ते क्षणमात्र देशना दी, परन्तु किसीने प्रतिबोध नहीं पाया. पहिली देशना निष्फल गई। उसके बाद संघ सहित, देवोंके रचे सोनेके कमलों पर चलते हुए स्वामी रात्रिमें बारह योजन पर मध्यपापापुरीके पास आये। देवों ने समवसरण रचा और स्वामी पूर्व-द्वारसे प्रवेश करके अशोक वृक्षकी तीन प्रदक्षिणा कर "नमो तित्थस्स" कहकर पूर्व दिशाके सन्मुख सिंहासन पर विराजमान् हुए, तब तीन दिशाओं में सिंहासनोंपर व्यन्तर देवों ने भगवान्के समान भगवान्की ३ प्रतिमा रक्खी. उस समय भगवान्के अतिशयसे भगवान् चौमुख दीखने लगे और चार प्रकारका धर्मोपदेश देने लगे. उस समय उस नगरमें सोमिल ब्राह्मणने यज्ञ करने के लिये इन्द्रभूति १, अग्निभूति २, वायुभूति ३, व्यक्त ४, सुधर्मा ५, मंडित ६, मौरियपुत्र ७, अकम्पित ८, अचलभ्राता ९, मैतार्य १०, प्रभास ११, इन ग्यारह उपाध्याओं को बुलाया, उनके अलग २ संदेह हैं- जीव है, या नहीं १, कर्म है या नहीं २, जीव शरीर एकही है अथवा पृथक् पृथक् ३, पांचभूत हैं या नहीं ४, जो इस भवमें जैसा होताहै, वैसाही वह

पर भवमें होता है ५, जीवके बन्ध-मोक्ष नहीं है ६, देव हैं अथवा नहीं ७, नारकी हैं अथवा नहीं ८, पुण्य व पाप है अथवा नहीं ९, परलोक नहीं है १०, और मोक्ष है या नहीं ११. अब उन पंडितोंका परिवार कहते हैं– पहिले पांचों के प्रत्येकके पांच २ सौ विद्यार्थियोंका परिवार है, छठे और सातवें के साढ़े तीन २ सौ शिष्योंका परिवार है, आगेके चारों के प्रत्येकके तीन २ सौ विद्यार्थियोंका परिवार है. कुल मिलाकर चवांलीस सौ (४४००) हुए। वहांपर पृथक् २ जातिके औरभी बहुतसे ब्राह्मण आये थे और स्वर्गकी वांछासे यज्ञ करते थे। उस वक्त प्रभात समयमें नगरी के बाहर समवसरण ब्राह्मणों ने और नगरी के लोगोंने देखा. पहिला चांदीका गढ और सौनेके कांगरे, दूसरा सौनेका गढ और रत्नोंके कांगरे, तीसरा रत्नोंका गढ और मणियों के कांगरे, ऊपर अशोक वृक्षकी छाया, समवसरणके आगे हजार योजनका इन्द्रध्वज इत्यादि ऋद्धि और चार प्रकारके देवोंका आना जाना, देवांगनाओंका गीत-गान इत्यादि प्रभाव देखकर ब्राह्मणों ने जाना– अहो ! यज्ञका प्रभाव सत्य है साक्षात् देव यहां आते हैं। ऐसा विचारते हुए ब्राह्मणों के यज्ञ–वाडाको छोडकर सब देव नगरके बाहर स्वामी के समवसरणमें गये और ऐसा बोलने लगे–सर्वज्ञ वन्दनको शीघ्र चलो, सर्वज्ञ वन्दनको शीघ्र चलो। इन्द्र-

भूति, देवों के मुखसे ऐसी वाणी सुनकर मनमें क्रोध लाकर विचार करने लगा जगत् में, सर्वज्ञ तो मैं ही हूँ, मेरे सिवाय सर्वज्ञ और कौनहै ? लोगतो सर्वदा मूर्खही होते हैं, परन्तु देवभी भूल जाते हैं, जो मुझ सर्वज्ञ को नमस्कार करना छोड़कर वे अन्यत्र फिरते हैं अथवा– यह कोई इन्द्रजालिया होगा, जो इन्द्रजाल विद्या से सर्व देवों और लोगोंको मोहित करता है परन्तु इसके वृथा अभिमानको मैं उतारूंगा. इसका गर्व उतारनेमें मेरे सिवाय और कोईभी समर्थ नहीं है । ऐसा विचार कर इन्द्रभूति समोवसरणकी ओर बडे आडंबरसे चला, उसके साथ पांच सौ विद्यार्थी भी अपने गुरुकी विरुदावली बोलते हुए चले और छात्रों के मुख से सरस्वती कण्ठाभरण, वादिविजय लक्ष्मीशरण इत्यादि विरुद सुनता हुआ इन्द्रभूति समोवसरणके पास गया और भगवान् की वाणी सुनकर विचार करने लगा— क्या समुद्र गर्जता है ? अथवा–गंगाका प्रवाह बोलता है, या ब्रह्मा वेद–ध्वनि करता है। इस प्रकार विचार करते हुए इन्द्रभूति ने जब समोवसरण की पहिली सीढीपर पैर दिया, तब स्वामी को देखकर विचार करने लगा– पांच वर्ण वाले, सौने, चांदी और रत्नों के तीन गढों से विराजमान्, तीन छत्रों से शोभित, सिंहासन पर बैठा हुआ, देवेन्द्रों से स्तूयमान,

देवांगनायें जिसका गुण गावें ऐसा कोई भी वादी आज तक तो मैंने कभी नहीं देखा. तो क्या यह ब्रह्मा है, या विष्णु है या महादेव है या सूर्य है अथवा गणपति है ? इस प्रकार विचार करता हुआ निर्मल स्वभावी, वीतराग भगवान्का सर्वोत्कृष्ट रूप देखकर फिर विचार करने लगा— यह नवीन देव है, देवाधिदेव सर्वज्ञ होगा. इसके साथ वाद करने को मैं यहां आया सो अच्छा नहीं किया, इतने दिन तक जो यश उपार्जन किया सो जावेगा, मैं जानता हुआभी आज अज्ञानी होगया, अब जो यहां आकर और इसे देखकर वापिस जाता हूँ, तो लोकमें मेरी निंदा होगी, आगे वादका व्यवहार भी दुष्कर है, तो 'इतो व्याघ्र इतस्तटीः' यह न्याय यहां आया। कोई कीली के वास्ते मकान खोदे, कोई ठीकरी के वास्ते कामघट को फोड़े, ऐसी बात मैंने की. ऐसा विचारता हुआ इन्द्रभूति साहस करके जब सीढ़ियों पर चढ़ने लगा, तब स्वामीने ऐसे संशय करते हुए इन्द्रभूति को देखकर कहा—भो इन्द्रभूति ! कुशल है. इस प्रकार नाम लेकर बुलाने से इन्द्रभूति फिर विचार में पड़ गया—यह तो मेरा नाम भी जानता है, अथवा मेरा नाम कौन नहीं जानता ? यह भी मुझसे डरकर मीठे बचन बोलता है, इससे मालूम पड़ताहै कि वह मेरे साथ वाद करना नहीं चाहता, परन्तु मैं इसके मीठे वचनों

से प्रसन्न नहीं होऊँगा ? यदि यह सर्वज्ञ है तो मेरे मनका संशय दूर करेगा और मैं इसका शिष्य होऊँगा। इतने ही में श्रीमहावीर स्वामीने कहा—हे इन्द्रभूति ! तेरे मनमें यह सन्देह है कि जीव है या नहीं !

"विज्ञानघन एव आत्मा एतेभ्यः भूतेभ्यः समुत्थाय पुनस्तान्येव अनुप्रविशाति न प्रेत्यसंज्ञाऽस्ति इति"

विज्ञानघनही का नाम आत्मा है, वह आत्मा इन भूतों से उत्पन्न होकर फिर उन्हीं भूतों में प्रवेश करती है, जीवका परलोक गमन नहीं होता. इस वेदवाक्यसे तू जीवका अभाव मानताहै* परन्तु जीव स्थापनमेंभी वेदपदहै.

"सर्वै अयं जीवात्मा ज्ञानमयो ब्रह्मज्ञानमयो मनोमयो वाङ्मयो कायमयः चक्षुर्मयः श्रोत्रमय आकाशमयो वायुमयस्तेजोमयोऽप्मयः पृथिवीमयः हर्षमयः धर्ममयः अधर्ममयो ददद-मयः, इति"

यह आत्मा ज्ञानस्वरूप, ब्रह्मज्ञानस्वरूप, मन, वचन, कायामयी, चक्षुः, श्रोत्र, आकाश, वायु, तेज, पानी, पृथ्वी स्वरूप, हर्ष, धर्म, अधर्म स्वरूप और दम, दया, दानस्वरूप है। आत्मा जैसा करती है, वैसाही होता है, अच्छा करने से अच्छा होता है, खोटा करने से खोटा होता है, पुण्य करने से पुण्य बढता है और पाप करने

---

* इसी वाक्य से जीव की सिद्धि होती है उसका समाधान अन्य टीकाओं से जान लें.

से पाप। यह-यजुर्वेद के उपनिषद् की ऋचा का वाक्य आत्माका अस्तिपना बतलाती है—हे इन्द्रभूते ! तू ने वेदका अध्ययन किया है, तोभी वेदका अर्थ नहीं जानता. यह जीव सर्व शरीरव्यापी है और शरीर से पृथक् भी होता है; जैसे—दूधमें घृत, काष्ठमें अग्नि, तिलों में तैल, पुष्पों में सुगन्ध, और चन्द्रकान्त में अमृत सर्वव्यापी है और पृथक् भी होता है, ठीक वही अवस्था इस जीव और शरीर की है इसमें ज़राभी सन्देह नहीं है. दम, दया, दान इन तीनों दकारको जानने वाले को जीव जानों. ऐसा कहने से प्रतिबोध को प्राप्त हुए इन्द्रभूति ने ५०० शिष्यों सहित दीक्षा ग्रहण की और भगवान् ने सर्व विरति सामायिकका उच्चारण करवाया। दीक्षा लेनेके बाद इन्द्रभूतिने स्वामीसे पूछा—तत्त्व क्या है ! स्वामी बोले 'उप्पन्नेइ वा' वस्तुकी उत्पत्ति होती है। यह पद सुनकर इन्द्रभूति ने विचार किया—यदि वस्तुकी उत्पत्ति ही होती रहेगी तो यह परिमित क्षेत्र भर जायगा. फिर पूछने पर स्वामी ने कहा—'विगमेइ वा' उत्पन्न होकर विनाश होता है। यह सुनकर फिर विचार किया—विनाशही होता रहेगा तो जगत् शून्य हो जावेगा. तब फिर प्रश्न किया. स्वामीने कहा—'किंचिय धुएइ वा' उत्पन्न होना, विनाश होना और कुछ कालतक स्थिर रहना. उत्पत्ति और

विनाश तो पुद्गल धर्म है, स्थिरत्त्व जीव धर्म है, यह जगत् की शाश्वति स्थिति है, जीव १, अजीव २, धर्म ३ अधर्म ४, आकाश ५, पुद्गल ६, इन द्रव्यों का आवर्त्तन और परावर्त्तन व्यवहार में आता है, जीव-पुद्गल इधर उधर फिरते हैं, इन त्रिपदीसे इन्द्रभूति ने जगत् का स्वरूप जाना और भगवान् ने त्रिपदी का दृष्टांत दिया. जैसे—एक राजाके एक पुत्र और एक पुत्री थी. पुत्रीने राजासे कहा— सौनेका घड़ा बनवाकर मुझे दो. राजाने पुत्रीको घड़ा बनवा दिया. पुत्रने कहा— सौनेका घड़ा तुड़वाकर मुझको मुकुट बनवादो. राजाने घड़ा तुड़वाकर पुत्रको मुकुट बनवा दिया. उस समय पुत्री को दुःख हुआ और पुत्रको हर्ष, परन्तु राजाको हर्ष और दुःख कुछभी नहीं हुआ. ठीक यही स्थिति संसारकी है— एक उत्पन्न होता है तो एक विनाश पाता है, जीव तो जितने हैं, उतने ही रहते हैं, ज्यादा कम नहीं होते, चाहे घटका मुकुट बने अथवा मुकुटका विनाश होकर घट बने, परन्तु स्वर्णकी हानि व वृद्धि नहीं है. इस प्रकार तत्त्व जानकर इन्द्रभूति ने अन्तर्मुहूर्त्तमें बारह अंगोंकी रचना की और गौतम ऐसा नाम स्थापन हुआ. इन्द्रभूति की तरह अग्निभूति वगैरह सबको भगवान्ने प्रतिबोधा और दीक्षा दी। इस प्रकार ग्यारह गणधरों की स्थापना की गई और उनका पूर्व परि-

वार उनकाही शिष्य किया गया । उसके बाद चन्दनबालाने भी भगवान्की वाणी सुनकर, प्रतिबोध पाकर और द्रव्यसे महोत्सव करके भगवान्के पास दीक्षा ली । इसी समय औरभी बहुतसे लोगों ने दीक्षा ली. बहुत से श्रावक हुए, बहुतसी श्राविकायें हुई. इस प्रकार दूसरे समवसरणमें चतुर्विध संघकी स्थापना हुई परन्तु प्रथम देशना में संघकी स्थापना नहीं हुई, इसलिये यह अच्छेरा हुआ । इस प्रकार संघकी स्थापना करके भव्यजीवों को प्रतिबोधते हुए और परोपकार करते हुए श्रीमहावीर स्वामी विचरने लगे.

तिसकाल और तिस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामी दीक्षा लेकर, अस्थिग्रामके बाहर शूलपाणि यक्षके मन्दिरमें पहिली चौमासी रहे । चम्पा नगरी और पृष्ट चम्पामें तीन चौमासी, विशाला नगरी और वाणीया ग्राममें बारह चौमासी, राजगृह नगरके उत्तरदिशि नालिंद पाडे में चौदह चौमासी, मिथिला नगरी में छः चौमासी, भद्रिका नगरीमें एक चौमासी, आलंबिकामें एक चौमासी, सावत्थिमें एक चौमासी, अनार्य्य देशमें एक चौमासी और मध्यम पावापुरीके हस्तिपाल राजाकी जूनी दाण सभामें स्वामी अन्तिम चौमासी रहे । ऐसे छद्मस्थपने में और केवलीपने में श्रीमहावीर स्वामीने बियांलीस चौमासे किये.

अब भगवान्‌का निर्वाण-कल्याणक कहते हैं:— भगवान् बियांलीसवीं चौमासी पापापुरी के हस्तिपाल राजा की जीर्ण राजसभामें, (धानमंडीमें) रहे. वर्षा कालके चौथे महीने के सातवें पक्षमें, कार्त्तिक अमावास्याके दिन भवस्थिति छेदकर महावीर स्वामी संसारसे निकले और संसारमें फिर नहीं आवेंगे, इस प्रकार मोक्ष गये. जाति—जरा—मरण—वन्धनको छेदकर सर्व्व कार्य्य में सिद्ध हुए, तत्त्वके जानने वाले भगवान् संसारसे छूटे, सर्व दुःखों का अन्त करने वाले हुए, सर्व प्रकारसे सुखी हुए, अनन्त सुखके भोक्ता हुए, चन्द्र नामक दूसरे सम्वत्सरमें, प्रीतिवर्धन नामक महीने में, नन्दिवर्धन पक्षमें, अग्निवेष नामक दिनमें, देवानन्दा नामक रात्रिमें, अर्च्यनामक लवमें, प्राण नामक स्तोकमें, नागनामक करणमें, सर्वार्थ सिद्ध मुहूर्त्तमें, स्वाति नक्षत्रमें, भगवान् श्रीवर्धमान स्वामी भवस्थिति व कायस्थिति से गये, शरीर—मन-सम्बंधी सर्व दुःखोंसे रहित होकर मोक्षको प्राप्त हुए।

जिस रात्रि में महावीर मोक्ष गये, वह रात्रि, कृष्ण होते हुए भी, वहुतसे देव-देवियों के आने से, प्रकाशवाली हुई और वहुतसे देव-देवियों के कोलाहल से अव्यक्त शब्दवाली हुई. जिस रात्रिमें श्रमण भगवान् महा-

वीर मोक्ष गये, उस रात्रि में श्रीमहावीर स्वामी के बड़े शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक गणधरका श्रीमहावीर स्वामी के साथ जो प्रेम बन्धन था, सो टूटा और उनको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ सो बतलाते हैं— श्रीमहावीर स्वामीने इन्द्रभूति को दीक्षा देकर गणधर पदवी दी. प्रथम संघयणवाले, प्रथम संस्थान वाले महा-तपस्वी, आमर्षी ओषधि वगैरह लब्धि सहित तेजोलेश्याका संक्षेप करनेवाले, चार ज्ञानसहित, चौदह पूर्वधारी, श्रुतकेवली ऐसे गौतम स्वामी ने, जिस २ को दीक्षा दी, वे सबही केवली हुए, परन्तु भगवान्के ऊपर मोहनीय कर्मके वशसे स्नेह होने से अपने आपको केवल ज्ञान नहीं हुआ. एकसमय भगवान्ने देशनामें कहा कि आत्म-लब्धिसे जो अष्टापद तीर्थ की यात्रा करता है, वह उसी भवमें मोक्ष जाता है. तब गौतम स्वामी अपने आत्मा की परीक्षा करने को भगवान् की आज्ञा लेकर वहां गये. वह अष्टापद पर्वत बत्तीस कोश ऊँचा था और उसमें, एक २ योजन ऊँची आठ सीढियां थीं, जिससे पैरके बलसे उस पर्वतपर कोई भी नहीं चढ़ सकता था। पहिली सीढ़ीपर एकान्तर उपवास करके पारणे में वृक्षों के फल खाने वाले पांचसौ तापस सहित कोडिण्ण तापस बैठा था. दूसरी सीढीपर दो उपवास करके पारणेमें सूखे हुए वृक्षों से अपने आप नीचे गिरे हुए फल खाने-

वाले पांचसौ तपस्वी सहित दिन्न नामक तापस और तीसरे सौपानपर तीन उपवास करके पारणे में सूखी हुई शैवाल तीन चल्लू पानी के साथ खाने वाले पांचसौ तपस्वी सहित शैवाल नामक तापस बैठाथा, परन्तु इन सबमें से कोई भी आगे चढनेको समर्थ नहीं हुआ। जब उन तापसों ने गौतम स्वामी को आतेहुए देखा, तब उन्होंने विचार किया– कि हम तपस्या करते २ दुर्बल होगये, तथापि ऊपर नहीं चढ़ सकते, तो यह स्थूल शरीर वाला पुरुष कैसे चढ़ेगा परन्तु गौतमस्वामी तो लब्धि के बलसे सूर्यकी किरणों को पकड़कर शीघ्रही ऊपर चढ़ गये और भरत चक्रवर्तीका बनाया हुआ 'सिंहनिषध्या' नामक प्रासादमें चत्तारि, अट्ठ, दस, दोय, इस तरह चौवीस तीर्थंकरों की लांछन–वर्ण–प्रमाण सहित जिन प्रतिमाओं को नमस्कार कर, तीर्थ उपवास कर प्रासादके द्वारदेशमें अशोक वृक्षके नीचे शिलापट्टको प्रमार्जित करके उस दिन वहीं रहे. रात्रिमें स्वामीने वृज्र-स्वामीके जीव तिर्यक् जृंभक देवको प्रतिबोधा. प्रभातमें देव-दर्शन करके जब गौतम स्वामी नीचे उतरे, तब श्री गौतम स्वामीका माहात्म्य देखकर पन्द्रह सौ तीन तापस शिष्य हुए. सबको गौतम स्वामीने दीक्षा दी. सब तप-स्वियोंका पारणा उसी दिन आया, तब उनसे पूछा–हे तपस्वीओं ! आज तुमको किस आहारसे पारणा करावें ?

इसपर तपस्वियोंने कहा-आप जैसे गुणवान् गुरुके मिलनेसे परम आनन्द हुआ इसलिये परमान्न(खीर)से पारणाहो. गौतम स्वामी वहोरने गये, पात्रमें खीर ले आये और अक्षीण महानसी लब्धिके बलसे खीरके उस एक पात्र से ही सबको पारणा कराया. उस वक्त शैवाल खाने वाले पांचसौ एक तापसोंको गुरुका माहात्म्य विचारते हुए प्रथम कवल लेते ही केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ. इसी तरह दिन्न आदि पांच सौ तापसोंको भगवान्का समवसरण देखनेसे केवल ज्ञान हुआ. कौडिन्न आदि पांचसौ तापसोंने भगवान्की वाणी सुनकर केवल ज्ञान पाया. इस तरह पन्द्रह सौ तीन तापस मुनियोंके साथ गौतम स्वामी समवसरणमें आये और स्वामीको तीन प्रदक्षिणा देकर तापस-केवलियोंकी परिषदामें जाने लगे. गौतम स्वामीने भगवान्को वन्दना करके तापसोंसे कहा—हे तपस्विओं! यहाँ आकर भगवान्को वन्दना करो. भगवान् बोले—हे गौतम! केवलियोंकी आशातना मत कर. गौतम बोले—हे स्वामिन्! ये नये दीक्षित भी केवली हो गये तो मुझको केवल ज्ञान कैसे नहीं होता? स्वामी- बोले—अन्तमें अपन दोनों सरीखे होवेंगे? तू मुझपर स्नेह छोड़ दे, जिससे तुझे केवल ज्ञान होवे. गौतम स्वामीने कहा—मुझे केवल ज्ञान नहीं चाहिये, आपमें मेरा स्नेह बना रहे. ऐसे गुरुभक्त और प्रतिबोध देनेमें अतीव

निपुण गौतमस्वामीने छःवर्षके अतिमुक्त कुमारको प्रतिबोधा. इसके बाद वर्षाके पानीसे बहते हुए नालेमें पाल बांधकर उसने कांचली तिराई. साधुओंने जब मना किया, तब भगवान्के पास आकर इरियावहीका प्रतिक्रमण करता हुआ, १८ लाख, २४ हजार, १२० मिच्छामि दुक्कडं देता हुआ वह शुक्ल ध्यानसे केवली हुआ. ऐसे गौतम स्वामीने जिस २ को प्रतिबोधा, दीक्षा दी, वही केवली हुआ। गौतम स्वामीका चरित्र कितने महत्वकाहै ? भगवती सूत्रमें ३६ हजार प्रश्नोंका उत्तर, भगवान्ने, 'हे गौतम!' ऐसा नाम लेकर दिया है। भगवान्ने अपना निर्वाण-समय जानकर पावापुरीके पास वाले ग्राममें, उसी दिन देवशर्म्मा ब्राह्मणको प्रतिबोधने के वास्ते गौतमस्वामी को भेजा. उसी रात्रिमें भगवान् निर्वाण गये. प्रभातमें देवोंके मुखसे भगवान्का निर्वाण सुनकर गौतम वज्रा-हतके जैसे हुए और चेतना पाकर बोले—अहो! इस वक्त मिथ्यात्वरूप अन्धकार फैलेगा और कुमति घुग्घुओंका समुदाय जागेगा. हे स्वामिन्! तीन जगत्के सूर्य्य आप अस्त हुए, चतुर्विध संघका मुखकमल म्लान हुआ और पाखंडी तारे देदीप्यमान् होवेंगे; ऐसा कहकर विलाप करने लगा— अहो वीर! आपने यह क्या किया ? जिस वक्त अपने बालकोंको दूरसे बुलाना चाहिये था, उस वक्त आपने मुझको दूर किया. आपने यह लोक-

व्यवहार भी तो नहीं पाला. क्या मैं बालककी तरह पल्ला पकड़कर आपको मोक्ष नहीं जाने देता; अथवा क्या मैं केवल ज्ञान मांगता था, अथवा क्या आपमें मेरा कृत्रिम स्नेह था, अथवा क्या मुक्ति-स्थान मुझसे सकडा होता था, जिससे आप मुझको लेकर नहीं गये, अथवा क्या मैं आपको तकलीफ देता। हे वीर! हे स्वामिन्! आप मुझको कैसे छोड गये, अब मैं सन्देह किससे पूछूँगा, ऐसे दुःख कर २ के गौतम स्वामी ने औरभी विचार किया– अहो! श्रीमहावीर स्वामी वीतराग हैं और निःस्नेही हैं, धिक्कार है मुझको! जो श्रुतज्ञानसे भी मैंने मोहका माहात्म्य नहीं जाना, निर्मोहमें मोह क्या करना! मेरा कोई नहीं है और मैं किसीका नहीं हूँ। यह आत्माही शाश्वत तथा ज्ञान–दर्शन–चारित्र रूप है और अन्य सर्व भाव अनित्य हैं। इस प्रकार विचार करते हुए गौतम स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ। प्रभात समय सर्व देवों ने तथा इन्द्रोंने आकर केवल ज्ञानका उत्सव किया, इन्द्रादिकों ने 'जम्बूद्वीप पन्नात्ति' सूत्रमें कही हुई विधिसे श्रीमहावीर स्वामी के शरीरको स्नान करा करके चन्दनसे अग्निसंस्कार किया और दांत, डाढ़ वगैरह अपने २ अधिकारके अनुसार लेकर अपने २ विमानों के रत्नों के डब्बों में पूजाके लिये रख लीं। इस प्रकार श्रीमहावीर स्वामी का निर्वाण विवाह–

मंगलके सरीखा हुआ—

वीरो वरः, प्रिया सिद्धिः, गौतमऽनुवरस्तथा । प्रत्यक्षं संघलोकस्य, जातं विवाह मंगलम् ॥ १ ॥

श्रीमहावीर वर राजा, मुक्ति विवाह योग्य कन्या और गौतम अनुवर हुए। इस प्रकार श्रीमहावीर स्वामीका निर्वाण रूपी विवाह प्रत्यक्ष रूपसे श्रीसंघके लिये मंगल करने वाला हुआ. श्री महावीर स्वामी के निर्वाणके बाद् श्री गौतम स्वामीका केवल ज्ञान सर्व के लिये हर्ष जनक हुआ। सर्व देवेन्द्रोंने और सर्व लोगों ने 'जुहार भट्टारक' कहकर गौतम स्वामी को वन्दना की। दूसरे दिन सुदर्शना बहिनने नन्दिवर्धन राजाको अपने घर भोजन कराकर भगवान्के वियोगका शोक दूर कराया और वह दिन लोक में 'भाई बीज' पर्व हुआ। जिस रात्रिमें भगवान् निर्वाण गये, उसी रात्रि में काशी देशके स्वामी मल्लकी गौत्रीय नौ राजा तथा कौशल देशके मालिक लेच्छकीय गौत्रीय नौ राजा, इन अठारह राजाओं ने, जो कि श्रीमहावीर स्वामीके मामा चेडामहाराज के सामन्त थे, संसारका पार कराने वाला आठ प्रहरका पौषध उपवास किया था. भाव उद्योत करने वाले, ज्ञानवान् तीर्थंकर का निर्वाण जानकर उन राजाओं ने द्रव्य–उद्योत किया, मकानों में रत्न रक्खे, जिन

रत्नोंका दीप सरीखा प्रकाश हुआ, तभीसे 'दीपमालिका' पर्व प्रवृत्त हुआ. जिस रात्रिमें भगवान्‌का निर्वाण हुआ, उस रात्रिमें ८८ ग्रहोंमेंसे भस्म राशिनामक दुष्ट ग्रह, जो दो हजार वर्षतक एक ही राशिपर रहता है, भगवान्‌की जन्म-राशि के ऊपर आया। जब तक वह ग्रह रहेगा, तब तक भगवान्‌के शासनमें साधु–साध्वियोंका उदय–पूजा–सत्कार न होगा, ऐसा विचारकर, इन्द्रने निर्वाण-समयमें भगवान्‌से विनती की–हे स्वामिन्! दो घडी तक आयुः बढाओ, जिससे यह दुष्ट भस्मग्रह आपकी दृष्टिसे निर्बल हो जाय। स्वामीने इन्द्रसे कहा–हे इन्द्र! अनन्तबलवीर्यवाले तीर्थंकरभी आयुः बढानेमें समर्थ न हुए हैं, न हैं और न होवेंगे, आयुःकी हानि–वृद्धि कोई भी नहीं कर सकता ※। जब यह भस्म ग्रह उतरेगा, तभी भगवान्‌के शासन में साधु–साध्वियों का उदय, पूजा और सत्कार होगा। जिस रात्रि में श्रमण भगवान् महावीर स्वामी मोक्ष गये, उस रात्रिमें कुन्थुएँ जीवों की उत्पत्ति बहुत हुई, जो स्थिर रहने पर छद्मस्थ साधु-साध्वियों को शीघ्रतासे देखनेमें नहीं आसकते थे, और चलने परभी कठिनतासे देखे जा सकते थे, ऐसे सूक्ष्म कुन्थुएँ जीवोंको देखकर बहुतसे साधु-साध्वियोंने भात-पानीका

※ घडी न लब्भइ अग्गली, इंदह अक्खइ वीर। इम जाणी जिउ धम्म करि, जां लगि वहइ सरीर ॥ १ ॥

पच्चक्खाण किया—आज पीछे संयम मुश्किलसे पाला जायगा, पृथ्वी जीवाकुल और उपद्रव वाली होवेगी, संयम पालनेके योग्य विरलाही क्षेत्र मिलेगा,पाखंडी बहुत होंगे. ऐसा विचारकर उन साधु-साध्वियों ने अनशन ग्रहण किया।

अब भगवान्का परिवार कहते हैं:—तिसकाल, तिस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके इन्द्रभूति आदि चौदह हजार साधुओंका समुदाय हुआ. चन्दनबाला आदि छत्तीस हजार साध्वियां हुईं. शंख,शतक, पुस्कली वगैरह एक लाख, उनसठ हजार श्रावक हुए. सुलसा, रेवति आदि तीन लाख, अठारह हजार श्राविकाएँ हुईं, और श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामी के, जिन नहीं परन्तु जिनके जैसे सर्व अक्षरों की संयोजना जानने वाले तीन सौ चौदह पूर्वधारी हुए. तेरह सौ अवधि ज्ञानी हुए तथा अढाई द्वीप—समुद्रों में सन्निपंचेन्द्रिय परियाप्ता, मनुष्य—तिर्यंचों के मनोगत भावों को जानने वाले पांच सौ मनपर्य्यवज्ञानी हुए। (ऋजुमति वाले ढाई द्वीपमें ढाई अंगुल कम देखे, परन्तु विपुलमति वाले सम्पूर्ण देख सकते हैं)। भगवान् महावीर स्वामीके चार सौ वादी हुए, जिनके साथ विवाद करने में इन्द्रादि देवभी समर्थ नहीं होते थे। भगवान् महावीर स्वामी के स्वहस्त दीक्षित सात सौ साधु और चौदह सौ साध्वियाँ मोक्ष गईं। आठ सौ साधु पंचानुत्तरवासी देव हुए, जो देव-

भवसे मनुष्यभव प्राप्त करके मोक्ष जावेंगे। श्रमण भगवान् महावीर स्वामीके दो प्रकार की अन्तकृत भूमि हुई—युगान्तकृत भूमि १, पर्याय अंतकृत भूमि २. युग पुरुप का अन्त करनेवाली भूमिको युगान्तकृत भूमि कहते हैं श्रीमहावीर स्वामी के मोक्ष को प्राप्त होनेके बाद भगवान्के पट्टमें सुधर्मा स्वामी मोक्ष गये. उनके बाद जम्बू स्वामी मोक्ष गये. ये तीन पाट परम्परा से मोक्ष गये. जम्बू स्वामी के पीछे कोई भी पट्टधारी मोक्ष नहीं गया, यह युगान्तकृतभूमि हुई १, और तीर्थंकरके केवल ज्ञानकी उत्पत्तिसे लेकर जितने समयसे मोक्षमार्ग शुरु हो, उसको पर्य्यायन्तकृत—भूमि कहते हैं. श्रीमहावीर स्वामीको केवल ज्ञानकी उत्पत्तिके चार वर्ष बाद मुक्तिमार्ग शुरू हुआ, यह दूसरी पर्य्यायन्तकृत भूमि हुई २. अब भगवान् महावीर स्वामीकी सर्व आयुः कहते हैं—तिसकाल, तिस समयमें श्रमण भगवान् महावीर स्वामीने तीस वर्ष तक गृहवासमें रहकर दीक्षा ली, कुछ अधिक बारह वर्ष तक छद्मस्थपर्याय, किंचित् कम तीस वर्ष केवली पर्य्याय, और ४२ वर्ष तक चारित्र पर्याय पाल करके बहत्तर वर्षका सर्व आयुः पालन किया। वेदनीय १, आयुः २, नाम ३, गोत्र ४, इन चार कर्मों के क्षय होनेपर दुःषम सुषम नामक चौथे आरे के बहुत कुछ समाप्त होनेपर, तीन वर्ष और साढ़े आठ महीने बाकी रहनेपर, मध्यपावापुरी-

नगरी के हस्तिपाल राजाकी जीर्ण राजसभामें चौविहार, बेलेकी तपस्यायुक्त स्वाति नक्षत्रके साथ चन्द्रमा का योग आनेपर प्रातःकाल दो घडी रात्रि बाकी रहनेपर, पद्मासनपर बैठे हुए, पच्चावन अध्ययन पुण्य फलके तथा पच्चावन अध्ययन पापफलके विपाकको कहते हुए, छत्तीस अपृष्ट व्याकरण (प्रश्न विनाही उत्तर) कहकर, प्रधान नामक अध्ययनमें मरुदेवी के अधिकारको कहते हुए श्रीमहावीर स्वामी मोक्ष गये, सम्यक् प्रकारसे ऊंचे गये और अब नीचे नहीं आवेंगे, इस प्रकार गये हुए स्वामी जन्म-जरा-मरण-बन्धन रहित हुए और सिद्ध, बुद्ध, मुक्त और सर्व कर्मोंका अन्त करने वाले वे सर्व प्रकार से शीतल, दुःख तथा संतापसे रहित होकर शाश्वत सुखों में मिले।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के मुक्ति जानेके नौसौ अस्सी (९८०) वर्ष बाद देवर्धिगणि क्षमाश्रमण ने कालविशेष से हियमान बुद्धि जानकर, सिद्धान्त विच्छेद हो जायेंगे, ऐसा विचार कर, बारह वर्षी दुर्भिक्ष के अन्तमें, वल्लभी नगरीमें सर्व साधुओंके साथ मिलकर सिद्धांत पत्रों में लिखवाये—पहले सर्व सिद्धान्तों का पठन—पाठन मुखसे ही होता था, अब गुरु शिष्यों को पुस्तकपर सिद्धान्त पढ़ाते हैं. कई आचार्य ऐसा भी

कहते हैं— भगवान् के मुक्ति जाने के नौ सौ अस्सी वर्ष बाद ध्रुवसेन राजाका पुत्रशोक निवारण करने के लिये सभा समक्ष कल्प—सूत्र सुनाया गया. तबसे प्रति वर्ष प्रत्येक गांव—नगरमें पर्युषणा पर्व में संघसमक्ष कल्पसूत्र वांचनेकी प्रवृत्ति शुरू हुई है और नौ सौ तिरानवें (९९३) वर्ष में मथुरा नगरी में स्कन्दलाचार्य ने साधुओंको इकट्ठे करके वाचना की, तबसे माथुरी वाचना तथा वल्लभी वाचना कहलाई. और नौ सौ तिरानवें वर्षमें कालकाचार्यने पंचमी से चौथको पर्युषणा पर्व किया, जिसका विशेष विवरण टीकाओंसे जान लें. इस प्रकार जिनचरित्राधिकारमें, पश्चानुपूर्वी करके छःकल्याणकोंसे युक्त श्रीमहावीर स्वामीका चरित्र कहा गयाहै ॥

श्रीकल्पसूत्रवरनाममहागमस्य गूढार्थभावसहितस्यगुणकरस्य। लक्ष्मीनिधेर्विहितवल्लभकामितस्य व्याख्यानमाप किल पञ्चममत्र पूर्तिम् '५.

सूचनाः— जन्मसे निर्वाणतक भगवान्‌का चरित्र टीकाकारने एकही वाचनामें लिया है। शीघ्र वांचने वाले कई महाशय इसको एकही वाचनामें समाप्त करते हैं और धीरे २ वांचने वाले दीक्षा लेनेके अधिकार तक अथवा कुछ विशेष एक वाचना में वांचकर दूसरी वांचनामें संपूर्ण करते हैं. इस प्रकार जिसको जैसा सुभीता हो, वे वैसा ही कर सकते हैं—इसमें कोई दोष नहीं है।

॥ इति पंचम व्याख्यान संपूर्ण ॥ ५ ॥

॥ अथ छठा व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

अब छठी वाचना में श्रीपार्श्वनाथ स्वामी तथा श्रीनेमिनाथ स्वामी के पांच २ कल्याणक श्रीभद्रबाहु स्वामी कहते हैं—तिस काल और तिस समयमें, ६३ शलाका पुरुषों में तथा सर्व दर्शनों में प्रसिद्ध श्री पार्श्वनाथ अर्हन् विशाखा नक्षत्रमें देवलोकसे च्यवकर, वामादेवी के गर्भमें उत्पन्न हुए, विशाखा नक्षत्र में जन्म लिया, विशाखा नक्षत्र में ही दीक्षा ली, विशाखा नक्षत्रमें ही सर्वोत्कृष्ट केवल ज्ञान व केवल दर्शन प्राप्त किया और विशाखा नक्षत्र में ही मोक्ष गये. इस प्रकार संक्षेप से पांच कल्याणक कहे. अब विस्तारसे कहते हैं—तिस काल, तिस समयमें पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हन् उष्ण कालके प्रथम मासके प्रथम पक्षकी चैत्रवदी चतुर्थीको प्राणत नामक दशम देव—लोकसे, बीस सागरोपम की उत्कृष्ट आयुः पालनेके बाद, च्यवकर इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें काशीदेशमें वनारसी नगरीके अश्वसेन राजाकी वामारानीके गर्भमें, देवसम्बन्धी आहार, भव तथा भवधारिनीय वैक्रीय शरीरका त्याग करके, मध्यरात्रिमें चन्द्रमाका योग आनेपर विशाखा नक्षत्रमें उत्पन्न हुए।

अब श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके पूर्व—भवोंका स्वरूप कहते हैं. इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रके पोतनपुर नगरमें

अरविन्द नाम राजा था, जिसके विश्वभूतिनामक पुरोहितके अनुधरी नामकी स्त्री थी. उनके दो पुत्र हुए— पहला कमठ और दूसरा मरुभूति. जब विश्वभूति कालधर्मको प्राप्त हुआ, तब अरविन्द राजाने पुरोहित पदवी कमठको दी. कमठ स्वभावसे ही कठोर, क्रूर, लम्पट, और शठ था, और मरुभूति सरल, तत्त्वज्ञ, और श्रावक धर्मका पालने वाला था. कमठके वरुणा नामकी स्त्री थी और मरुभूति के वसुन्धरा नामकी स्त्री. । एकदा वसुंधरा को अतीव स्वरूपवान् देखकर कमठ मोहित होगया, बारंबार कामकी प्रार्थना करने से वसुन्धरा भी कमठमें आसक्त हुई. कुछ समय बाद कमठ—वसुन्धराका दुराचार जब कमठकी स्त्री वरुणाने जाना, तब उसने कमठको मना किया— हे स्वामिन् ! यह अकार्य्य छोड़ो, यदि मरुभूति जानेगा, तो लोगों में फजेत करके तुमको निकाल देगा । भाईसे प्रीति जावेगी, और राजाभी सुनकर विरुद्ध करेगा. इसपर भी कमठ अकार्य से निवृत्त नहीं हुआ. अत्यन्त क्रोधित हुई वरुणाने वसुन्धरा और कमठका दुराचार मरुभूति से कहा. मरुभूतिने विचार किया—जब मैं अपनी दृष्टिसे देखूंगा, तब मानूंगा. एकदा कुछ मिस करके वह घरसे निकला, दूसरे दिन सन्यासी का वेष धारण करके सन्ध्या समय रहनेको स्थान मांग कर रहा और रात्रिमें जब उनका दुराचार स्वयं

देखा, तब उसने अरविन्द राजा से कमठका अनाचार कहा. अरविन्द राजाने भी कमठका दुराचार सुनकर कमठकी निर्भत्सना कर, चौर जैसी विडम्बना करके, नगरमें फिराकर नगरसे निकाल दिया और मरुभूतिको पुरोहित किया. कमठ लोगोंमें लज्जित हुआ, दुःखगर्भित वैराग्य पाकर तापसी दीक्षा ली. बहुत देशांतर फिरता २ वह एकदा पोतनपुरके पास एक पर्वतके ऊपर आकर आतापना करने लगा. सर्व लोग कमठको देखनेको गये, पहिले निन्दा करते थे, अब प्रशंसा करने लगे. मरुभूतिने भी विचार किया—मैंने अपने बड़े भाईके साथ विरोध किया. दुःखसे निकल कर वह तापस हुआ. अब मैं उसके पास जाऊँ और नमस्कार करके अपना अपराध क्षमा कराऊँ, ऐसा विचार करके मरुभूति कमठके पास गया और जब पैरों में पड़कर अपराध की क्षमा मांगने लगा, तब कठोर कमठने मरुभूतिको मारनेके वास्ते मस्तक पर शिला डाली, जिससे मस्तक चूर्ण २ हो गया. वेदनासे पीड़ित मरुभूति आर्त्तध्यानसे मरकर दूसरे भवमें विन्ध्याचलकी अटवीमें सुजातोरु नामक हाथी हुआ. कमठभी वहांसे डरकर भागा, दुष्टकर्मके वशसे मरकर उसी वनमें कुर्कुट पक्षी जैसी आकृति वाला उड़ना सर्प हुआ ॥ २ ॥ अरविन्द राजाने भी कमठ और मरुभूतिका स्वरूप सुनकर संसारको

असार जानकर दीक्षा ली. ग्यारह अंग पढ करके उग्र तप युक्त अनुक्रमसे एकाकी विहार करते हुए एक समय सागरचन्द्र सार्थवाहके संग वे समेतशिखरजी की तीर्थयात्राको चले। जिस विन्ध्याचलके वनमें मरुभूति का जीव हाथी हुआ था, उसी वनमें सार्थवाहके साथी उतरे, अपने २ कार्य्य में लगे और राजर्षि अरविन्दभी सरोवरकी पालपर एकान्तमें काउसग्गमें रहे. उस समय जल पीनेको हथनियोंके साथ मरुभूतिका जीव हाथी आया, लोगोंका कोलाहल सुनकर, हाथी, घोड़े, उष्ट्र, वृषभ वगैरह जानवरों को देखकर क्रोधसे उपद्रव करने लगा. सर्व लोग भाग गये. अरविन्द राजर्षिको देखकर हाथी मारनेको दोडा, जब नजदीक आया, तब साधुजी के प्रभावसे स्थंभित हुआ. ऊहापोह करते हुए उस हाथीको साधुजीके दर्शनसे जाति-स्मरण-ज्ञान उत्पन्न हुआ। अरविन्दराजर्षिको पहिचानकर, चरणों में नमकर नमस्कार किया. साधुजीने भी ज्ञानसे हाथीको मरुभूतिका जीव जानकर, प्रतिबोध देकर सम्यक्त्व सहित श्रावक धर्म अंगीकार कराया. यह स्वरूप देखकर बहुतसे लोगोंने प्रतिबोध पाया. उसके बादमें अरविन्द राजर्षि समेतशिखरजीकी यात्रा कर और चारित्र पालकर सद्गति गये. एक समय उस हाथीने वनमें दावानलके भयसे पानी पीनेको सरोवरमें प्रवेश किया, कादेमें फँस गया, आगे

जाने तथा पीछे आनेमें असमर्थ हुआ. वहींपर दावानलके भयसे भागते हुए कमठके जीव, कुर्कुट सर्पने हाथी को कादेमें फँसा देखकर, पूर्व भवके वैरसे माथेपर बैठकर डसा. जहरकी वेदनासे पीडित हुआ, वह हाथी श्रावक धर्म पालने से, धर्मध्यानसे मरकर तीसरे भवमें आठवें सहसारदेव–लोकमें देव हुआ। कुर्कुट सर्पभी दावानलसे मरकर पांचवीं नरक गया ॥३॥ अब मरुभूतिका जीव आठवें देवलोकसे च्यवकर चौथे भवमें इसी जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेहक्षेत्रमें, सुकच्छ विजय, वैताढ्य पर्वतकी दक्षिण श्रेणिमें, तिलकवती नगरी के विद्युत गति विद्याधर राजाकी कनकवती रानीके पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ, 'किरणवेग' नाम दिया गया, यौवनावस्थामें राज्य पाया और रूपवती स्त्रियोंके साथ सुख भोगने लगे. एकदा गवाक्षमें बैठेहुए वे सन्ध्याका स्वरूप देखकर, वैराग्य पाकर, मुनियोंके पास दीक्षा लेकर, पुष्करवरद्वीपके वैताढ्य पर्वतके पास हेमशैलपर्वतके ऊपर काउसग्गमें रहे। उस समय कमठका जीव पांचवीं नरकसे निकलकर उसी पर्वतमें सर्प हुआ ॥ ४ ॥ सर्पने साधुको देखकर पूर्व वैरसे डसा. साधु काल करके, पांचवें भवमें, अच्युत नामक बारहवें देवलोकमें देव हुए. सर्पभी मरकर पांचवीं नरकमें गया ॥५॥ अब मरुभूतिका जीव बारहवें देवलोकसे च्यवकर छठे भवमें, इसी जम्बूद्वीपके पश्चिम महावि-

देहमें, गंधलावती विजय शुभंकरा नगरीके वज्रवीर्य राजाकी लक्ष्मीवती रानीकी कुक्षिमें पुत्र रूपसे उत्पन्न हुआ. 'वज्रनाभ' उनका नाम रक्खा गया, अनुक्रमसे पिताने राज्य दिया. यौवनावस्थामें विषयसुख भोगते हुए वे सुखसे रहने लगे। एक समय उद्यानमें क्षेमंकर तीर्थंकर पधारे, वज्रनाभराजा तीर्थंकरको वन्दना कर, देशना सुन, सर्व अनित्य जानकर, पुत्रको राज्य देकर, क्षेमंकर तीर्थंकरके पास दीक्षा लेकर, आचार-विचार वाले सर्व शास्त्रोंका अध्ययन करके चारण लब्धिसे विहार करते हुए वज्रनाभ राजर्षि सुकच्छविजयमध्यवर्ति ज्वलन पर्वतपर काउसग्गमें रहे। उस समय कमठका जीव पांचवीं नरकसे निकलकर बहुतसे भव भ्रमण करके उसी पर्वतपर भील हुआ ॥ ६ ॥ मृग मारनेको जाते हुए उस भीलने साधुजीको देखकर पूर्व भवके वैरसे एक वाण मारा. साधुजी शुभध्यानसे मरकर मध्यमग्रैवेयकमें देव हुए. भील मरकर सातवीं नरकमें गया ॥ ७ ॥ मरुभूतिका जीव आठवें भवमें इसी जम्बूद्वीपके पूर्व महाविदेहमें शुभंकर विजय पुराणपुर नगरके कुशलवाहु राजाकी सुदर्शना रानीके चौदह स्वप्न सूचित चक्रवर्त्ति पुत्ररूपसे उत्पन्न हुआ. 'सुवर्णवाहु' नाम दिया गया. क्रमशः उसने राज्य पाया, कितने ही वर्ष वाद चक्ररत्न उत्पन्न हुआ, छः खंड साधकर चक्रवर्त्ति पदवी पाकर, वृद्धा-

वस्थामें चारित्र लेकर वीश स्थानकका सेवन कर तीर्थंकर नाम कर्म बांधकर, अटवीमें काउसग्गमें खडे रहे। सातवीं नरकका मध्यम आयुः पालकर, कमठका जीव उसी अटवीमें सिंह हुआ ॥८॥ उसने सुवर्णबाहु राजर्षि को देखकर पूर्वभवके वैरके कारण हस्थलसे मारे. साधुजी मरकर नवम भवमें प्राणतनामक दशम देवलोकमें वीससागरके आयुः वाले देव हुए. कमठका जीव सिंह मरकर नरकमें गया ॥ ९ ॥ मरुभूतिका जीव प्राणत देव-लोकसे सम्पूर्ण आयुः पालकर वामारानीकी कुक्षिमें पार्श्वनाथ तीर्थंकर रूपसे अवतरा. कमठका जीव नरकसे निकलकर दरिद्री ब्राह्मणके घरमें उत्पन्न हुआ ॥ १० ॥

अब श्रीपार्श्वनाथ स्वामीका अधिकार कहते हैं—पार्श्वनाथ पुरुषादानीय अर्हन्, देव-लोकसे मेरा च्यवन होगा, ऐसा जानते थे, परंतु च्यवन-समय अति सूक्ष्म होने से नहीं जान सके और माताके गर्भ में उत्पन्न होनेके बाद जान लिया कि मैं यहां आया हूँ. भगवान्, मति, श्रुति, और अवधि इन तीन ज्ञान सहित थे. इसके पश्चात् चौदह स्वप्नोंका देखना, भर्त्तारके आगे उनका कहना, प्रभातमें राजाका स्वप्न—लक्षण—पाठकों से पूछना, फल सुनना, पीछे इन्द्रकी आज्ञासे धनदके सेवक, तिर्यग् जृंभक देवोंद्वारा धनकी वर्षा करना इत्यादि सर्वाधिकार श्रीमहावीर

स्वामी के तुल्य जानने चाहिये, परन्तु मेरा गर्भ गल गया इत्यादि अधिकार नहीं कहना।

अब श्रीपार्श्वनाथस्वामी का जन्म कल्याणक कहते हैं—तिस काल, तिस समयमें ९ महीने साढे सात दिनके पश्चात्, शीतकालके दूसरे महीनेके तीसरे पक्षमें पौषवदी दशमीके दिन, आधी रात्रिके समय विशाखा नक्षत्रके साथ चन्द्रका योग आने पर, आरोग्यवान् पार्श्वनाथको आरोग्यवती वामादेवी ने जन्म दिया। जिस रात्रिमें वामादेवीने भगवान् पार्श्वनाथको जन्म दिया, उस रात्रिमें बहुतसे देव–देवियोंके मनुष्य–लोकमें आने-जानेसे अन्धकारवाली रात्रिमें भी प्रकाश हुआ और उन देव–देवियोंके अव्यक्त शब्द तथा हास्य से बहुतसा कोलाहल मचा। छप्पन्न दिक्कुमारियोंका सूतिकर्मका करना और चौसठ देवेंद्रोंका मेरु शिखरपर जन्मम-होत्सवका करना, स्वर्णरत्नादिकी वृष्टिका करना तथा प्रभातमें अश्वसेन राजाको पुत्र–जन्मकी बधाई देने-वाली दासीको वांछित धन देना, पीछे बन्दियोंका छुड़ाना, मान, उन्मादका बढाना, नगरकी शोभा करना इत्यादि दश दिन तक जन्ममहोत्सव महावीर स्वामीके अधिकार मुजब जान लेना। बारहवें दिन सर्व ज्ञातीय लोगोंको भोजन कराकर पिताने 'पार्श्वकुमार' ऐसा नाम दिया। इसका कारण यह है कि अंधेरी रात्रिमें

वामादेवीने पासमें जाते हुए एक सर्पको देखा और निद्रामें श्रीअश्वसेन राजाके नीचे लटकते हुए हाथको उठाकर सैज पर लिया। राजाने पूछा—निद्रामें मेरा हाथ ऊँचा क्यों किया? रानी बोली—हे स्वामिन्! यहां काला सर्प जाता है, इससे मैंने हाथ उँचा किया. उस समय राजाने जाना कि जो ऐसी अँधेरी रात्रिमें रानी ने सर्प देखा, तो यह गर्भकाही प्रभाव है, इस कारणसे इस बालकका 'पार्श्व' ऐसा नाम रक्खेंगे। इसी विचारसे बारहवें दिन सबको भोजन कराकर माता—पिताने सर्व जन समक्ष 'पार्श्व कुमार' ऐसा नाम दिया। अब बाल्या-वस्थामें इन्द्र देवोंको भेजकर भगवान्को रमाता, आपभी कुमारका रूप धरकर साथमें क्रीडा करता. जन्मसेही इन्द्रने भगवान्के अंगूठेमें अमृतका संचार किया था.जब तक अग्निपक्व आहार नहीं करते, तब तक भगवान् अंगूठे से ही अमृतपान करते रहे. ऐसी रीति सर्व तीर्थंकरों की है। अब श्रीपार्श्वनाथ स्वामी कल्पवृक्षके अंकुरके समान बड़े होने लगे. नौ हाथ ऊँचे शरीर वाले, मेरुके जैसे धीर तथा नील कमलके जैसे शरीरके वर्ण वाले वे यौवना-वस्थाको प्राप्त हुए. कुशस्थल नगरके स्वामी प्रसेनजित् राजाकी प्रभावती नामकी पुत्री श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको परणाई गई, जिसके साथ विषय सुख भोगते हुए स्वामी सुख-पूर्वक निवास करने लगे। एक समय गवाक्षमें बैठे

हुए पार्श्वनाथ कुमारने जव नगरके लोगोंको पकान्नादि भोजन थालों में रखकर नगरसे वाहर जाते हुए देखे, तव सेवक से पूछा. उसने कहा—स्वामिन् ! उद्यानमें कमठ नामका पंचाग्नि साधक महा तापस आया है जिसे नमस्कार करनेको ये लोग जाते हैं. उस समय स्वामीने ज्ञानसे जाना कि यह तो जन्म दरिद्री ब्राह्मणका कमठ नामक पुत्र है, बालकपनमें जिसके माता—पिता मरे, जिसको लोगोंने बडा किया और जो क्षुधादि दुःखसे पीड़ित होकर, तापसी दीक्षा लेकर आया है—यह निर्दयी, अज्ञानी, क्रोधादि कषायोंसे युक्त है, ऐसा विचार कर भी स्वामी चुप रहे. उसी समय वामारानीने अन्य लोगों के आग्रहसे तापसके देखनेकी इच्छा प्रगट की. वैठनेको हाथी तैयार किया गया. श्रीपार्श्वकुमार भी, माताके कहने से और जीवरक्षाका लाभ जानकर, हाथीपर वैठकर माता के साथ चले. तापसने, यह वार्त्ता सुनकरके कि वामारानी पार्श्वकुमारके साथ मुझे नमस्कार करनेको आती है, और भी बड़े २ काष्ठों का समूह चारों दिशाओंमें जलाया, पांचवाँ सूर्य्य अग्नि जैसा ऊपर तपे, बीचमें वह स्वयं वैठा. स्वामीके साथ नगरके बहुतसे लोग आश्चर्य देखनेको आये. तीन ज्ञानसे विराजमान् भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी जीव-हिंसा देखकर बोले—अहो तपस्वी ! तुम्हारा यह तप अज्ञानतासे युक्त है, अज्ञानियों को तपमें बहुत

कष्ट होता है और फल थोडा मिलता है, दयाहीन अज्ञानीका तपश्चरणादि सब धर्म निष्फल है:—

कृपा महानदी तीरे, धर्माः सर्वे तृणांकुराः ॥ तस्यां शोषमुपेतायां, कियन्नन्दन्ति तेऽङ्कुराः ॥ १ ॥

दया एक बडी नदी है, जिसके किनारे पर दान, शील, तप आदि सर्व धर्म तृणांकुर समान हैं. उस कृपारूपी नदीके बढनेसे सर्व धर्म बढते हैं और सूकने पर सर्व धर्म, तृणांकुरके समान सूक जाते हैं, इसलिये दया विना सर्व धर्म-कार्य कष्टरूप ही हैं. तुम पंचाग्नितपका स्वरूप नहीं जानते, अग्नि जलानेसे पंचाग्नितप नहीं होता—यह प्रत्यक्षरूपसे छः जीवनिकाय की हिंसा है और जहाँ हिंसा है, वहाँ धर्म नहीं है, और पंचाग्नितप तो यह है:—

पंचाग्निरिन्द्रियाणां तु, विषयेन्धनचारिणां । तेषां तिष्ठति यो मध्ये, स वै पंचतयास्मृतः ॥ १ ॥

पांच इन्द्रियोंके तेवीसविषयरूपी काष्ठोंको तपरूपी अग्निसे जलाकर जो इन्द्रिय—निरोध करता है, और इन्द्रिय—निरोधसे तपस्वी बनता है, वही पंचाग्निसाधक तपस्वी है। तुमतो इसे नहीं जानते, कष्टमात्र ही करते हो, इसलिये दया-पूर्वक ज्ञानगर्भित तपःचरण करो, क्रियाहीन पुरुषका ज्ञान नष्टप्राय: है, और अज्ञानी पुरुषकी

क्रिया भी किसी कामकी नहीं है। देखता हुआ पांगुला, और दौड़ता हुआ अन्धा आगमें जल जाय और अन्धे व पांगुलेका होजाय मिलाप, तो दोनों अग्निसे निकल जावें, परन्तु दोनों अलग २ होवें तो कुछभी नहीं कर सकते. उसी तरह ज्ञान–क्रिया युक्त पुरुषका मोक्ष है, अज्ञानी अन्धे जैसा है और क्रियाहीन ज्ञान पांगुले जैसा है। अन्धेपर पांगुला बैठे, और पांगुला रास्ता बतावे और अन्धा चले, तो वांछित स्थान पर पहुंचे. पार्श्वनाथ स्वामीने तापसको इस प्रकार उपदेश दिया. इस पर तापस नाराज हुआः—

उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये। पयःपानं भुंजगानां, केवलं विषवर्धनम् ॥ १ ॥

मूर्खोंको उपदेश भी क्रोधके लिये होता है, शान्तिके लिये नहीं, सर्पोंको दूध पिलाना भी केवल जहरको बढाने वाला ही होता है. नाराज हुआ वह तापस श्रीपार्श्वनाथ स्वामीसे बोला–हे राजकुमार ! तुम शस्त्र व हाथी-घोडोंकी परीक्षामें निपुण हो और राजनीतिज्ञ हो, परन्तु धर्मनीति नहीं जानते, हम पंचाग्नितपसे इन्द्रियों का दमन करते हैं और विषयोंसे निवृत्त होते हैं। इस तपमें कौनसी जीव हिंसा है? यदि है, तो बताओ। नहीं तो व्यर्थ ही तपस्वियोंकी निन्दा क्यों करते हो? ऐसा कहने पर पार्श्वनाथ स्वामीने अपने सेवकोंसे जलते हुए एक

बडे काष्ठको निकलवाकर, कुल्हाडेसे उसे यत्नसे तुडवाकर और उसके अन्दरसे जलते हुए सर्पको निकालकर सर्व लोगोंको दिखाया, और अर्द्ध जले हुए सर्पकी थोडी आयुः जानकर स्वामीने 'ओं असिआउसाय नमः' यह पंचपरमेष्ठि मन्त्र सुनाया। प्रभुके दर्शनसे तथा उस मन्त्रके प्रभावसे वह सर्प मरकर पातालमें नागकुमार योनी में धरणेन्द्र हुआ। प्रभुका ज्ञान देखकर सर्व लोगोंने प्रभुकी प्रशंसा की और तापसकी बहुत निन्दा. लोगोंके मुखसे अपनी निन्दा और पार्श्वनाथकी प्रशंसा सुनकर वह तापस वहाँसे चल दिया. पार्श्वनाथ स्वामीसे पहले भी विरोध था, परन्तु अब अधिक हो गया. अज्ञान तप करता हुआ और भगवान्से द्वेष धरता हुआ, वह मरकर, अज्ञान तपके प्रभावसे मेघमाली देव हुआ.

एकदा वसन्तऋतुमें श्रीपार्श्वनाथ स्वामी वनमें दिनको क्रीडा करके सन्ध्या समय घर आये परन्तु वहाँ दिवारमें नेमिनाथजीका सर्व वृत्तान्त—'जिस तरह वे राजीमतीके पाणिग्रहणके वास्ते सर्व यादवोंके साथ तोरण तक आये, सर्व पशुओंको बन्धनसे छुडाया और राजीमतीका त्याग करके गिरनार पर्वत पर दीक्षा ग्रहण की इत्यादि स्वरूप' लिखा हुआ देखकर भगवान्को वैराग्य उत्पन्न हुआ. पार्श्वनाथ स्वामी अपनी प्रतिज्ञाका पालन

करने वाले, संसारमें रहते हुए भी संसारसे अलिप्त रहने वाले, सरलस्वभावी, विनीत, माता-पिताके भक्त थे, जिनके जन्मसे वाणारसी तीर्थभूमि कही जाती है, जिनके स्नानसे गंगा नदी भी सर्व पापहारिणी, पवित्र हुई है:—

परदारा—परद्रोह—परद्रव्यपराङ्मुखः। गंगाऽप्याह कदाप्यम्भो ममाऽयं पावयिष्यति ॥ १ ॥

गंगा भी ऐसा मनोरथ करती है कि परस्त्री, परद्रोह, परद्रव्यसे पराङ्मुख पुरुष मेरे पानीको कब पवित्र करेगा ? ऐसा कहनेसे गंगाभी धर्मात्मा पुरुषोंके शरीरके स्पर्शसे पवित्र होती है, फिर परमेश्वरके शरीर-स्पर्शसे पवित्र होवे, इसमें तो कहना ही क्या है ! भगवान् तीस वर्ष तक घरमें रहे. लोकातिन्क देवोंने आकर दीक्षा लेनेके लिये इस प्रकार विनती की—हे स्वामिन् ! आप जयवन्त होवें, वृद्धिको प्राप्त होवें ! हे क्षत्रीयवर वृषभ ! हे लोकनाथ ! हे प्रभो ! आप बोध पावो, संसारका स्वरूप जानो और धर्मतीर्थ प्रवृत्तक बनो ! आपकी जय हो ! *गृहस्थावाससे विरक्त पार्श्वनाथ स्वामी अवधिज्ञानसे पहले भी अपनी* दीक्षाका अवसर जानते थे, परन्तु लोकान्तिक देवोंके वचनसे सम्वत्सरी दान देकर दीक्षा लेनेको तैयार हुए. तिसकाल, तिस समयमें पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हन् प्रधान ज्ञान-दर्शनसे अपना दीक्षावसर जानकर, सोना, वगैरह धनका त्यागकर, महावीर

स्वामी के समान गौत्रीयजन वगैरहको उचित दान देकर, शीतकालके दूसरे महीनेके तीसरे पक्षकी पौषवदी ग्यारसके दिन, मध्याह्न समय विशाला नामकी पालकीमें बैठकर, जैसे श्रीमहावीर स्वामी क्षत्रीयकुन्ड नगरसे बाहर गये, वैसे ही महोत्सवसे श्रीपार्श्वनाथ स्वामी वाणारसी नगरीके मध्यमें होकर जहाँ आश्रमपद उद्यान है वहाँ आकर अशोक वृक्षके नीचे पालकी रखवाई. पालकीसे उतर कर भगवान्ने ही माला आदि आभरण उतारे, और अपने हाथसे पंचमुष्टी लोचकर, चौविहार अट्ठम सहित विशाखा नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आने पर तीन सौ राजपुरुषोंके साथ दीक्षा ली। श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके कन्धेपर इन्द्रने देवदुष्य वस्त्र रक्खा और तीन सौ स्थविरकल्पी साधुओंको चौदह उपकरण देवोंने दिये. इस प्रकार स्वामी गृहवासको छोडकर अनागार हुए। श्रीपार्श्वनाथ अरिहन्तने ८३ दिन तक लगातार शरीरकी शुश्रूषाका त्याग किया, और जो कोई उपसर्ग उत्पन्न होते, देवोंसे किये उपसर्ग, और मनुष्य या तिर्यंचोंसे किये हुए, शरीरको सुखदायक चन्दनका विलेपन, स्त्री वगैरह, और शरीरको दुःखकारी, भय उत्पादक इत्यादि सर्व उपसर्गोंको, शरीरमें शक्ति रखकर तथा मन स्थिर करके, क्षमा-पूर्वक अदीन मनसे सहन किये।

अब भगवान्‌ने तीन उपवासका पारणा कोपट–सन्निवेशमें धन्य नामक गृहस्थके घरमें परमान्नसे किया. वहाँ देवोंने पांच दिव्य प्रकट करके साढ़े बारह करोड़ सौनैयोंकी वर्षा की, छद्मस्थावस्था में विहार करते हुए, कलिकुंड पार्श्वनाथ, तथा कुर्कुटेश्वर पार्श्वनाथ और जीवितस्वामी तीर्थकी स्थापना हुई. एक समय श्रीपार्श्वनाथ स्वामी विहार करते शिव नगरी के पास तापसोंके आश्रममें आये. सूर्य्य अस्त हो गया. वहां एक जूना-कुआके पास वटवृक्ष था. स्वामी वहीं पर काउसग्गमें खड़े रहे । इसी समय कमठका जीव मेघमाली देव स्वामीको काउसग्गमें खड़े देखकर क्रोधित हुआ, और उपद्रव करने लगा। उसने पहले वैतालका रूप बनाकर अट्टहास करके भगवान्‌को डराये, पीछे सिंहके रूपसे उपसर्ग किया, बिच्छु, और सर्प बनकर डसा, ऐसे बहुतसे उपसर्ग किये, परन्तु स्वामी ध्यानसे नहीं चले । वह अत्यन्त क्रोधातुर हुआ, मेघ-घटा बनाकर काली रात्रिके समान श्याम मेघ-घटासे आकाशको ढककर प्रलय–काल सदृश मूसलधारासे मेघ वर्षाने लगा, ब्रह्माण्ड फूटे ऐसा गर्जारव हुआ, यमराजकी जिह्वा जैसी बिजलियाँ चमकने लगीं, काउसग्गमें खड़े हुए स्वामीके एक क्षणमें नाशिका तक जल आ गया, तथापि भगवान् ध्यानसे चलायमान् नहीं हुए. तब धरणेन्द्रका आसन कंपित

हुआ, धरणेन्द्रने अवधिज्ञानसे अपने पूर्व भवके गुरु भगवान्‌को उपसर्ग जानकर, पद्मावती सहित आकर, स्वामी को कंधेपर उठाकर मस्तकपर हजार फणोंका छत्र लगाया और पद्मावती–जया–विजया–वैरोट्यादि, सखियों सहित भगवान्‌के आगे दिव्य वादिंत्रों सहित आकाशमें नाटक करने लगीं. धरणेन्द्रने विचारा–ऐसी मेघवृष्टि स्वाभाविक नहीं हो सकती, कुछ उत्पात होगा. अवधिज्ञानसे मेघमाली कृत उपसर्गको भगवान्‌के साथ पहले के वैरसे जानकर धरणेन्द्र बोला–अरे दुष्ट मेघमाली ! तूने यह क्या किया ! अजाकृपाणि न्यायसे तेराही बुरा होगा–जैसे बकरीके छुरीसे गला खुजवाने पर बकरीका ही गला कटता है, उसी तरह भगवान्‌को जो तू उपसर्ग करता है, सो तेरे ही दुःखके वास्ते होगा, अथवा ये तो वीतराग कृपालु हैं, परन्तु मैं भगवान्‌का सेवक तेरा यह दुष्टपना नहीं सहूँगा। अरे ! स्वामीने तो पंचाग्नितप करते हुए तुझको अच्छा दयामय उपदेश दिया, परन्तु वह तेरे क्रोध के वास्ते ही हुआ। जैसे लवणक्षेत्रमें बरसा हुआ पानी लवण ही होता है, वैसेही भगवान्‌के अमृतरूप वचन तेरे लिये जहर रूपही हुए. धरणेन्द्रके ऐसे क्रोधके वचन सुनकर मेघमाली भयभीत हुआ, मेघमाला मिटाकर स्वामीके चरणोंमें लगा, अपना अपराध क्षमाया, सम्यक्त्व पाया और श्री पार्श्वनाथ स्वामी की मन्त्रगर्भित

स्तुति करके धरणेन्द्रके साथ वन्दना कर मेघमाली स्वस्थान गया। धरणेन्द्र भी भगवान्‌को वन्दना कर पद्मावती आदि सहित पातालमें गया, लोगोंने शिवनगरीको 'अहिच्छत्रा' नाम दिया. वहां तीर्थ स्थापना हुई. यह 'अहिच्छत्रा, पूर्व देशमें तीर्थ है। पुरुषादानीय श्रीपार्श्वनाथ अरिहन्त अनागार हुए. इर्यासमित्यादि पांच समितियों सहित, तीन गुप्तियुक्त, आत्मा भावन करते हुए ८३ दिन गये बाद ८४ वें दिनमें, उष्णकालके पहिले महीनेके पहिले पक्षकी चैत्रवदी चतुर्थीके दिन, पूर्वाह्नमें धातुकी वृक्षके नीचे चौविहार छठयुक्त विशाखा नक्षत्रमें चन्द्रका योग आने पर शुक्लध्यान धरते हुए भगवान्‌को अनन्त अर्थका ग्राहक, सर्वोत्कृष्ट केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। श्रीपार्श्वनाथ स्वामी केवल ज्ञान व केवल दर्शनसे षट्द्रव्योंके तथा लोकालोकके भाव जानने और देखने लगे. उस अवसरपर चारों निकायके देवों ने आकर समोसरण रचा और अशोक वृक्षादि अष्टमहाप्रातिहार्यकी शोभा की. चौसठ इन्द्र आये. भगवान् पार्श्वनाथ स्वामीने समवसरणमें पूर्व दिशाके सन्मुख सिंहासन पर बैठकर बारह पर्षदाके आगे चार प्रकारका धर्मोपदेश दिया. देशना सुनकर बहुतसे लोगों ने प्रतिबोध पाया. चतुर्विध संघकी स्थापना हुई।

अब भगवान्‌का परिवार कहते हैं—पुरुषादानीय श्रीपार्श्वनाथ अरिहन्तके आठ गच्छ और आठ गणधर हुए—शुभ १, आर्यघोष २, वशिष्ठ ३, ब्रह्मचारी ४, सौम्य ५, श्रीधर ६, वीरभद्र ७, यशोधर ८. इन आठों गणधरोंने पृथक् २ द्वादशांगीकी रचना की. उनके आठ गच्छ हुए. पार्श्वनाथ भगवान्‌के आर्यदिन्न आदि सोलह हजार साधुओंकी संपदा हुई. पुष्पचूला आदि अड़तीस हजार साध्वियाँ हुई. सुव्रत आदि एक लाख, चौसठ हजार श्रावक हुए. सुनन्दा आदि तीन लाख, सत्ताईस हजार श्राविकाएँ हुईं. साढ़े तीनसौ चौदह पूर्वधारी जिन नहीं परन्तु जिनके सरीखे सर्व अक्षरोंका संयोग जानने वाले हुए. श्रीपार्श्वनाथस्वामीके चौदह सौ अवधिज्ञानी, एक हजार केवली, ग्यारह सौ वैक्रीयलब्धिधारक, साढ़े सात सौ विपुलमति, तथा छः सौ ऋजुमति मनपर्यवज्ञानी, छः सौ वादी हुए और श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके हाथसे दीक्षा दिये हुए एक हजार मुनि मोक्ष गये. दो हजार साध्वियाँ मोक्ष गईं. बारह सौ पंचानुत्तर विमानवासी देव हुए। श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके दो प्रकारकी अन्तकृतभूमि हुई—श्रीपार्श्वनाथ स्वामीसे लेकर चार पट्टधारी मोक्ष गये, यह तो हुई युगान्तकृत भूमि. श्रीपार्श्वनाथ स्वामीको केवलज्ञान उत्पन्न होनेके तीन वर्ष बाद मुक्तिमार्ग शुरू हुआ, यह पर्यान्तकृत भूमि हुई।

तिस काल तिस समयमें पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अरिहन्त तीस वर्ष तक गृहवासमें रहे, तयांसी दिन छद्मस्थावस्था में, तयांसी दिन कम ७० वर्ष केवली पर्य्याय, पूर्ण ७० वर्ष चारित्र पर्याय और एक सौ वर्षका सर्वायुः पालकर वेदनीय, आयुः, नाम, गोत्र इन चार कर्मोंके क्षय होने पर तथा इस अवसर्पिणीके चौथे आरेके बहुत कुछ व्य-तीत होने पर वर्षा कालके पहिले महीनेके दूसरे पक्षकी श्रावण सुदी अष्टमीके दिन सम्मेतशिखर पर्वतके ऊपर तैंतीस साधुसाहित और चौतीसवें स्वयं भगवान् चौविहार एक महीनेका अनशन करके, विशाखा नक्षत्रमें चंद्र-माका योग आनेसे पहिले दो प्रहरमें खडे खडे ही काउसग्गमें मोक्ष गये और सर्व प्रकार के दुःखोंसे रहित हुए। पार्श्वनाथ स्वामीके मुक्ति प्राप्त होनेके बारह सौ तीस वर्षके बाद श्रीकल्प-सूत्र पुस्तकमें लिखा गया. पार्श्वना-थस्वामीके निर्वाणके अढाई सौ वर्षके बाद श्रीमहावीर स्वामी निर्वाण गये. उनके नौ सौ अस्सी वर्ष बाद कल्पसूत्र लिखा गया। इस प्रकार सर्व संघके मंगल के लिये तेवीसवें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ स्वामीके पांच कल्याणक कहे गये।

॥ इति श्रीपार्श्वनाथ स्वामी का संक्षिप्त चरित्र सम्पूर्ण ॥

अब पश्चानुपूर्वी करके बाईसवें तीर्थंकर, सर्व पाप नाशक, आबाल ब्रह्मचारी, संसार समुद्रसे तारने वाले, श्रीगिरनार तीर्थ मंडन, राजीमतीका परिहार करने वाले, शीलसन्नाहके धारने वाले, ऐसे श्रीनेमिनाथ स्वामीके पांच कल्याणक कहते हैं–तिसकाल, तिस समयमें अरिहन्त अरिष्टनेमिके पांच कल्याणक चित्रा नक्षत्रमें हुए. चित्रानक्षत्रमें देवलोकसे च्यवकर भगवान् माताकी कुक्षिमें उत्पन्न हुए १, चित्रानक्षत्रमें जन्म हुआ २, चित्रानक्षत्रमें चारित्र ग्रहण किया ३, चित्रानक्षत्रमें केवल ज्ञान पाये, ४, चित्रानक्षत्रमें मोक्ष गये ५.

अब विस्तारपूर्वक कहते हैं–तिसकाल तिससमयमें अरिहन्त अरिष्टनेमि वर्षाकालके चौथेमहीनेके सातवेंपक्ष की कार्त्तिकवदी बारसके दिन, पंचानुत्तरविमानोंमेंसे उत्तरदिशाके अपराजित नामक विमानसे, बत्तीससागरोपम का आयुः भोगकर इसी जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें शौरीपुर नगरके समुद्रविजय राजाकी शिवा–देवी नामक रानी की कुक्षिमें चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेसे उत्पन्न हुए। उस समय चौदह स्वप्नोंका देखना, भर्तार के आगे कहना, स्वप्न-लक्षण-पाठकोंसे फलका सुनना, बन्दीजनोंका छोड़ना, नगरमें उत्सव करना, इन्द्रकी आज्ञासे धनदके तिर्यक्जृम्भक देवोंके धन-धान्यकी वृष्टि करना इत्यादि सर्व कार्य्य जैसे महावीरस्वामीके समय

में हुए, वैसेही यहांभी समझ लेना. अब नेमिनाथ स्वामीका जन्म-कल्याणक कहते हैं—तिस काल, तिस समय में अरिहन्त अरिष्टनेमि वर्षाकालके पहिले महीनेके दूसरे पक्षकी श्रावणसुदी पंचमीके दिन नौ महीने साढ़े सात दिन पूर्ण होने पर, चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आने पर आरोग्यवती शिवा देवीने अरिष्टनेमि भगवान्‌को जन्म दिया। भगवान्‌के जन्मका अधिकार तो श्री महावीर स्वामीके जैसाही समझलेना, परन्तु विशेष यह है—समुद्रविजय राजाने भगवान्‌का जन्म—महोत्सव करके सर्वज्ञातिजन वगैरहको भोजन कराकर नाम देने के प्रस्तावमें शिवादेवीके चौदह स्वप्न देखने के बाद अरिष्टरत्नका एक चक्र देखा था, इस कारणसे श्रीनेमिनाथ को 'अरिष्टनेमि' नाम दिया गया अथवा लोगोंके अरिष्ट अमंगल दूर करनेके कारण अरिष्टनेमि नाम रक्खा गया। अब बाल्यावस्थामें श्रीअरिष्टनेमि कुमारको इन्द्राणी आकर रमाती, अंगूठेमें अमृत संचारण इन्द्रने किया था, जिससे भूख लगने पर भगवान् अंगूठाही चूस लेते, परन्तु सामान्य लोगों के समान माताका स्तन—पान नहीं करते. पांच धायोंसे पाले जाते हुए अरिष्टनेमि क्रमशः बड़े होने लगे. श्यामवर्ण, सर्वांग सुन्दर आकार वाले श्रीअरिष्टनेमि कुमार बालकका रूप धारण किये हुए देवों के साथ क्रीड़ा करते २ समय व्यतीत करने लगे.

अब द्वारका नगरीकी उत्पत्ति तथा सौरीपुरसे यादवोंके द्वारका आनेका स्वरूप * बतलाते हैं—

मथुरा नगरीमें हरिवंश कुलके बहुतसे राजा हुए, जिनमें से यदु नामक राजाके शूर नामक पुत्र हुआ. उसके दो पुत्र हुए—बड़ा शौरी, छोटा सुवीर. शूर राजाने बड़े पुत्र शौरीको मथुराका राज्य और सुवीर को युवराज पद देकर दीक्षा ली। शौरी राजा मथुराका राज्य छोटे भाई, सुवीरको देकर, आप कुशावर्त देश में जाकर अपने नामका शौरीपुर नगर बसाकर वहां राज्य करने लगा. शौरी राजाके अन्धकवृष्णी और सुवीर राजाके भोजकवृष्णी पुत्र हुआ. भोजक वृष्णी के उग्रसेन पुत्र हुआ. भोजक वृष्णीने उग्रसेनको मथुराका राज्य देकर दीक्षा ली। अन्धक वृष्णीके दस पुत्र हुए—समुद्रविजय १, अक्षोभ २, स्तिमित ३, सागर ४, धनवन्त ५ अचल ६, धरण ७, पूर्ण ८, अभिचन्द्र ९, वसुदेव १०. अन्धक वृष्णीने अपने बड़े पुत्र समुद्रविजयको, शौरीपुरका राज्य दिया. अन्धक वृष्णीके दो पुत्रियां हुईं—कुन्ती १, माद्री २. कुन्ती पांडु राजाको दी, माद्री दमघोषको परणाई।

---

* यहाँ पर टीकाकारने यादवों के विषयमें कृष्णजी के वासुदेव पदवी प्राप्त होने तक कुछ अधिक लिख दिया है। शीघ्र बांचने वाले इसको पूर्णतया बांचते हैं, अन्य कई महाशय इसको नहींभी बांचते—जिसको जैसा सुभीता हो, वे वैसा ही कर सक्ते हैं।

और अंधक वृष्णी ने दीक्षा अंगीकार की.

अब पांडवों की उत्पत्ति कहते हैं—श्री ऋषभदेवस्वामी के कुरु नामक पुत्र था जिसके नामसे कुरुदेश हुआ. उसके बाद असंख्यात राजा हुए, जिनमें एक राजाने हस्तिनापुर वसाया. उसके कितनेही काल बाद संभूम चक्रवर्त्ती हुआ. उसके बाद बहुतसे और राजा हुए. तदनन्तर शान्तनु नामक राजा हुआ, जिसके दो स्त्रियां थीं एक विद्याधरकी पुत्री गंगा नामकी, दूसरी नाविककी पुत्री सत्यवती नामकी. गंगा का पुत्र गांगेय हुआ, ब्रह्मचर्य पालनेसे भीष्म नाम हुआ. सत्यवतीके दो पुत्र हुए—एक चित्रांगद, दूसरा चित्रवीर्य। शान्तनु राजा चित्रांगद पुत्रको राज्य देकर परलोक गया और चित्रांगदराजा शत्रुओं के साथ युद्ध करता हुआ मरा. बादमें चित्रवीर्य राजा हुआ, जिसके अम्बिका १, अंबालिका २, अंबा ३, ये तीन स्त्रियाँ थीं. पहली अंबाके धृत-राष्ट्र नामक पुत्र था उसके गांधारी वगैरह आठ स्त्रियों के सुयोधनादि एक सौ पुत्र हुए. दूसरी अंबिका के पांडु पुत्र हुआ, पांडु राजाके दो स्त्रियाँ थी. पहली कुन्ती स्त्री के युधिष्ठिर १, भीम २, अर्जुन ३, नामक तीन पुत्र हुए. दूसरी पद्मा (माद्री) के नकुल, सहदेव दो पुत्र हुए. इस प्रकार पांडु राजाके पांच पुत्र उत्पन्न हुए.

चित्रवीर्य के तीसरी स्त्रीके विदुर नामक पुत्र हुआ, इनका विस्तार पांडव चरित्र से जान लें।

शौरीपुरमें समुद्रविजयजी राज्य करने लगे, इनके नौ भाई कुमार अवस्था में सुख से इकट्ठे रहते थे. अन्यदा समुद्रविजय राजाकी शिवादेवी रानी के चौदह स्वप्न सूचित नेमिकुमार हुआ। जब मथुरा नगरीमें उग्रसेन राजा राज्य करते थे, तब वहां पर वनमें एक तापस आया. उसके ऐसा नियम था. मासक्षमणके मध्य में पहले जो कोई आकर निमन्त्रण करे, उसी के घरमें मासक्षमणका पारणा करता, यदि निमन्त्रण करने वाला भूल जाय, तो दूसरा मासक्षमण करता परन्तु ओरके घरमें पारणा करने नहीं जाता. उस तापसने मासक्षमण प्रारंभ किया। उग्रसेन राजा क्रीडाके वास्ते वनमें आये, तापसको देखा. नमस्कार करके राजाने पारणे का निमन्त्रण दिया, परन्तु पारणे के दिन राजा तापसको भूल गया. तापसने संध्यातक बुलानेकी वाट देखी, परन्तु बुलाने को जब कोई भी नहीं आया, तब तापसने दूसरा मासक्षमण प्रारंभ किया. कितने ही दिनके बाद राजाको तापस फिर याद आया और विचार किया कि मैंने तापसको पारणा नहीं कराया, अभी जाकर निमन्त्रण करूँ. ऐसा विचार कर राजाने और भी मासक्षमणके पारणे की निमन्त्रणा की, परन्तु पारणे के

दिन फिर भी भूल गया, तब तापसने तीसरा मासक्षमण धारण किया और राजापर बहुत नाराज होकर विचार करने लगा—यह दुष्ट राजा न तो आप पारणा कराता है और न ओरों के यहाँ पारणा करने देता है, जब मैं मरूँ तब भवान्तर में इसको दुःख देने वाला होऊँ। ऐसा नियाणा करके अनुक्रमसे तापस मर कर उग्रसेन राजाकी धारिणी रानीकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ। तीसरे महीने में रानी को राजाका कलेजा खानेका दोहद हुआ. अति आग्रह से राजाके पूछने पर रानी ने दोहद कहा. मन्त्री ने बुद्धिके बलसे पूर्ण किया. रानी ने दुष्ट गर्भ जानकर उसके गिरानेको अनेक उपाय किये, परन्तु वह गर्भ नहीं गिरा. पूर्ण महीनों में पुत्र उत्पन्न हुआ, तब रानी ने राजाकी नामांकित मुद्रिका बांधकर और कांसीकी पेटी में जातमात्र बालकको रखकर यमुना नदीमें वह पेटी बहा दी. पेटी बहती २ मथुरासे शौरीपुर आई. प्रभात समय घृत, तैल, गुड, लवण बेचने वाला समुद्र नामक वणिक् शौचके वास्ते आया, पेटी को बहती हुई देखकर यमुनामें प्रवेश कर पेटी को लेकर खोला, मुद्रासहित बालकको अपनी स्त्री को दिया और लोगों से कहा कि मेरी स्त्रीके गुप्त गर्भ था सो पुत्र हुआ है, उस का कंस ऐसा नाम दिया। क्रमशः वह बालक बडा होने लगा, बच्चोंको कूटता हुआ लोगों

में दुर्दांत हुआ, जिससे लोग समुद्रवनिये को नित्य उपालम्भ देते। उस समय समुद्रने जाना कि मैं सामान्य बानिया हूं, यह बालक राज वंशी है, मेरे घरमें कैसे रहेगा— जैसे बुढ़िया के झोंपडे में सिंह नहीं समा सकता, सिंहनीका दूध सौने के पात्रके सिवाय और धातुके पात्रमें नहीं रह सकता, वैसे ही यह राजवीर्य राजा ही के घरमें शोभेगा. ऐसा विचार कर उसने कंस वसुदेव कुमारको दिया. कंस भी वसुदेवका सेवक होकर रहने लगा और वसुदेव कंसपर बहुत कृपा रखने लगे। इसी अवसरमें वसुराजाके वंशमें बृहद्रथ राजा हुआ, उसका पुत्र प्रतिवासुदेव, प्रचंड शासक जरासन्ध, राजगृह नगरीमें राज्य करता था. सर्व यादव उसकी आज्ञामें थे. उस जरासन्ध राजाने समुद्रविजयजीको दूत भेजकर कहलाया कि जो वैताढ्यपर्वत के पास सिंहपुरके राजा सिंहपल्लीपतिको जीवित बांध कर मुझे देगा, उसको मेरी पुत्री जीवयशा और वांछित नगर का राज्य दूँगा. समुद्रविजयजी सैना लेकरके सिंहपल्लीपतिको जीतनेके लिये जानेको तैयार हुए, तब स्वयं वसुदेव कुमार, समुद्रविजयजीको मना करके कंस सहित चले. वहां युद्धमें कंसने सिंह पल्लीपतिको बांधकर वसुदेवको सौंपा। पीछे से समुद्रविजयजी के कोष्टक निमित्तियेको बुलाकर जीवयशा और वसुदेवका सम्बन्ध

पूछने पर निमित्तियेने निमित्त विचार कर कहा—हे महाराज ! जीवयशा कन्या, पिता व ससुर दोनोंके कुल का क्षय करने वाली है, इसलिये विचार कर कार्य्य करना. समुद्रविजयजीने निमित्तियेको विदा किया, परन्तु उसके वचन पर विचार करके चिन्तातुर हुए—अब क्या करना ? वसुदेवने सिंह राजाको जीता सुननेमें आया है. जरासन्ध अपनी पुत्री जीवयशा, वसुदेव को देगा और जीवयशा उभय कुलका नाश करने वाली है । इतने ही में सिंहपल्लीपतिको बांधकर समुद्रविजयजीके पास आये हुए वसुदेवने समुद्रविजयजीको चिन्तातुर देख कर चिन्ताका कारण पूछा. समुद्रविजयजी ने वसुदेवसे एकान्तमें कहा—हे भाई ! जरासन्ध तुमको अपनी पुत्री देगा और वह दोनों कुलका क्षय करने वाली है, इससे मैं चिन्तातुर हूँ । वसुदेवने कहा—मैंने सिंहको नहीं बांधा, कंसनें बांधा है. समुद्र बनियेसे कंसकी उत्पत्ति पूछी गई. उग्रसेनका पुत्र जानकर नामांकित मुद्रिका सहित सिंहराजाको साथमें लेकर वसुदेव जरासन्धके पास गये और कंसकी उत्पत्ति कहकर जीव-यशा कंसको दिलाई. जरासन्धने भी कंसको जीवयशा परणाकर मांगा हुआ मथुराका राज्य दिया. कंस मथुरा जाकर और अपने पिता उग्रसेनको काष्ठके पिंजरेमें डालकर मथुराका राज्य करने लगा । पिताका दुःख

देखकर कंसके छोटे भाई, अतिमुक्तक कुमारने संसारसे विरक्त होकर दीक्षा ली।

अब वसुदेवजी के पूर्व-भवका स्वरूप कहते हैं-वसुदेव पूर्व भवमें एक ग्राममें 'नन्दीषेण' नामक कुल पुत्र था. बालकपनमें उसके माता-पिता मरे. शरीरसे कुरूप, चौकून मस्तक, बड़ा पेट, लंबे दांत और छोटे कान वाला वह मामाके घरमें बड़ा हुआ, कुरूप होनेसे सर्व स्त्रियां जिसकी निन्दा करतीं, यहाँ तक कि मामाकी कन्याने भी जब उसे अंगीकार नहीं किया, तब मरने के लिये पर्वत पर चढ़कर झंपापात करते हुए उसे साधुने मना किया और दीक्षा दी। उसके बाद वह 'नन्दीषेण' साधु सर्व साधुओंकी वैयावच्च करता हुआ मासक्षमण आदि तप करने लगा. इन्द्रने प्रशंसा की. दो देव साधुका रूप बनाकर आये-एक अतिसार रोग वाला और दूसरा छोटा साधु. अतिसारी वनमें रहा. लघुशिष्य नन्दीषेणके पास आकर बोला-तू तो पारणा करता है और रोगी साधु वनमें पडा है. तब नन्दीषेण उसी वक्त उठा, फासु जल लेकर वनमें गया, साधुको शौच कराकर और कंधेपर बैठाकर चला। अतिसारी मुनिने देवमायासे नन्दीषेणके शरीर पर अत्यंत दुर्गंधयुक्त विष्टा की, बहुत निर्भत्सना की, तोभी नन्दीषेण क्रोध रहित तथा वैयावच्चमें दत्तचित्तवाला रहा. अन्तमें देवने परीक्षा करने के

पश्चात् वन्दना करके अपने अपराधकी क्षामणा की. उसके बाद नन्दीषेण बहुत काल तक संयम पालकर, अनशन करके, जन्मान्तरमें मैं स्त्रीवल्लभ होऊँ, ऐसा नियाणा करके वहाँसे मरकर वसुदेव हुआ। साक्षात् कामदेवके जैसे रूपवान् परम सौभाग्य धारण करनेवाले वसुदेव क्रीडाके वास्ते शौरीपुरमें जहां २ और जब २ फिरते, तब २ नगरकी स्त्रियाँ ढुलते हुए घीके घडे और रोते हुए बालक आदि घरका कार्य्य छोड़कर वसुदेवके रूपसे मोहित हुई उनके पीछे २ फिरतीं. उनके पति आदि मनाकरते तोभी नहीं मानतीं. घरशून्य देखकर चौर चौरी करते. तब सर्व लोगोंने आकर वसुदेवका भ्रमण रोकनेके लिये समुद्रविजयजीसे विनति की हे महाराज ! आपके राज्यमें हमको कुछभी दुःख और भय नहीं, परन्तु वसुदेव कुमारके वारंवार नगरमें फिरनेसे स्त्रियाँ उनके रूपसे मोहित हुई घर शून्य छोड़कर उनके पीछे २ फिरती हैं और घर शून्य देख कर चौर चौरी करते हैं, इसका उपाय करो। तब समुद्रविजयजी हंसकर बोले—यह क्या बात है ? आप लोग चिन्ता न करें, आपको सुख होगा, वैसे ही करेंगे. सर्व लोग अपने २ घर गये. इसी अवसर पर वसुदेव कुमार समुद्रविजयजीको नमस्कार करनेको आये. समुद्रविजयजी, वसुदेवजीको खोलेमें बैठाकर बोले—

भाई ! आजकल शरीरसे तू दुर्बल दिखाई देता है, नगरमें बहुत फिरता है, कितने ही सज्जन होते हैं और कितनें दुर्जन, वक्त बे वक्त छल करके कुछ उत्पात कर बैठें, बहुत फिरनेसे पढ़ी हुई विद्या भी भूल जाय, इस वास्ते अब अपने आवासों में और बगीचों में ही क्रीड़ा करो, अध्ययन की हुई विद्या याद करो। तब वसुदेव समुद्रविजयजी की आज्ञानुसार घरमें ही रहते, घरमें क्रीडा करते, जिससे नगरके लोगभी शांति-पूर्वक रहने लगे। एकदा उष्णकालमें समुद्रविजयजी के शरीर में विलेपन के वास्ते शिवादेवी महारानी ने चन्दन घिसकर, सोने के कटोरे में भरकर दासी के हाथ भेजा. बीचमें वसुदेवजीने दासी के हाथमें कटोरा ढकाहुआ देखकर कहा—तेरे हाथमें क्या है ? दासी बोली—महारानीने महाराजके विलेपनके लिये चन्दन भेजा है. वसुदेवजीने थोडासा चंदन मांगा, दासीने नहीं दिया, तब जबरदस्तीसे लेकर अपने शरीरमें लगा लिया. इसपर दासी नाराज होकर बोली— ऐसा करनेसे ही तो आप बन्दीखानेमें पडे हो. पूछने पर दासी ने कहा—लोगोंने राजाके आगे आपकी शिकायत की थी, इसीलिये राजाने नगरमें आपका फिरना बन्द किया है. यह सुनकर वसुदेवने नगरके लोगों के ऊपर क्रोधकरके, राजापर अमर्ष सहित, मध्यरात्रिमें नगरसे एकाकी

निकलकर, एक अनाथ मृतकको नगरके दरवाजे के वाहर जलाकर, दरवाजे पर अपने रुधिरसे लिखा—'नगरके लोगों के और भाईके सुखके वास्ते मैं चितामें जला हूं, सर्व सुखी रहना' ऐसा करके पीछे की वाहर मिटाकर चले, प्रातःकाल पोलिये ने दरवाजा खोला, मृतक जला हुआ और वसुदेव का लिखा हुआ देखकर राजासे कहा. राजाने आकर देखा. वसुदेवका मरण जानकर राजाने और सर्व लोगों ने वडा शोक किया. जव समुद्रविजयजी भी वसुदेवके पीछे मरने को तैयार हुए, तव नगरके लोगों ने और मंत्रियों ने वहुत आग्रह-पूर्वक राज्य सिंहासन पर बैठाये. वसुदेव कुमार घरसे निकलकर प्राचीन निदानके वशसे तथा पुण्य कर्मके उदय से जहां २ गये, वहीं २ हजारों दिव्य कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया. अनेक प्रकारकी विद्या और ऋद्धि-संपदा प्राप्त की. इसी अवसरपर अरिष्टपुर नगरमें रोहक, राजाकी रोहिणी नामकी कन्याका स्वयंवर हुआ, जिसमें जरासिन्ध आदि अनेक राजाओंको कन्याके पिताने दूत भेजकर बुलाये. कंस, समुद्रविजयजी वगैरह यादवभी वहुत से राजकुमारोंके साथ आये. रात्रिमें वसुदेवको रोहिणी-प्रज्ञप्ति विद्यादेवीने आकर स्वप्नमें कहा—हे वसुदेव ! रोहिणीके स्वयंवरमें रोहिणी आपको पाणिग्रहण करेगी, प्रातःकाल रोहिणीके स्वयंवरमें मृदंग वजाने

वालेका वामन रूप बनाकर आप वहां जाना, मृदंगमें 'हे कुरंगाक्षि! आ, आ मृगीके जैसी क्या देखती है ?' ऐसा बजाना। विद्यादेवीने उसी रात्रिमें रोहिणी कन्यासे कहा—हे रोहिणी! प्रभातमें मृदंग बजाने वालेके रूपमें कुब्जवामनका रूप धरने वाला वसुदेव आवेगा. तू उसीके साथ पाणिग्रहण करना. प्रभातमें सुवर्ण के स्थंभों वाला, रत्न जटित आभूषणों की शोभायुक्त पुतलियों वाला स्वयंवर—मंडप शृंगारा गया. सिंहासनों की पंक्तिमें क्रमसे सर्व राजा बैठे. देदीप्यमान् शृंगारके धारण करने वाले सर्व राजकुमार अपने २ भद्रासनों पर बैठे. सखियोंसे परिवृत्त रोहिणी राजकन्याने सोलह शृंगार कर और पुष्पमाला हाथमें लेकर जब स्वयंवर-मंडपमें प्रवेश किया, तब सर्व लोग कन्याको देखते २ चित्रलिखितके जैसे हो गये. राजकन्या रोहिणी सती अपने पतिके सिवाय दूसरे पुरुषके सामने नहीं देखती थी, प्रतिहारीने हाथमें दर्पण लेकर उसमें राजाओंके रूप कुमारीको दिखाये और उनके वंश, आचार, गुण आदि सुनाये परन्तु राजकन्याको कोई भी पसन्द नहीं आया. देवीके वचनानुसार मृदंगवादक कुबडेके रूपमें वसुदेवको 'एहि २' इत्यादि बजाता हुआ देखकर उनके कंठमें वरमाला पहराई। इस पर कुब्जक बोला—अहो, सर्व राजाओंके रहते भी कन्याने मुझे ही वरा.

सर्व राजा रोहिणीका यह स्वरूप देखकर नाराज हुए, कितने ही राजाओंने कन्याके पिताकी निन्दा की और कितने ही ने कन्या की. कोई बोला—कन्या को मारो. कोई बोला—कन्याके पिता को मारो. कितने हीने कहा—कुवडेसे वरमाला छीन लो और उसे मारो, जिसका सेवक कुवड़े के पाससे वरमाला ले, उसका स्वामी ही राजकन्या को वरे. ऐसा सुनकर राजाओं के सेवक वरमाला लेनेको दौड़े, परन्तु उन सर्व को मृदंगका प्रहार देकर, पृथ्वीपर गिरा कर मूर्च्छित कर दिये। बादमें उन सेवकोंके राजा शस्त्र लेकर दौड़े, वसुदेव ने विद्या के बलसे सबको शस्त्र रहित करके कितने ही की दाढी-मूंछ मूंडी, और कितने ही का आधा मस्तक मूंडा, ऐसे विरूप कर सर्वको परास्त किये. जरासिन्ध राजाने समुद्रविजयजी के सन्मुख देखा तब समुद्रविजयजी बख्तर पहिन कर धनुष्य-बाण लेकर युद्ध के लिये खड़े हुए. वसुदेवजी ने विचार किया—यह मेरे बड़े भाई पिता के जैसे हैं— इनके साथ युद्ध करना युक्त नहीं है. अब मैं अपना स्वरूप भी प्रकट करूँ, बहुत काल से छिपा रहा हूँ, प्रकट होने पर युद्ध भी न होगा। ऐसा विचार कर कूबड़े के रूप और मृदंग को छोड़कर, स्वाभाविक परमसुन्दर मूल रूप प्रकट करके, वसुदेव धनुष्य लेकर समुद्रविजयजी की ओर अपने नामका एक बाण

फेंका, जिसमें 'वसुदेवः प्रणमति' ऐसे सौनेके अक्षर लिखे हुए थे। समुद्रविजयजी बाणके अक्षर बांचकर आश्चर्य- पूर्वक विचार करने लगे- वसुदेवको मरे हुए बहुत वर्ष हो गये, कोई इन्द्रजालिया होगा, मुझे भी विगोयेगा. इतने ही में वसुदेवने आकर समुद्रविजयजी के चरणों में नमस्कार किया. समुद्रविजयजी भी वसुदेवको पहिचान कर हर्ष से पूर्ण हृदय वाले हुए. जरासिन्ध वगैरह सर्व राजाभी प्रसन्न हुए. सबने कहा- रोहिणी को धन्य है ! कैसे इसने वसुदेवको पहिचान कर वरमाला डाली. महामहोत्सवसे वसुदेवका रोहिणी के साथ विवाह किया गया. जिस दिनसे घरसे निकले और जहां २ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण किया, वह सब स्वरूप वसुदेवने समुद्रविजयजी आदि राजाओं से कहा, एक कम बहत्तर हजार कन्याओं के साथ विमानमें बैठ कर घरमें आये, बादमें वसुदेवजी को कंस मित्र स्नेहसे मथुरा लाया. दोनों एकत्र रहने लगे. देवकराजाकी पुत्री देवकीका विवाह वसुदेवजीके साथ किया गया. देवकी जीवयशा के साथ क्रीड़ा करती, जीवयशा पिताके गर्वसे उन्मत्त थी. एकदा देवकी के विवाहमें, जीवयशा मद्यपान करके देवकी को कंधे पर बैठा कर नाचने लगी. उस समय कंसका छोटा भाई अतिमुक्तक कुमार साधु वहां आगया. जीवयशा दोड़

कर साधुके कंठमें लगी और कहने लगी– हे देवर ! अच्छे अवसर पर आये, अब आपको भी एक राजकन्या परणावेंगे. साधुने जीवयशासे अपनेको छुड़ाने के लिये और उसको डराने के लिये कहा–तू साधु–असाधुका विचार नहीं करती. अरे मूर्खी ! नाचती क्या है ! जिसको तूने कंधेपर उठाया है, उसका सातवां गर्भ तेरे पति और तेरे पिता दोनों को मारने वाला होगा। यह सुनकर जीवयशाने अतिमुक्तक साधुको छोड़ दिया, अपने मनमें डरी, शंकित हुई और मुनिका वचन झूठा नहीं होता, ऐसा विचार कर साधुका वचन कंससे एकान्त में कहा. कंसने भी मुनिका वचन झूठा करने तथा अपने जीवितव्यकी रक्षाके वास्ते 'जलसे पहले पाल बांधनी' इस न्यायसे इस रहस्य को जब तक कोई नहीं जाने, तब तक इसका प्रतिकार करना, ऐसा विचार किया. एकदा वसुदेवजी कंसपर संतुष्ट हुए और बोले–हे कंस ! मैं तुझसे प्रसन्न हूँ तू जो मांगेगा, वही दूंगा. कंस बोला– यदि आप संतुष्ट हो, तो देवकी के सातों गर्भ मुझको दो. वसुदेवजी ने सरल चित्तसे कंसका वचन अंगीकार किया और घर आकर देवकी से कहा. देवकीने वसुदेवजीसे अतिमुक्तक मुनिका वचन कहा और बोली–सातों बालकों को कंस मारेगा. इसपर वसुदेवजीने पश्चात्ताप किया, परन्तु वचन दे दिया, सो तो पूरा करना ही पड़े, सत्पुरुषों का

एकही वचन होता है. इसलिये विचक्षणोंको विचार कर बोलना चाहिये. अन्यथा पीछे वसुदेवजीकी तरह पश्चात्ताप करना पड़ता है। इसीसमय भद्दीलपुर नगरमें नागनामक सेठकी सुलसा नामकी नन्दुरोगवाली श्राविका मरे हुए पुत्र जनती थी. उसने हरिनैगमेषिदेव की आराधना की. वह देव तीसरे उपवासमें प्रकट हुआ और बोला– मेरा स्मरण क्यों किया ? सुलसा बोली– हे देव ! मेरा निन्दुरोग दूर करो, जिससे मैं अब जीवित पुत्र उत्पन्न करूं। देवने कहा– यह कर्मोंका फल है—मैं कर्म दूर नहीं कर सकता, परन्तु पुत्रकी तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा: मथुरानगरीमें रहनेवाली देवकीके छः बालक गुप्त रूपसे तुझे दूंगा और तेरे मरे हुए पुत्र देवकीको दूंगा. ऐसा कहकर देव गया। दैवयोगसे एकही वक्तमें दोनोंके गर्भाधान और पुत्रका जन्म हुआ. हरिनैगमेषि देवने देवकी के जीवित पुत्रको सुलसाके पास और सुलसाका मरा हुआ पुत्र देवकी के पास रक्खा. जब पुत्रका जन्म–समय नजदीक आता, तब कंसके सेवक पास रहते, जन्म होनेपर वे मरा हुआ बालक कंसको देते। कंस भी शिलापर पछाड़ कर मारता। इस रीतिसे देवकीके छःओं जीवित पुत्र सुलसा को दिये गये और सुलसाके मरे हुए छःओं पुत्र कंसने मारे. देवकीने पूर्व भवमें सौत (सौक) के रत्न चुराये थे इसी कारणसे इस

भवमें जन्मसे ही पुत्रोंका वियोग हुआ. अनीकयशा १, अनन्तसेन २, विजितसेन ३, निहितारी ४, देवयशा ५, शत्रुसेन ६, देवकी के ये छः पुत्र सुलसाके यहां बड़े हुए. उसके बाद सात स्वप्नोंसे सूचित सातवाँ गर्भ पंचम देवलोकसे च्यवकर देवकीकी कुक्षिमें उत्पन्न हुआ. जब कंसके सेवक पहरेदार पुत्र ग्रहण करने को बैठे, तब देवकीने वसुदेवजीसे कहा—हे स्वामिन्! कोई उपाय करके इस उत्तम गर्भकी रक्षा करनी चाहिये. जब देवकी का विवाह हुआ था, तब देवक राजाने नन्दगोप और यशोदाको दायजे में दिये थे. यशोदाके भी गर्भ था. जब देवकीके कृष्ण पुत्र हुआ, तब श्याम अंग होनेसे कृष्ण २ ऐसा कहा गया. उसी समय यशोदाके पुत्री हुई. कंसके सेवकों को कृष्णजीके अंगरक्षक देवोंने निद्रा दी. वसुदेवजी कृष्णजीको गुप्त रीतिसे ढककर मथुरा से निकले और दरवाजेके पास काष्ठके पिंजरे में रहे हुए उग्रसेन राजाको बालक दिखाकर कहा—आपका काष्ठका पिंजरा तोड़ने वाला यह बालक होगा. ऐसा कहकर वसुदेवजी आगे चले, कृष्णजीके अंगरक्षक देवों द्वारा खुले हुए दरवाजेसे निकलकर, यमुनाके पार, नन्दगोपके घरमें जाकर कृष्णजी यशोदाको दिये, यशोदाकी तत्काल में जन्मी हुई पुत्रीको लेकर, अपने घर आकर, देवकीके पास रक्खा. पहरेवाले जागे, और पूछा— देवकीके

क्या हुआ? वसुदेवजी ने कहा—पुत्री. कंसने उस कन्याको लेकर और उसका एक नाक छेदकर वापिस दिया,* और निश्चन्त हुआ. वसुदेवजीने भी कृष्णजीकी बहुत भोलावना नन्द—यशोदा को दी. कृष्णजी भी यशोदा द्वारा पाले जाते हुए सुखसे बड़े होने लगे. देवकी कृष्णजीको देखनेके वास्ते गोपूजन, वच्छद्वादशी वगैरह पर्वका मिस करके पक्ष २ में, मास २ में यशोदाके घर जाती, कृष्णजीको खोलेमें बैठाकर स्तनपान कराती, ऐसे कृष्णको रमा कर अपने घर आती. वसुदेवजी देवकीको मना करते—हे प्रिया! बारंबार गोकुलमें जाना ठीक नहीं— यदि कंस जानेगा तो कुछ उत्पात करेगा। जब कृष्णजी सात आठ वर्षके हुए, तब कला—अभ्यासके वास्ते रोहिणी के पुत्र, बलभद्रजीको, जिसको कंसने नहीं देखाथा, कृष्णजी के पास रक्खा. बलभद्रसे कृष्णजी के गुप्त रखनेका कारण कहा गया. बलभद्र और कृष्ण दोनों नन्दके घरमें रहने लगे, कृष्णको बलभद्र विद्या पढ़ाते और कला सिखाते गोप—गोपियोंके साथ गान करते, नृत्य करते, नील-पीत वस्त्र धारण करते, मस्तकपर मोरपिछ बांधते, बंशरी वजाते, दिनमें क्रीडा करके सन्ध्या समय घर आते, इसप्रकार कृष्णजी चौदह वर्ष के हुए

* शिव शासनमें ऐसा भी कहा गया है कि कंसने उस कन्याको भी शिला पर पछाड़ कर मारा और वह मरकर बिजली हुई।

इसी अवसरपर कंसने एकनासा कन्याको देखा, मनमें उदास हुआ और एकान्तमें निमित्तिये से पूछा— साधुका वचन सत्य है अथवा असत्य, और मेरा वैरी जीवित है या मर गया. निमित्तियेने कहा—आपका वैरी जीवित है मरा नहीं, जो कालीयनागको वशमें करेगा, केसी नामक घोडेका दमन करेगा, मेष नामक गधे को मारेगा, अरिष्ठनामक सांडको जीतेगा, तथा स्वयंवरमें सारंगधनुषको चढावेगा, चाणूर—मोष्टिक मल्लको मारेगा और नगरके दरवाजे पर चंपोत्तर—पद्मोत्तर हाथियोंको मारेगा, वही आपका मारने वाला होगा. इन कार्यों से अपने शत्रुको पहिचानो. निमित्तिये को विदा कर कंसने शत्रुको देखनेका उपाय विचार करके यह उद्-घोषणा की—जो कोई शारंग धनुषको चढ़ावेगा, उसको मैं अपनी बहिन सत्यभामा परणाऊँगा. उद्घोषणा सुनकर बहुतसे राजा आये. इसी अवसर पर वसुदेवजीका बलवान् पुत्र अनादृष्टि भी धनुष चढ़ानेके लिये आता हुआ रात्रिको गोकुलमें रहा, बलभद्रजीने जिसकी बहुत सेवा की. प्रभातमें बलभद्रजीसे अनादृष्टि बोला— हमको गोकुलसे मथुराका मार्ग दिखाने वाला दो. बलभद्रजीने कृष्णजीको भेजा. मार्गमें अनादृष्टिका रथ वृक्षोंमें फँस गया. अनादृष्टि रथको न निकाल सका. यह देखकर कृष्णजीने लातके प्रहारसे वृक्ष उखाड़ दिये और

रथको चलाया. अनादृष्टि, कृष्णजीको बलवान् देखकर रथमें बैठाकर मथुरा ले गया. वहां पर अनादृष्टिने सारंग धनुष चढ़ानेको हाथ लंबे किये, परन्तु देव-प्रभावसे वापिस गिरा। अनादृष्टिको गिरा हुआ देखकर सर्व हँसे. कृष्णने अनादृष्टिका हास्य देखकर, धनुष लेकर लीलासे ही चढ़ा दिया. पास खड़ी हुई सत्यभामाने दर्शनमात्र से कृष्णको वरा. इसपर वसुदेवजी अनादृष्टिपर नाराज होकर बोले-गोकुलसे कृष्णको किस वास्ते लाया ? जा, गोकुलमें कृष्णको पहुंचा दे. उसी समय वसुदेवजीने कृष्णको गोकुल में रखनेका रहस्य अनादृष्टिसे कहा. अनादृष्टिने कृष्णको गोकुलमें पहुंचा दिया. इतने कालतक कृष्णजीने यह नहीं जाना था कि बलभद्र मेरा भाई है, परन्तु जब कृष्णजी सौलह वर्षके हुए तब बलभद्रजी कृष्णजीको सर्व सम्बन्ध बतानेकी इच्छा करने लगे। इसी अवसर पर कंसने केशीनामक घोड़ा, खर नामका बकरा, अरिष्ट नामक बैल छोड़े, जिनको गोकुल में उपद्रव करते देखकर कृष्णजीने मारे. उसके बाद कंसने मल्लअखाडा मांडा. चारों ओरसे मल्ल आये, जिनमें चाणूरमल्ल, मुष्टिकमल्ल नामी थे. कंसने सोचा-आज शत्रुको देखूंगा, जब सारंग धनुष चढ़ाया, तब अच्छी तरह नहीं देख सका, जल्दी चला गया था, अब किसी प्रकार देखकर मारूँ. ऐसा विचार कर कंसने मल्ल

तैयार किये, और अपने सेवकोंको बुलाकर अपनी रक्षाके वास्ते अपने पास रक्खे. यादव भी कंसका छल जान कर एक तरफ़ मिलकर सभामें रहे. मल्ल–युद्धका कौतुहल सुनकर कृष्णजी बलभद्रजीसे बोले–हे स्वामिन्! आज मथुरा जाकर मल्लयुद्धका कौतुक देखें. बलभद्रजीने हां भरी, विचार किया–मथुरामें जावें और कंसके साथ युद्ध हो जाय तो कृष्णसे सर्व बात कहूं. ऐसा विचार बलभद्रजी यशोदासे बोले–गरम जल स्नानके वास्ते दो, स्नान करके मथुरा जावें. जब गृहकार्य में व्यग्रचित्त यशोदाने बलभद्र का वचन नहीं सुना, तब नाराज होकर बोले—अरे यशोदा! तू दासीपना भूल गई. मेरे भाई, कृष्णको पालकर तू क्या रानी हो गई, जो हमारा वचन नहीं सुनती है? ऐसा कहकर बोले–हे भाई! चलो, यमुनामें स्नान करके मथुरा जायेंगे। कृष्णजी बलभद्रजीके वचनसे उदास हुए. तब मार्गमें चलते हुए बलभद्रजीने छः भाइयोंका कंसके द्वारा मारा जाना, कंस के भयसे नन्द–यशोदाके घरमें रहना, तेरी रक्षा व विद्याभ्यासके वास्ते वसुदेवके द्वारा मेरा तेरे पास रक्खा जाना, अपन दोनों बंधु हैं, वसुदेवजी अपने पिता हैं, देवकी तेरी माता और रोहिणी मेरी माता है इत्यादि सब स्वरूप कृष्णजीसे कहा. इसपर कृष्णजीने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं कंसको मारकर छः भाइयोंका वैर आज

ही ले लूं; तब तो मैं कृष्ण हूं. ऐसा कहकर मार्गमें यमुना नदी में कालीयनागका नाक बींधकर उसमें कमल-नाल डालकर और ऊपर बैठकर घोड़ेके जैसा फिराया। वह स्वरूप मथुरामें कंसके सहित लोगोंने सुना. वहां से राम-कृष्ण गोवालियों सहित चले. नगरका दरवाजा चंपोत्तर-पद्मोत्तर हाथियोंने रोका. सर्व गोवाल तो डरे, परन्तु राम-कृष्ण दोनों हाथियोंको मारकर और मथुरा नगरीके मध्यमें होकर मल्ल अखाडे में आये। वहां एक राजाको मंचसे गिराकर जब वे मंचके ऊपर बैठे, तब रामने कृष्णको अपना वर्ग दिखाया. कंसने भी जब हरि और बलभद्र देखे, तब चाणूरमल्ल और मुष्टिकमल्ल तैयार किये. कृष्णने चाणूरमल्लको मुष्टि से मारा, और बलभद्रने मुष्टिकमल्लको.

"दामोदरकराघात विह्वली कृत चेतसा। दृष्टं चाणूरमल्लेन शतचन्द्रं नभस्तलम्॥ १ ॥

दोनों मल्लोंका मरण देखकर कंस नाराज हुआ और बोला-ये काले सर्प किसने पाले? हे सेवकों! जाओ और नन्द-यशोदाको बांधकर लाओ, उन्हें घाणीमें पिलाऊं. कंसके ऐसा कहते ही, कृष्णजी कूदकर, 'मेरे छः भाइयोंका बैर लेऊं' ऐसा कहकर, कंसके केश पकड़कर, सिंहासनसे नीचे गिराकर मुष्टिके और पैरके प्रहारसे

मारडाला. कंस मरकर नरकमें गया. उसी वक्त सर्व यादवोंने उग्रसेन को पींजरेसे निकालकर राज्य सिंहासन पर बैठाये. तब लोगोंने पहिचाना कि ये वसुदेवजी के पुत्र राम--कृष्ण हैं. उग्रसेन राजाने कृष्णजीको सत्यभामा परणाई. कृष्णजी सौलह वर्षके और सत्यभामा तीन सौ वर्षकी थी। यादवोंने जरासिन्धका प्रभुत्व जान कर और कंसको अपना ज्ञातीय समझकर कंसकी प्रेतक्रिया करनेको जीवयशासे पूछा. जीवयशा नाराज होकर बोली--जब बलभद्र--कृष्ण आदि बहुतसे यादवोंका दाह कंसके साथ हो, तब मैं जलांजलि दूं. इसपर कृष्णजी ने जीवयशाका बहुत तिरस्कार किया. जीवयशा राजगृहीमें जरासिन्धके पास उघाड़े मस्तक रोती हुई जाकर कहने लगी. यादव कैसे उन्मत्त होगये हैं जो आपके जीते हुए आपके जमाई को उन्हों ने मारा। यह सुनकर जरासिन्ध बोला--हे पुत्री ! धैर्य्य धारण करो--जो हुआ सो तो हुआ, परन्तु यदि यादव मेरे अपराधी कृष्ण और बलभद्रको मुझे देंगे, तब तो मेरे देशमें रहेंगे, नहीं तो सर्व यादवोंका क्षय करूंगा. इस प्रकार जीवयशाको धैर्य देकर सौमा नामक एक सामन्तको उसने यादवोंके पास भेजा। वह आकर समुद्रविजयजी आदि यादवों से बोला-- हे यादवों ! जो होने वाला था, सो तो हुआ, परन्तु दोनों गोप, तुम्हारे दास, नन्द-यशोदाके पुत्र,

राम-कृष्णको बांधकर जरासिन्धके पास मेरे साथ भेजो. उनके वास्ते कुलक्षय करना नहीं, वे दोनों जरासिन्ध के अपराधी हैं, ये आपके पुत्र हैं, तोभी देनेही चाहिये यह सुनकर समुद्रविजयजी बोले—हे सौमा सामन्त! ऐसे गुणवान् और बलवान् पुत्रोंको मारने के लिये देकर हम वृद्ध कितने कालतक जीवेंगे, जो होने वाला है सो होगा. कृष्णजी बोले—अरे सौमा! पितासे पुत्रको मांगते तुझे लज्जा नहीं आती है. मैंने तो छः भाइयों में से एक भाईका वैर कंसको मारकर लिया है, पांच भाइयोंका वैर तो वाकी ही है—तू जो अपना भला चाहता है तो यहांसे चला जा, नहीं तो फल दिखाऊँगा. ऐसा सुनते ही वह डरसे चलागया. बादमें यादवोंने कौष्टुक नैमित्तियेसे पूछा—किस दिशामें हमारी जय होगी? निमित्तियेने कहा— हे यादवों! आपके कुलमें राम—कृष्ण ये दोनों महापुरुष हैं— कृष्णजीको राजा बनाओ और आप पश्चिम दिशामें जाओ, जहाँ समुद्रके किनारे सत्यभामा पुत्रोंका जोड़ा जन्मेगी. वहां रहने पर आपकी वृद्धि होगी. यह सुनकर शौरीपुरसे समुद्रविजयजी आदि ११ कुल कोटि और मथुरानगरीसे उग्रसेन आदि सात कुलकोटि यादव सब कुटुंब सहित निकल कर सौरठ देशकी तरफ चले. सौमासामन्तने जरासिन्धसे सब स्वरूप कहा. यह सुनकर जरासिन्ध प्रयान भेरी बजाकर

जब चलने ही वाला था, तब कालकुमार आदिने जरासिन्धको मनाकरके पिताके आगे प्रतिज्ञा की— आप का पुत्र कालकुमार तब ही हूँ, जब गोप-यादवोंको मारूँ. यदि आकाशमें जावें तो निसरणी लगाकर, पृथ्वी में प्रवेश करें तो खोदकर मारूं, यदि समुद्रमें प्रवेश करें तो अगस्त्य होकर सुखा दूं, अथवा जाल डालकर मारूं और अग्निमें प्रवेश करें तो मैं भी अग्निमें कूदकरके मारूंगा. ऐसी प्रतिज्ञा करके पांचसो भाइयों सहित कालकुमार शस्त्र लेकर पिताके चरणोंमें नमस्कार करके अपनी बहिनसे बोला— हे भगिनी! यादवों का क्षय करके बहनोईका वैर लेकर आऊं, तब तो मैं तेरा भाई हूं, वरना नहीं, इसपर जीवयशाने आशीर्वाद दिया—हे भाई! तू मर जाना, परन्तु यादवोंका तो क्षय कर ही देना. प्रायः जैसी होनहार होती है, वैसी ही वाणी निकला करती है. कालकुमार सैना लेकर अपने भाइयों सहित यादवोंके पीछे चला. कालकुमार और यादवोंके बीचमें एक मंजलका अन्तर रह गया. यादवोंके कुलमें श्रीनेमिनाथ स्वामी तीर्थंकर, श्रीकृष्ण महाराज वासुदेव, श्रीराम बलदेव और बहुतसे उत्तम २ पुरुष उसी भवमें मोक्षजाने वाले थे. उनके पुण्य-प्रताप से कुलदेवीने कालकुमार और यादवोंकी सैनाके बीचमें एक पर्वत बनाकर बीचमें अग्निचिता स्थापित की.

उसके पास एक बुढियाका रूप बनाकर रोने लगी. इतने ही में कालकुमारने आकर पूछा—हे वृद्धा ! यह चिता किसकी है ? इसमें कौन जलते हैं ? कुलदेवी कालकुमारको छलनेके लिये रोती हुई बोली—हे पुत्र ! कालकुमारके भयसे सर्व यादव कुटुम्ब सहित इस चितामें जले हैं— मेरी सेवा करनेको भी कोई नहीं बचा, इससे मैं भी प्रवेश करती हूँ। ऐसा कहकर उस बुढ़ियाने अग्निमें प्रवेश किया. कालकुमारने देवीके छलसे मोहित होकर और अपनी प्रतिज्ञावश कितने ही भाई और सामन्तोंके सहित खड्ग निकालकर अग्निमें प्रवेश किया. सब जल गये. सवेरे जो वचे, वे देवमायाको जानकर पीछे चले। यादव हर्षित हुए और पश्चिम समुद्रके तटपर आये, जहाँ सत्यभामाने भानु—भामर नामक जोड़ा जन्मा, नैमित्तियेके वचनसे यादव वहीं रहे. कृष्णजीने तीन उपवास करके लवण समुद्रके स्वामी सुस्थित नामक देवका आराधन किया, देव आया, कृष्णजीने अपने रहने के लिये जगह मांगी. सुस्थित देव बोला—इन्द्रकी आज्ञासे दूंगा । देवने इन्द्रसे पूछा, इन्द्रकी आज्ञानुसार धनदने सुस्थितके पाससे वारह योजन जलको हटाकर, उसकी जगह अठारह हाथ ऊंचा, वारह हाथ चौड़ा, नौ हाथ पृथ्वीमें, ऐसा सोने का कोट, रत्नोंके कांगरे, खाई और देववाटिकासे घिरी हुई साक्षात् अलकापुरी समान द्वारिका

नामकी नगरी वसाकर कृष्णजीको दी, वीचमें कल्पवृक्षकी वाड़ी सहित सात मंजलों वाला कृष्णजीका भवन, उसके पास समुद्रविजयजी आदि के प्रासाद, दूसरी तरफ़ उग्रसेन आदि के महल, और उसके पास भाइयों के घर बनाये गये. तीन दिन तक धन, धान्य और अलंकार आदि भरकर, कृष्णजी को सौंप कर धनद अपने स्थान को गया. द्वारिकामें यादव सुखसे रहने लगे. पचास वर्ष में १८ करोड़ से ५६ करोड़ उनकी संख्या होगई. इसी अवसर पर व्यौपारियों के आने जानेसे राजगृह नगरमें जरासिन्ध राजाने "यादव द्वारिकामें सुख से रहते हैं" यह वात सुनी और सैना लेकर युद्धके लिये चला. तव नारद ऋषिने जरासिन्धको कृष्णजीके ऊपर जाता हुआ जानकर, कृष्णजीको पहिले ही ख़वर दी. कृष्णजी भी सैना इकट्ठी करके पाटला पंचाशरा ग्राम तक सामने आये। दोनों सैना एक योजनके अन्तरसे ठहरी। परस्पर वड़ा युद्ध हुआ. लाखों हाथी-घोड़े-रथ-मनुष्यों की हानि हुई. युद्धमें श्रीकृष्णजी को अजय जानकर जरासंध ने जरा विद्या डाली, जिससे कृष्णजीका सर्व सैन्य रुधिर वमन करता हुआ पृथ्वीपर गिर गया. तव श्रीनेमिनाथ स्वामीके कहनेसे कृष्णजीने तेला करके धरणेन्द्रका आराधन किया. धरणेन्द्रने प्रत्यक्षमें आकर अपने देवमन्दिरसे भावि तीर्थंकर श्रीपार्श्वनाथ स्वामीकी

प्रतिमा लाकर दी. कृष्णजीने हर्षसे शंख बजाया, उस जगह प्रतिमा स्थापित की. शंख पूर्णेसे संखेश्वर तीर्थकी स्थापना हुई. श्रीनेमिनाथजीके लिये इन्द्रने मालतिसारथी सहित रथ दिया, जिसपर बैठकर नेमिनाथजीने शंख-नाद दिया, जिससे जरासन्धका सैन्य प्रयास रहित होगया. कृष्णजीने श्रीशंखेश्वर पार्श्वनाथजीकी प्रतिमाका स्नात्र-महोत्सव करके उसका जल अपने सैन्यमें छांटा. सब सैन्य सावधान हुआ। बड़ा युद्ध हुआ. जरासंधने अपना चक्र कृष्णजीको मारनेको फैंका. चक्र कृष्णजीको न लगकर उनके पास ठहर गया. कृष्णजीने वह चक्र जरासंध पर छोड़ा, जिसमें जरासंधका मस्तक कट गया. देवोंने कृष्णजीके ऊपर पुष्पोंकी वृष्टि की और कहा नवमवासुदेव कृष्णजी हुए. इस प्रकार जरासंधका सैन्य कृष्णजीके सैन्यमें मिल गया *

अब श्रीकृष्ण वासुदेव द्वारिकामें आकर सुखसे तीन खंडका राज्य करने लगे. श्रीनेमिकुमार आबाल ब्रह्म-चारीने यौवनावस्था पाई. उस समय माता सिवा देवीने कहा कि हे पुत्र ! एक कन्याके साथ पाणि-ग्रहण कर के मेरे पैरोंमें बहुको लगा, और हमें हर्षित कर. श्रीनेमिकुमार बोले— हे माता ! जब मैं अपने योग्य कन्या

* द्वारिका की उत्पाति संबंधी पृष्ट २४४ से यहां तक कोई बांचते हैं कोई नहीं भी बांचतें, जैसा जिसको सुभीता हो, वे वैसा कर सकते हैं.

देखूंगा, तव विवाह करूंगा. ऐसा कहकर उन्होंने माताको हर्षित किया. एक दिन राजकुमारों के साथ कृष्णजी की आयुधशालामें नेमिकुमारने जाकर शंख वजाया, जिसके शब्दसे और शारंगधनुप चढाया, जिसके टंकारसे सर्व लोग वधिर जैसे हो गये. पृथ्वी कांपने लगी. पर्वत हिलने लगे. समुद्रसे पानी उछलने लगा. यादव मूर्छित होगये. ब्रह्मांड भयसे विह्वल हुआ. कृष्णजीभी मनमें कांपने लगे, और विचार किया– क्या नवीन वासुदेव हुआ है? इसी समय आयुधशाला रक्षकने नेमिकुमारके सव हाल कहे. कृष्णजीने विचार किया– नेमिकुमार वलवान् है तो मेरे राज्यका स्वामी होगा. वलभद्र वोले–हे भाई! भय मत करो—यह निःरागी एक कन्याके साथभी पाणीग्रहण नहीं करता तो तुम्हारा राज्य किस वास्ते लेगा? उसी समय आकाशमें देव वाणी हुई—

यो राज्यं न समीहते गजघटाटंकारसंराजितं। नैवाकांक्षति चारुचन्द्रवदनां लीलावतीं योऽङ्गनाम् ॥
यः संसारमहासमुद्रमथने भावी च मन्थाचलः। सोऽयं नेमिजिनेश्वरो विजयते योगीन्द्रचूडामणिः ॥१॥

श्रीनेमिनाथ हाथियोंकी घटाके टंकारसे शोभित राज्यकी इच्छा नहीं करते, मनोहर चन्द्रके जैसे मुख वाली सुरूप अंगना की भी इच्छा नहीं करते, और संसाररूपी समुद्रको मथनेमें मन्थाचल समान ऐसे श्रीने-

मिनाथ स्वामी योगीन्द्रचूडामणि-विजय वाले हो. यह नेमिकुमार दीक्षा लेंगे. इसपर कृष्णजी हर्षित हुए. इसी अर्से में नेमिकुमारभी वहां आये. कृष्णजीने पूछा– हे भाई! शंख आपने बजाया. नेमिकुमार बोले–मैंने लीला से बजाया. कृष्णजी फिर बोले–मल्लयुद्धसे बलकी परीक्षा करें–अपनेमें कौन अधिक बली है. कृष्णजीने अपनी भुजा पसारी. नेमिकुमारने कमल नालके समान उसे नमा दी. नेमिकुमारने वज्रसमान अपनी भुजा फैलाई. कृष्णजीने अपने शरीरका सर्व बल लगाया, तोभी नेमिकुमारकी भुजा नहीं नमी और जैसे बन्दर शाखामें लटक जाताहै, वैसेही कृष्णजीभी भुजामें लटक गये. कृष्णजीने जाना–यह बडा बलवान् है, विवाह करेगा, तब हीनबल होवेगा. ऐसा विचारकर समुद्रविजयजी और सिवादेवीकी आज्ञासे कृष्णजी बत्तीसहजार रानी और सौलह हजार गोपियोंको संगमें लेकर वसंतऋतुमें गिरनार पर्वतपर नेमिनाथके साथ गये. नेमिकुमार रानियोंके साथ पुष्पादिसे क्रीडा करने लगे, जलकुंडमें आपसमें जल डालने लगे, परन्तु चित्तमें विकार धारण नहीं करते. रुक्मणी आदि स्त्रियां नेमिसे हँसकर बोली– हे देवर! क्या स्त्रीका उदर भरनेके भयसे विवाह नहीं करते हो– इसकी कुछ चिन्ता मत करो. आपका भाई श्रीकृष्ण आपकी स्त्रीका पोषण करेगा, आप क्या नवीन मुक्ति-

गामी हो, पहिले भी ऋषभादि तीर्थंकर विवाह करके सांसारिक सुख भोगकर पीछे दीक्षा लेकर मोक्ष गयेहैं. यह कहके कृष्णजीकी सर्व रानियाँ बोलीं-- आज विवाह करना स्वीकार करो तो छोड़ेंगे, वरना नहीं छोड़ेंगे. ऐसा कहकर कोई जल डालने लगी, कोई गुलालकी मुट्ठी डालने लगी और कोई कुछ डालने लगी. इनका इतना आग्रह करनेपरभी नेमिकुमार मौन रहे. तब सबने जाना कि नेमिने विवाह मानलिया. कृष्णजीसे भी रानियोंने विनति की कि नेमिको विवाह मनाया है. कृष्णजीने उग्रसेन राजाके घर जाकर उनकी पुत्री राजीमतीको नेमिकुमारके लिये मांगी, कौष्टिक निमित्तियेको बुलाकर लग्न दिखाया. निमित्तिया बोला-- वर्षा कालमें लग्न नहीं हो सकता. तोभी कृष्णजीके वचनसे शीघ्रतासे श्रावण सुदी छठका लग्न ठहराया. अब दोनों जगह पक्वान्न तैयार होने लगे. याचकोंके जय २ शब्द होने लगे. गीत-गान और वादित्र बजने लगे. लग्नके दिन श्रीनेमिकुमारके पीठी की, बहुमूल्य वस्त्र-आभूषणोंसे शृंगार किये गये, मस्तक पर मुकुट बांधा और इनको पट्ट हस्तिपर बैठाये, साढे तीन करोड़ कुमार बहुत जातिके घोड़ों पर सवार होकर साथमें चले, बलभद्रजी आदि दश दशार्ह आगे चले, पीछेसे सिवादेवी परिवार सहित चली. बहिन लवण उतारे, कृष्णजीभी खासा घोड़ापर बैठकर मस्तक

पर छत्र धारणकर श्वेत चंवर ढुलाते हुए साथ चले. नेमिकुमारके आगे आठ मांगलिक चले. ढाईलाख वादित्र बजे, जिनके शब्दसे कानमें पडा हुआ दूसरा शब्द सुननेमें नहीं आता. इसप्रकार बडे आडंबरसे उग्रसेन राजाके महलों के पास आने लगे. आगे ऊँचा धवल घर देखकर नेमिनाथने सारथिसे पूछा—यह घर किसका है ? सारथी बोला— स्वामिन् ! यह आपके श्वसुर उग्रसेन राजाका कैलाश—सरीखा विराजमान् राजमहल है. प्रासादके गोखडेमें अनेक प्रकारके श्रृंगार करके मेघ-घटामें बिजलीके जैसी विराजमान् राजीमती आपके सन्मुख देख रही है. इस अवसरपर स्वाभाविक सौन्दर्यसे देदीप्यमान्, आभूषणों से अधिक शोभायुक्त श्रीनेमिकुमारको आते हुए देखकर राजीमती विचार करने लगी— क्या यह इन्द्र है, चन्द्र है, क्या पातालवासी नागकुमार है अथवा मैंने जाना—यह मेरे पूर्व-भवका पति है, अथवा मेरा मूर्तिमान् पुण्य है जो तोरण बांधनेको आता है, सासु विवाह मंगल आचार करनेके लिये दरवाजे पर खड़ी है. उस समय श्रीनेमिकुमारने पशुओं की पुकार सुनकर सारथीसे पूछा—ये जीव किस वास्ते इकट्ठे किये गयेहैं. सारथी बोला—हे स्वामिन् ! आपके विवाहमें इनके मांस से भोजन होगा. नेमिकुमार उन जीवोंकी पुकार सुनकर मनमें विचार करने लगे—अहो, कानोंको कटुक इस

शब्दको सुननेमें भी असमर्थ हूँ—इस उत्सवसे क्या प्रयोजन है—जिसमें निरपराधी मारे जावें, इस विवाह-उत्सव को धिक्कार हो। इस अवसरपर राजीमती अपनी सखियों से बोली— मेरा दाहिना नैत्र फड़कता है—कुछ अमंगल होगा. सखियाँ बोली— हे भागिनी, इस मंगलके अवसर पर ऐसा वचन बोलना उचित नहीं. इसी असेंमें नेमिकुमार सारथिसे बोले— रथको पीछा फिराओ. उसी समय एक हरिण नेमिकुमारके सन्मुख देख कर रोता हुआ अपनी ग्रीवा हरिणी की ग्रीवापर रखकर यह गाथा बोला—

मा पहरसु मा पहरसु एयं मह हिययहारिणिं हरणिं ॥
सामी अज्ज मरणा वि हु दुस्सहो पियतमाविरहो ॥ १ ॥

हे स्वामिन्! मेरे हृदयको हरने वाली इस वल्लभ हरिणीको मत मारो २. आज मरनेसे भी इसका विरह दुस्सह है, इसलिये पहले मुझको मारो, तब मृगी अपने स्वामी से बोली—

एसो पसन्नवयणो तिहुअणसामी अकारणो बंधू ॥ ता विण्णवेसु वल्लह रक्खत्थं सव्वजीवाणं ॥२॥

हे स्वामिन्! यह नेमिकुमार प्रसन्न मुख कमल वाले, निष्कारण बंधु और तीन भवनके स्वामी हैं इनसे सर्व

जीवोंकी रक्षाके लिये विनति करो। हिरणी की प्रेरणासे हिरण नेमिकुमार प्रति बोला—

निज्झरणे नीरपाणं अरण्णतिणभक्खणं च वणवासो ॥
अह्माण निरवराहाणं जीवियं रक्ख रक्ख पहो ॥ ३ ॥

हे स्वामिन् ! हम निरपराधी हैं—हमारी रक्षा करो, रक्षा करो, हमारा क्या अपराध है ? हम निर्झरणेका जल पीते हैं, जंगलके तृण भक्षण करते हैं, वनमें रहते हैं, किसीका कुछ नहीं बिगाड़ते. इस प्रकार सर्व जीवों ने अपनी २ भाषामें प्रभुसे विनति की. भगवान् ज्ञानसे उनकी विनति जानकर पशुपालकों से कहने लगे— हे पशुपालको ! तुम इन पशुओं को छोडो. ऐसा कहकर सर्व जीवों को छुडाकर आप तोरणे से वापिस चले। उसी समय समुद्रविजयजी और सिवादेवी रथको रोककर बोले— हे पुत्र ! पहले हमारे मनोरथों को पूर्ण कर, एक स्त्री के साथ पाणीग्रहण कर हमको वहुका मुख दिखाकर, भोगोंको भोगकर पीछे दीक्षा लेना, तू माता-पिता का भक्त है. नेमिकुमार बोले— हे माता-पिता ! ऐसा आग्रह नहीं करना. दृढनेमि आदि आपके पुत्र आपके मनोरथ पूर्ण करेंगे. यह स्त्री मल-मूत्रकी मटकी मुझे अच्छी नहीं लगती, मुक्ति स्त्री में मेरा मन लगा है, इस

लिये इस विषयमें कुछभी कहना नहीं। यह वार्ता सुनकर राजीमती दीन वचन बोलती, भूमिपर लोटती, आंसुओं से पृथ्वी सींचती, रोती हुई निःश्वास डालकर ऐसा कहने लगी—

हा! यादवकुल दिनयर! हा! निरूवम नाह! हा जगस्सरण!
हा! करुणायरसामी! मुत्तूणमहं कहं चलिओ ॥ १ ॥

अहो यादवकुल सूर्य! निरुपमनाथ! हे जगत् शरण! हे दयाके निधान! हा! मुझको छोड़कर कैसे चले हो! राजीमती अपने हृदयको दुःखसे उपालम्भ देती है—अरे ढीठ, कठोर, निर्लज्ज, हृदय! अब तक तू क्यों जीता है. श्रीनेमिनाथ तेरा स्वामी तो तुझको छोड़कर अन्यत्र रागसे बंधा हुआ जाता है. अरे धूर्त्त! मुक्तिगणिका में तेरा राग था तो किस वास्ते मेरा पाणिग्रहण करनेको यहां आया था. इस समय राजीमतीसे सखियाँ बोली—हे राजीमती! इसने अच्छा किया, यदि विवाह करके छोडता तो ठीक नहीं करता. इस निःनेही पतिसे क्या प्रयोजन है! स्नेह सहित अन्य पति की गवेषणा करेंगे— यादवों के कुमार एकसे एक अधिक गुणवन्त हैं. यह सुनकर राजीमती हाथों से कानोंको ढककर बोली—हे सखियों! ऐसी बात फिर नहीं कहना, यदि सूर्य्य पश्चिम

में उदय हो, मेरु की चूला चले, समुद्र मर्यादा छोडे तोभी इस कायासे अन्य पति मुझे नहीं करना, इस भव में नेमिही मेरा पति है. यदि वह इस वक्त पाणिग्रहण नहीं करेगा, तोभी दीक्षाकालमें मेरे मस्तक पर हाथ रक्खेगाही. राजीमतीके ऐसे वचन सुनकर सखियाँ बोली–हे राजीमती! तू सती है. तेरेको धन्य है, तेरा जन्म प्रमाण है. राजीमती ने सखियों से कहा–हे सखियों! मैं यह दुःख सहन नहीं कर सकती. ऐसा कहकर उसने महलों में प्रवेश किया. दशदशार्ह और कृष्ण-बलभद्रादि सर्व यादव नेमिनाथको समझाने लगे–हे नेमि! ऋषभादि तीर्थंकर भी पाणिग्रहण कर सुख भोग करके पीछे दीक्षा लेकर मोक्ष गये हैं। ऐसा कोई नियम नहीं है कि बिना परणे हुए ही मोक्ष जाते हैं और परणे हुए नहीं. तब श्रीनेमिकुमार ने कहा– मेरे भोगावली कर्म नहीं है धर्म कार्यमें अन्तराय मत करो. इसी असें में लौकान्तिक देवों ने आकर भगवान् को दीक्षा लेनेकी विनति की–

हे स्वामिन्! आप जयवन्त होवें, समृद्धि को प्राप्त होवें, धर्मतीर्थ प्रवर्त्तक बनें। इस समय इन्द्रादि देव भी आकर समुद्रविजयजी आदि सर्वको समझाने लगे– यह नेमिनाथ स्वामी बाल ब्रह्मचारी हैं और दीक्षा लेकर धर्म तीर्थ प्रवर्त्तक बनेंगे– इनका दीक्षा महोत्सव करें. तब भगवान्ने सम्वत्सरी दान दिया.

अब दीक्षा का अधिकार कहते हैं:— तिसकाल तिस समयमें अर्हन् अरिष्टनेमि वर्षाकालके पहिले महीनेके दूसरे पक्षकी श्रावण सुदी छट्ठके पहले पहरमें उत्तरकुरुनामकी पालखी में बैठकर देव-असुर-मनुष्यों के समुदाय सहित द्वारिका नगरी के मध्यमें होकर निकले, रैवताचल उद्यान में आये, अशोक वृक्षके नीचे पालकी को रखवा कर पालकी से उतरकर पंचमुठि लोच किया, चौविहार दो उपवास करके चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेसे इन्द्र द्वारा दिया हुआ देवदुष्यवस्त्र कंधेपर रखकर, गृहवासको छोड़कर अनागार हुए, एक हजार पुरुषों के साथमें दीक्षा ग्रहण की और उसी समय भगवान्को चौथा मनपर्य्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ. अर्हन् अरिष्टनेमिने चौवन दिन तक शरीर की शुश्रुषाका त्याग करके जो जो उपसर्ग उत्पन्न हुए, उन सर्वको अच्छी तरह से सहन किये। इस प्रकार संयममें विचरते हुए श्रीनेमिनाथ स्वामीको पचपनवें दिन; अर्थात्— वर्षाकालके तीसरे महीने के पंचम पक्षमें आसोजवदी अमावस्याके दिन पिछले पहरमें गिरनार पर्वतके ऊपर दो उपवास सहित, चित्रानक्षत्रमें चन्द्रका योग आनेसे शुक्ल ध्यान ध्याते हुये भगवान्को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ। भगवान् सर्व पदार्थ जानने और देखने वाले हुए. वनपालकने द्वारिकामें आकर श्रीकृष्णवासुदेव को

बधाई दी। कृष्ण महाराज वंदना करने को परिवार सहित गिरनार पर्वतपर आये, तब चार निकायके देवोंने मिलकर समवसरण बनाया। भगवान्‌ने सिंहासनपर बैठकर देशना दी। राजीमती भी समवसरणमें आई थी. उस समय कृष्णजीने राजीमती के स्नेहका कारण भगवान् श्रीनेमिनाथसे पूछा. भगवान्‌ने सम्यक्त्व प्राप्तिसे लेकर आठ भवोंका सम्बन्ध कहा— पहले भवमें मैं धन यह धनवती १, दूसरे भवमें सुधर्म देवलोकमें देव—देवी २, तीसरे भवमें मैं चित्रगतिविद्याधर यह मेरी रत्नवती स्त्री ३, चौथे भवमें माहेन्द्र देवलोकमें मित्रदेव हुए ४, पांचवें भवमें अपराजित राजा, प्रियमती रानी ५, छठे भवमें ग्यारहवें आरण्यदेवलोकमें मित्रदेव ६, सातवें भवमें शंखराजा, यशोमाति रानी ७, आठवें भवमें अपराजित विमान में मित्रदेव हुए ८, नवम भवमें मैं नेमि हुआ हूँ, यह राजीमती हुई है परन्तु अब स्नेहसम्बन्ध टूटा है। ऐसे पूर्वभव सुनकर राजीमतीने दीक्षा ली। जब नेमिनाथ स्वामीने दीक्षा ली, तब रथनेमि राजीमती पर स्नेह करने लगा. उस समय राजीमती ने वमन किये हुए आहारके दृष्टान्तसे रथनेमिको समझाया. रथनेमिने भी दीक्षा ली. एक समय राजीमती साध्वियों के साथ गिरनारपर जाती थी. मार्ग में वर्षा हुई. राजीमती वस्त्र सुकाने को एक गुफामें गई. वहांपर रथनेमि पहले

सेही काउसग्ग ध्यानमें खड़ा था, राजीमतीको वस्त्ररहित देखकर बोला— हे सुन्दरी! आवो, सुख भोगें, पीछे फिर दीक्षा लेंगे. रथनेमिका ऐसा वचन सुनकर राजीमती अपने अंग-उपांग ढककर बोली— हे देवानुप्रिय! तू अन्धकवृष्णीके कुलमें उत्पन्न हुआ है, और मैं भोजकवृष्णी के कुलमें उत्पन्न हुई हूँ, अपन अगन्धन कुलमें उत्पन्न हुए सर्प के तुल्य हैं. जैसे अगन्धनकुल में उत्पन्न हुआ सर्प अग्नि में प्रवेश करे, परन्तु जहर पीछा नहीं लेवे, वैसेही तुझको मर जाना श्रेय है, परन्तु शील—खंडन करना ठीक नहीं. यदि तू रूपवती स्त्रियोंको देख कर इच्छा करेगा, तो वायुसे प्रेरित सेवाल के जैसा अस्थिर आत्मा वाला होगा। अंकुशसे जैसे हाथी वशमें होता है, उसी तरह राजीमतीने ऐसे उपदेशसे रथनेमिको संयम—मार्ग में स्थिर किया. रथनेमि चारसौ वर्ष तक घरमें रहे, एक वर्ष छद्मस्थपन में रहे, पांचसौ वर्ष केवली अवस्थामें, इस तरहसे नौ सौ एक वर्षका सर्वायुः पालकर रथनेमि श्रीनेमिनाथ स्वामी से चौवन दिन पहले मोक्ष गये. राजीमतीभी मोक्ष गई.

अब श्रीनेमिप्रभुका परिवार कहते हैं— अरिहन्त अरिष्टनेमिके अठारह गणधर हुए, वरदत्त आदि अठारह हजार अपने हाथसे दीक्षा दिये हुए साधुओं की संपदा हुई, आर्ययक्षणी आदि चालीस हजार साध्वियों की

संपदा हुई, अरिहन्त अरिष्टनेमिके नन्द आदि एक लाख उनहत्तर हजार श्रावकों की सम्पदा हुई, तीन लाख छत्तीस हजार श्राविकाओं की सम्पदा हुई, चार सौ चौदह पूर्व धारी, पन्द्रह सौ अवधिज्ञानी, पन्द्रह सौ केवल ज्ञानी, पन्द्रह सौ वैक्रीयलब्धिधारक, एक हजार विपुलमती, आठ सौ वादी, सौलह सौ पंचानुत्तरगामी, पन्द्रह सौ साधु मोक्ष गये, तीन हजार साध्वियाँ मोक्ष गई. श्रीनेमिनाथ स्वामीके आठ पट्टधारी मोक्ष गये. यह युगान्तकृतभूमि हुई. श्रीनेमिनाथ स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न होनेके बारह वर्षके बाद मुक्ति मार्ग शुरू हुआ. यह पर्य्यायान्तकृतभूमि हुई. अब भगवान्‌का निर्वाण-कल्याणक कहते हैं—तिसकाल तिस समयमें अर्हन् अरिष्टनेमि तीन सौ वर्ष कुमारावस्थामें रहे, चोवन दिन छद्मस्थावस्थामें चारित्र पालकर, कुछ कम सात सौ वर्ष केवली और एक हजार वर्षका सर्वायुः पालकर वेदनीय १, आयुः २, नाम ३, गोत्र ४, इन चार कर्मों का क्षय करके, इसी अवसर्पिणी कालके चौथे आरेके बहुत कुछ व्यतीत होनेपर, उष्ण कालके चौथे महीने के आठवें पक्षकी आषाढ सुदी अष्टमी के दिन, गिरनार पर्वत पर पांच सौ छत्तीस साधु सहित एक महीनेतक अनशन कर, चार प्रकारका आहार त्याग करके चित्रानक्षत्रके साथ चंद्र का योग आनेसे मुक्तिमें गये। अर्हन् अरिष्टनेमि के मुक्तिको प्राप्त

होने के चौरासी हजार नौ सौ अस्सी वर्ष बाद् कल्पसूत्र पुस्तक पर लिखा गया। इस प्रकार संघके मंगलके लिये श्रीपार्श्वनाथ स्वामी के और श्रीनेमिनाथ स्वामीके पांच २ कल्याणक कहे गये।

॥ इति श्रीनेमिनाथ स्वामी का चरित्र सम्पूर्ण ॥

अव पश्चानुपूर्वी से चौवीशही तीर्थंकरों के मुक्ति-गमनका अंतर काल संक्षेपसे कहते हैं:—

महावीर स्वामी के मुक्ति जानेके ढाई सौ वर्ष पहले पार्श्वनाथ स्वामी मुक्ति गये और महावीर स्वामी के मुक्ति जाने के नौ सौ अस्सी वर्ष बाद् शास्त्र लिखे गये. महावीर स्वामी के चौरासी हजार वर्ष पहले नेमिनाथजी मुक्ति गये. महावीर स्वामीके पांच लाख वर्ष पहले नमिनाथजी मुक्ति गये. नमिनाथजी के छः लाख वर्ष पहले मुनिसुव्रतस्वामी मुक्ति गये. मुनिसुव्रतस्वामी के पैंसठ लाख वर्ष पहले मल्लिनाथजी मुक्ति गये. मल्लिनाथजी से एक हजार करोड वर्ष पहले अरनाथजी मुक्ति गये. अरनाथजीके एक हजार करोड वर्ष कम एक पल्योपमका चौथाई भाग इतने काल पहले कुंथुनाथजी मुक्ति गये. कुंथुनाथजी के अर्ध पल्योपम पहले शांतिनाथजी मुक्ति गये. शांतिनाथजी से पौन पल्योपम कम तीन सागरोपम पहले धर्मनाथजी मुक्ति गये. धर्मनाथजीसे सात

सागरोपम पहले अनंतनाथजी मुक्ति गये. अनंतनाथजीसे नौ सागरोपम पहले विमलनाथजी मुक्ति गये. विमलनाथजीसे तीस सागरोपम पहले वासुपूज्यजी मुक्ति गये. वासुपूज्यजीसे चौवन सागरोपम पहले श्रेयांसजी मुक्ति गये. श्रेयांसजी से एकसौ सागरोपमसे कुछ कम, एक करोड सागरोपम पहले शीतलनाथजी मुक्ति गये. शीतलनाथजीसे नौ करोड सागरोपम पहले सुविधिनाथजी मुक्ति गये. सुविधिनाथजी से नव्वे करोड सागरोपम पहले चन्द्रप्रभुजी मुक्ति गये. चन्द्रप्रभुजीसे नौ सौ करोड सागरोपम पहले सुपार्श्वनाथजी मुक्ति गये. सुपार्श्वनाथजीसे नौ हजार करोड सागरोपम पहले पद्मप्रभुजी मुक्ति गये. पद्मप्रभुजीसे नव्वे हजार करोड सागरोपम पहले सुमतिनाथजी मुक्ति गये. सुमतिनाथजीसे नौ लाख करोड सागरोपम पहले अभिनन्दनजी मुक्ति गये. अभिनन्दनजीसे दश लाख करोड सागरोपम पहले संभवनाथजी मुक्ति गये. संभवनाथजीसे तीसलाख करोड सागरोपम पहले अजितनाथजी मुक्ति गये. अजितनाथजीसे पचास लाख करोड सागरोपम पहले श्रीऋषभदेवजी मुक्ति गये. इक्कीस हजार वर्षका पंचम आरा और इक्कीस हजार वर्षका छट्ठा आरा, इन बैंयांलीस हजार वर्ष सहित चौथा आराका एक कोटा कोटि सागरोपमका प्रमाण है और चौथा आराके तीन वर्ष साढे आठ महीने

शेष रहने पर महावीर स्वामी मुक्ति गये. इसलिये आदीश्वर भगवान् के और महावीर स्वामीके ४२ हजार, ३ वर्ष, ८॥ महीने कम एक कोटा कोटि सागरोपमका अन्तर समझना चाहिये ॥ इति छठा व्याख्यान सम्पूर्ण ॥

॥ अथ सप्तम व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

श्रीपर्युषणा पर्वणि में जिन चरित्राधिकार में पश्चानुपूर्वी करके श्रीमहावीर स्वामी के छः कल्याणक वर्णन किये. उसके बाद श्रीपार्श्वनाथ स्वामीके व श्रीनेमिनाथ स्वामीके पांच २ कल्याणक कहे, तथा चौवीस तीर्थंकरोंका अन्तर काल कहा गया। अब प्रथम तीर्थंकर श्रीऋषभदेव स्वामी के पांच कल्याणक कहते हैं- जिसमें पहले ऋषभदेव स्वामीके तेरह भवोंका वर्णन करते हैं- सम्यक्त्व प्राप्तिके अन्तरसे जितने भव किये हों, उतने भवोंकी संख्या होती है, अन्य भवोंकी कोई संख्या नहीं है. पहले भवमें धना सार्थवाह ने सम्यक्त्व पाया सो बतलाते हैं- इसी जम्बूद्वीप के पश्चिम महा-विदेह क्षेत्रमें सुप्रतिष्ठित नामक नगर में प्रियंकर नामक राजा था. उस नगरमें धना नामका एक सार्थवाह रहता था, उस सार्थवाह ने एकदा वसन्तपुर जाने के लिये साथी इकट्ठे किये, नगरमें उद्घोषणा कराई— जिस किसी को वसन्तपुर जाने की इच्छा होवे, वह हमारे साथ में आवे, हम

उनका निर्वाह करेंगे. ऐसा सुनकर बहुतसे लोग साथमें हुए, और श्री धर्मघोष सूरिजी भी पांच सौ साधुओं सहित यात्रादि निमित्त वसन्तपुर जानेका विचार करके सार्थवाहकी आज्ञा लेकर साथमें चले. साथी बहुत होने से मार्ग में थोडा २ चलना होता था. बीचमें अटवी आई. इसके बाद वर्षाकाल आया. पूर्व दिशाका वायु चलने लगा. मेघ आकाश में गर्जने लगा. बिजली चमकने लगी. नदियोंने पर्वतों से उतर कर मार्ग रोके, हरे अंकुरों से सर्व पृथ्वी रोकी गई. कीचड़से मार्ग व्याप्त हुए, जिससे सर्व साथी ऊंची जगहमें तम्बू डालकर ठहरे. धर्मघोष सूरिजीभी एक निर्वद्य पर्वतकी गुफ़ामें स्थान मांगकर सर्व साधुओं सहित धर्म ध्यान करते हुए रहे. बहुत दिन होनेसे सर्व लोगोंकी भोजन सामग्री क्षीण हो गई, और लोग अटवीमें कन्द-मूल-फलोंसे उदर-वृत्ति करने लगे. एकदा सब साथियोंका विचार करते हुए धना सार्थवाहने पिछली रात्रिमें किसी भट्टके मुखसे यह श्लोक सुना—

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं, कूर्मो बिभर्त्ति धरणीं निजपृष्ठभागे ॥
अम्भोनिधिर्वहति दुःसहवाडवाग्निमंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति ॥१॥

अंगीकार किये हुए कार्यका उत्तम पुरुष अच्छी तरह पालन करते हैं जैसे—महादेवजी ने कालकूट जहर स्वीकार

किया, जिससे उनका शरीर नीला हो गया, कच्छप पृथ्वीको अपनी पीठपर धारण करता है, और समुद्र दुःसह वाडवाग्नि को धारण करता है।

इसी तरह वडे २ पुरुष अंगीकार किये हुए को नहीं छोड़ते. यह वचन सुनकर उसे धर्मघोष सूरिजी याद आये. अहो! मेरे वचनसे वे मेरे साथ चले. मैंने उनके साथ विश्वासघात किया, उनकी आज तक खवरभी नहीं ली, अव सवेरे उनके पास जाकर अपना अपराध क्षमा कराऊं. ऐसा विचारकर प्रभातमें अपने मित्रके साथ आचार्य के पास जाकर, वन्दना कर लज्जासे मुंह नीचा करके विनति की– हे महाराज! मेरा अपराध क्षमा करो. मैंने आपकी कभी खवर भी नहीं पूछी. सव लोग क्षीण संवल हो गये, मुझको कोई आज्ञा दे. तव धर्मघोषसूरिजी वोले– हे सार्थेश! हमारी चिन्ता मत करो. हमारे सुखसे धर्म ध्यान होता है, आपके साथ वहुतसे जंगल पार करके आये हैं। तव संतुष्ट हुआ सार्थेश अपने उतारे में आहारके लिये साधुओं को ले आया. साधुओंने शुद्ध घृत देखकर ग्रहण किया. धना सार्थवाहने, शुद्ध परिणामसे घृतका दान दिया, जिससे सम्यक्त्व पाया और आत्मा निर्मल की। अव वर्षा काल जानेसे सार्थवाह वसन्तपुर गया, और धर्मघोष सूरिजीभी तीर्थयात्रा के

वास्ते सार्थवाहको धर्मलाभ देकर और सार्थवाहसे पूछकर गये। बादमें धना सार्थवाह बहुत काल तक सम्यक्त्व पालकर, अन्त अवस्थामें मनुष्यका आयुः बांधकर दूसरे भवमें उत्तर-कुरुक्षेत्र में युगलिया हुआ, जहां तीन पल्योपम का आयुः पालकर, युगलियोंका सुख भोगकर आयुः क्षयसे मरकर, तीसरे भवमें सौधर्म देवलोकमें देव हुआ. वहांसे च्यवकर पश्चिम-महाविदेह क्षेत्रमें गन्धलावती विजयमें शतबल राजा और चन्द्रकान्ता रानीके महाबल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, यह चौथा भव हुआ ॥४॥ वहां यौवनावस्थामें महा विषयी, सदा स्त्रीसमूह से परिवृत वह गीत-गान-नृत्यादि शृंगार रसमें लुप्त रहता था, जिससे उदय अस्तकी भी खबर नहीं रहती, और धर्मकार्यभी कभी नहीं करता. एकदा नाटक होरहा था. मधुरस्वरसे गीत—गान होते थे, और महाबल राजा एकाग्रचित्तसे बैठा हुआ सुन रहा था, तब सुबुद्धि नामक मन्त्री ने राजाको प्रतिबोधनेके लिये ऐसा कहा—

सव्वं विलंबियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबना ॥ सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥ १ ॥

सर्व गाना रोने जैसा है, सर्व नाटक भूत चेष्टा जैसे हैं, सर्व आभूषण भाररूप हैं, और सर्व काम दुःख रूप हैं. यह सुनकर महाबल राजा मन्त्री से बोला—हे सुबुद्धि ! अप्रसंगमें यह क्या कहा. मन्त्री बोला— हे महा-

राज ! केवलज्ञानीने मुझसे कहा है कि महाबल राजाका एक महीनेका आयुः है, इसलिये मैंने ऐसा कहा. यह सुनकर राजा डरा और मन्त्रीसे पूछा– अब क्या किया जावे ? आज तक तो मैं विषयों में ही रहा. अब आयुः थोडा है, एक महीनेमें क्या धर्म होता है ? मन्त्री बोला–एक महीनेमें बहुत धर्म हो सकता है, साधु धर्मका एक दिनभी अच्छी तरह पालने वाला मनुष्य मोक्ष जाता है, कदाचित मोक्ष नहीं जावे, तो भी वैमानिक देव तो अवश्य ही होता है. यह सुनकर, पुत्रको राज्य में स्थापित कर दीक्षा लेकर, अनशन करके पांचवें भवमें महाबल का जीव ईशान देवलोकमें स्वयंप्रभविमानमें ललितांग नामक इन्द्रका सामानिक देव हुआ, यह पांचवां भव हुआ ॥ ५ ॥ वहां अत्यंत वल्लभ स्वयंप्रभा देवी के साथ विषयसुख भोगता हुआ रहने लगा. कितनेही समय बाद स्वयंप्रभा देवी च्यवी, तब ललितांग देवने बहुत दुःख किया. यदि मनुष्यको वैसा दुःख हो तो छाती फट कर मर जावे. उस समय पूर्व भवका सुबुद्धि मन्त्री का जीव धर्म कर, मर करके उसी देवलोकमें देव हुआ था. उसने ललितांग को स्वयंप्रभाके विरहसे दुःखी देखकर कहा– तू दुःख मतकर–स्वयंप्रभा देवी से मिलाने का उपाय करूंगा. इसी समय नन्दग्राममें नागिल नामक एक दरिद्रके नागश्री नामकी स्त्री थी. उसके लगा-

तार छः पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं. घरमें दरिद्र और बहुत सी पुत्रियों का जन्म होनेसे बडा दुःख हुआ. दैवयोग से उसके सातवीं पुत्री भी हुई. तब उसने दुःख और क्रोध से उसको नाम भी नहीं दिया. लोगोंमें निर्नामिका प्रसिद्ध हुई, उसको कोई भी नहीं चाहता. काष्ठका भारा बनसे लाकर बेचकर बड़े दुःखसे निर्वाह करती. एकदा निर्नामिका काष्ठका भारा लेकर नगरमें आती थी. मार्गमें उसने युगंधर नामक केवलीको वन्दना की, धर्म सुना और पूछा— हे स्वामिन्! मेरे पति वगैरा का कुछभी सुख नहीं हुआ, इसका क्या कारण है? तब केवली ने कहा— भद्र! धर्म बिना सुख नहीं होता. जो तू सुखकी इच्छा करती है तो धर्म कर. केवलीका वचन सुनकर उसने श्रावक-धर्म अंगीकार किया, पर्व दिनमें पौषध करती, नवकार गुणती, और देव-गुरुको वन्दन आदि धर्म कार्य करती. यह देखकर लोगोंने उसे धर्मणी नाम दिया और साधर्मियोंने सहायता की, जिससे धर्मके प्रसादसे सुखी हुई. उसके बाद बहुत तप करनेसे धर्मणीका शरीर दुर्बल होगया. उसी समय स्वयंप्रभा देवी च्यवी और धर्मणीने अनशन किया, तब सुबुद्धि मंत्री देवने वहां आकर ललितांगका रूप धर्मणीको दिखा कर नियाणा कराया. धर्मणी मरकर स्वयंप्रभा देवी हुई, जिसके साथ ललितांग सुख भोग कर, आयुः पूर्ण कर च्यवकर छठे भवमें

पूर्व-महाविदेह क्षेत्र में लोहार्गल नगरके सुवर्णजंघ राजाकी लक्ष्मीवती रानीके वज्रजंघ नामक पुत्र हुआ ॥ ६ ॥ स्वयंप्रभा देवी भी च्यवकर वज्रसेन चक्रवर्ती के श्रीमती नामक पुत्री हुई. एकदा श्रीमतीने तीर्थंकरकी सभामें देव-देवियोंको देखकर जाति-स्मरण पाया, निर्नामिकाके भवसे स्वयंप्रभा के भवमें ललितांग अपने पतिका स्मरण किया. चक्रवर्ती के पूछने पर श्रीमतीने पूर्व भवका सर्व वृत्तान्त कहा. चक्रवर्तीने श्रीमतीके पूर्व-भवका पति ललितांग देव कहां उत्पन्न हुआ है, ऐसा केवलीसे पूछकर, वज्रजंघको जानकर श्रीमती वज्रजंघको परणाई ❁ अब वज्रजंघ और श्रीमती सुखसे रहने लगे. वज्रजंघ कुमारने राज्य पाया, एकदा शामको सन्ध्याका स्वरूप

❁ कोई ऐसाभी कहते हैं—श्रीमतीसे चक्रवर्तीने पूछा. तब श्रीमतीने स्वयंप्रभा देवी, ललितांग देव सम्बन्धी पूर्व भवका स्वरूप कहा और बोली—पूर्व भवका पति मिले, तो मैं पाणिग्रहण करूंगी वरना नहीं। तब चक्रवर्तीने अपनी पुत्री की प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये स्वयंवरका महोत्सव रचा. श्रीमतीने अपने पूर्व भवमें नन्दनवन, भद्रशालवन वगैरहमें प्रछन्नपने अपने पति ललितांगदेवके साथ क्रीड़ा की, वह सर्व चित्रपट पर लिखाकर रखवाया. जब स्वयंवरमें सर्व राजा इकट्ठे हुए, तब श्रीमतीने राजाओंसे पूर्व भवका स्वरूप पूछा. राजाओं ने स्वार्थके वशसे झूठा ही यथा तथा कहा. परंतु वज्रजंघ कुमारने क्रीड़ादि सर्व प्रछन्न स्वरूप, जैसा लिखा था, वैसा ही यथार्थ कहा. तब श्रीमती वज्रजंघ कुमारको परणाई गई.

देखकर वैराग्य पाकर मनमें निश्चय किया कि प्रभातमें पुत्रको राज्य देकर दीक्षा लुंगा. रात्रिमें श्रीमती सहित सोते हुए वज्रजंघ राजाको जहरके धुंआका प्रयोग करके पुत्रने मारे, दोनों मरकर सातवें भवमें उत्तर-कुरु क्षेत्रमें युगलिये हुए ॥ ७ ॥ वहाँ से च्यवकर आठवें भवमें सौधर्म देवलोक में वे दोनों मित्र देव हुए ॥ ८ ॥ देव-लोकसे च्यवकर वज्रजंघका जीव महाविदेह क्षेत्र में सुबुद्धि वैद्यका पुत्र जीवानन्द हुआ. उसके राजाका पुत्र १, मंत्रीका पुत्र २, सेठका पुत्र ३, सार्थवाहका पुत्र ४, और पांचवा श्रीमतीका जीव, उसी नगरमें एक सेठका पुत्र केसव नामक हुआ. ये पांचों ही जीवानन्द वैद्यके मित्र थे. ये छ ओं मित्र स्नेहसे साथमें रहते. एकदा मित्र वैद्यके घरमें सब बैठे थे, तब वहां एक कोढ़ी साधु आहारके लिये आये. उस मुनिको देखकर पांचों ही मित्रोंने वैद्य मित्रकी निन्दा की और कहा कि-वैद्य निर्दयी और लोभी है, जहाँ कुछ स्वार्थ देखता है, वहीं औषधी करता है, यदि वैद्य धर्मार्थी होता, तो ऐसे पुण्यवान् साधुकी औषधि करके वैयावच्च करता. यह सुनकर वैद्य बोला-मेरे घरमें लक्षपाक तैल है, परन्तु रत्न कम्बल और गोशीर्ष चन्दन नहीं है. ये दोनों चीजें होवें, तो मैं इन साधुका उपचार करूं. यह सुनकर, अढ़ाई लाख सोनैये लेकर छ ओं मित्र वृद्ध सेठकी दुकान पर

गये. सेठको सौनैये देकर रत्न कम्बल और गोशीर्ष चन्दन मांगा. सेठने पूछा—क्या कार्य है ? उन्होंने कहा—रत्न कम्बल व चन्दनसे रोगी साधुकी वैयावच्च करना है. यह सुनकर, उनकी प्रशंसा करके, वह धन धर्मार्थ देकर, साधुके लिये रत्न कम्बल और चन्दन देकर सेठ स्वयं दीक्षा लेकर अन्तकृत केवली होकर मोक्ष गया। वे छओं मित्र औषधिकी सामग्री लेकर, वनमें काउसग्गमें रहे कोढ़ी साधुके पासमें गये और उनकी आज्ञा मांग कर, चर्मके ऊपर उनको सुलाकर वैद्यने लक्षपाक तैलका मर्दन किया, चन्दनका विलेपन किया और इसके बाद शरीर पर रत्न कम्बल लपेट दिया. पहले मर्दनकी गर्मीसे चर्ममें रही हुई क्रमियाँ चन्दनकी ठंडकसे रत्न कम्बलमें आकर लगीं. उन क्रमियोंको वैद्यने दयासे एक गायके कलेवरमें डालीं. इसी प्रकार दूसरे मर्दन से मांसमें रहे हुए कीड़े निकले, तीसरे मर्दनसे हाडमींजीके अन्दर रहे हुए कीड़े निकले, इसके बाद संरोहिणी औषधिका विलेपन करके सब छिद्र बंद कर दिये, साधुका शरीर सौने जैसा होगया. इस प्रकार साधुको पीड़ारहित करके वे अपने घर आये. रत्न कम्बलको बेचकर उसका धन सातक्षेत्रोंमें खर्च किया. उसके बाद छओं मित्रोंने दीक्षा ली, यह नवमां भव हुआ ॥९॥ निरतिचार चारित्र पालकर बारहवें देवलोकमें छओं मित्र

देवपने उत्पन्न हुए, यह दशवां भव हुआ ॥१०॥ वहाँसे च्यवकर ग्यारहवें भवमें पूर्व-महा-विदेहमें पुण्डरीकीणि नगरीके वज्रसेन राजाकी धारिणी नामक रानीके अनुक्रमसे पांच पुत्र हुए, जिसमें जीवानंद वैद्यका जीव चौदह स्वप्न सूचित वज्रनाभ नामा चक्रवर्ती हुआ १, राजाके पुत्रका जीव बाहु २, मंत्रीके पुत्रका जीव सुबाहु ३, सेठके पुत्रका जीव पीठ ४, सार्थवाहके पुत्रका जीव महापीठ ५, और छट्ठा निर्नामिका का जीव भी एक राज पुत्र हुआ था. वह वज्रनाभ चक्रवर्तीका अतीव प्यारा सारथी हुआ. इस प्रकार छओं जीव सुखसे रहने लगे. अब वज्रनाभ चक्रवर्तीके पिता वज्रसेन राजा वज्रनाभको राज्यदेकर, लौकान्तिक देवोंके वचनसे सम्वत्सरी दान देकर, दीक्षा लेकर, कर्मक्षयकर, केवल ज्ञान उत्पन्न कर और तीर्थंकर पद प्राप्तकर, विहार करते हुए पुण्डरीकीणि नगरी समोसरे. समवसरणमें पिता तीर्थंकरकी देशना सुनकर छओं जीवोंने दीक्षा ली. वज्रनाभ चक्रवर्ती ने चौदह पर्व पढ़े, और पांच साधुओंने ११ अंग पढ़े. बाहु साधु; पांचसौ साधुओंको आहार-पानी लाकर देते, सुबाहु; साधुओंकी वैयावच्च करते, पीठ-महापीठ स्वाध्याय करते. बाहु-सुबाहुकी गुरु प्रशंसा करते, इन मुनिओंको धन्यहै साधुओंकी वैयावच्च करते हैं. तब पीठ-महापीठ ईर्षा करते, हम स्वाध्याय करते हैं तोभी गुरु

हमारी प्रशंसा नहीं करते, गुरुभी स्वार्थी हैं. वज्रनाभ चक्रवर्ती मुनिने बीस-स्थानक का सेवन करके तीर्थंकर नाम-कर्म उपार्जन किया. बाहुसाधुने साधुओंको आहार—पानी लाकर देनेसे भोगफल कर्मबांधा. साधुओंकी वैयावच्च करके सुबाहु साधुने बाहुबलकर्म उपार्जन किया. पीठ-महापीठने गुरुसे कपट करके स्त्री वेदकर्म उपार्जन किया. छट्ठा निर्नामिकाका जीव श्रेयांस होने वालाथा. ये छः जीव चारित्र पालकर सर्व सर्वार्थ-सिद्ध विमानमें देव हुए *, यह बारहवां भव हुआ ॥ १२ ॥ तेरहवें भवमें वे कहां उत्पन्न हुए, सो कहते हैं—

तिस काल, तिस समयमें अवसर्पिणी कालके तीसरे आरेके अन्तमें चौरासी लाख पूर्व, चार वर्ष, छः महीने कुछ कम समय बाकी रहनेपर श्रीऋषभदेव कौशालिकके(कौशल देशमें उत्पन्न हुए इसलिये कौशालिक कहेजाते हैं) चार कल्याणक उत्तराषाढा नक्षत्रमें हुए, और पांचवां कल्याणक अभिजित् नक्षत्रमें हुआ। उत्तराषाढा नक्षत्रमें सर्वार्थसिद्ध-विमानसे च्यवकर माताकी कुक्षिमें उत्पन्न हुए १, उत्तराषाढा नक्षत्रमें जन्म हुआ २,

---

* आवश्यक चूर्णिमें लिखा है कि आदीश्वर भगवान्का जीव वज्रजंघ सर्वार्थसिद्ध विमानमें गये पीछे छः लाख पूर्व बाद बाहु-सुबाहु आदि सर्वार्थसिद्धमें गये थे और आदीश्वर भगवान् छः लाख पूर्वके हुए तब भरत—बाहुबली आदि पुत्र हुए थे।

उत्तराषाढा नक्षत्रमें दीक्षा ली ३, उत्तराषाढा नक्षत्रमें केवलज्ञान उत्पन्न हुआ ४, और अभिजित् नक्षत्रमें निर्वाण हुआ. इस प्रकार संक्षेपसे श्रीऋषभदेव स्वामीके पांच कल्याण कहे. अब विस्तारसे कहते हैं—

तिस काल, तिस समयमें श्रीऋषभदेव अर्हन् ग्रीष्मकालके चौथे महीनेके सातवें पक्षकी आषाढवदी चौथ के दिन, तैंतीस सागरोपमका आयुः पालकर, सर्वार्थसिद्ध विमानसे च्यवकर इसी जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें नाभिकुलकरकी मरुदेवा स्त्रीकी कुक्षिमें, मध्यरात्रिके समय देव संबंधी आहार और देव संबंधी शरीर छोडकर गर्भ में उत्पन्न हुए.

अब इक्ष्वाकु भूमिका स्वरूप कहते हैं—भगवान्‌से इक्ष्वाकु वंश उत्पन्न हुआ, इसलिये इक्ष्वाकु भूमि कही जाती है, उस समय नगरादि व्यवहार नहीं होता, कल्पवृक्षही सबके सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते थे. अब कुलकरोंकी उत्पत्ति कहते हैं—दक्षिण भरतार्धके तीन भाग करने, जिसमें गंगा-सिन्धुके बीचके प्रदेशमें इस अवसर्पिणीमें तीसरे आरेके अन्तमें पाल्योपमका आठवां भाग बाकी रहनेपर सात कुलकर उत्पन्न हुए, जिसमेंसे पहिले कुलकरकी उत्पत्ति कहते हैं— पश्चिम-महा-विदेह क्षेत्रमें दो बनिये आपसमें मित्र थे. उनमें एक

कपटी और दूसरा सरल था. परस्पर द्रव्य बांटने के समय कपटी सरलको वंच (ठग) कर गुप्तरीतिसे अधिक द्रव्य ले लेता, और सरल निष्कपट व्यवहार करता. इसके बाद दोनों मरकर, सरल बनिया इक्ष्वाकुभूमिमें युगलिया हुआ, और कपटी उसी जगह श्वेतहाथी हुआ. एकदा वह हाथी फिरता हुआ सरल बनिये के जीव युगलियेको देखकर, प्रीतिसे उसे अपने ऊपर बैठाकर वहाँसे चला. उस युगलियेको श्वेतहाथीपर बैठा हुआ देखकर दूसरे युगलियोंने 'विमलवाहन' नाम दिया और दोनोंको जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न होनेसे आपसमें अधिक प्रीति हुई. कुछ समय बाद हीनकालकी महिमासे कल्पवृक्ष जैसे पहले वांछित देतेथे, वैसे नहीं रहे, युगलिये परस्पर क्लेश करते, अपने २ कल्पवृक्षकी रक्षा करने लगे, एक युगलिया अपने कल्पवृक्षको छोड़कर दूसरेके कल्पवृक्षसे मांगता तो उसका स्वामी उसके साथ लड़ाई करता हुआ विमल-वाहनके पास आता, विमल-वाहन उसपर'ह'का दंड करता. विमलवाहनके हकारकी दंडनीति हुई. जब कोई कुछभी अनुचित करता तब विमलवाहन "हां तुमने ऐसा किया", ऐसा कहता, तब वह युगलिया जानता कि राजाने मेरा सर्वस्व ले लिया और वैसा कार्य्य फिर कभी नहीं करता, यह दंडनीति बहुत कुछ समय तक युगलियोंमें चली. विमल-वाहनके

नौ सौ धनुषका शरीर और चन्द्रयशा नामकी स्त्री थी। दूसरा आठ सौ धनुष्यका शरीरवाला चक्षुष्मान कुलकर हुआ, जिसके चन्द्रकान्ता नामक भार्या थी, उसकेभी हकारकी दंड नीति थी। तीसरा सात सौ धनुषका शरीर वाला यशोमान कुलकर हुआ, जिसके स्वरूपा नामक स्त्री थी, उसके भी हकारकीही नीति रही। चौथा साढ़े छः सौ धनुषका शरीरवाला अभिचन्द्र कुलकर हुआ, जिसके प्रतिरूपा स्त्री थी और मकारकी दंडनीति हुई। पांचवां कुलकर प्रसेनजित् हुआ, जिसके छः सौ धनुषका शरीर, चक्षुमती नामक पत्नी और धिक्कारकी दंडनीति हुई. छठा कुलकर मरुदेव हुआ, जिसके साढ़े पांच सौ धनुषका शरीर, श्रीकांता स्त्री और धिक्कारकी दंडनीति. सातवां सवापांचसौ धनुषका शरीर वाला नाभिकुलकर हुआ, जिसकेभी धिक्कारकी दंडनीति और मरुदेवी भार्या थी. नाभिकुलकर सुखसे रहता. जब जुगलियोंमें कोई झगडा होता नाभिकुलकर के पास जाते तब नाभिकुलकर जघन्य अपराधमें हकार, मध्यमें मकार और उत्कृष्टमें धिक्कारका दंडदेता. काल महिमासे ऐसी दंडनीतिको भी कोई २ समय युगालिये नहीं मानने लगे, उसी समय तीनज्ञानसे युक्त श्रीऋषभदेव भगवान् मरुदेवी के गर्भमें उत्पन्न हुए. देवलोकसे मैं च्यवुंगा, ऐसा जानते थे, परन्तु जिस समय च्यवे. उस समयको नहीं

जान सके और माताके गर्भमें उत्पन्न हुए वाद जान लिया कि मेरा च्यवन हुआहै. जब भगवान् देवलोकसे च्यवकर मरुदेवीके गर्भमें उत्पन्न हुए, तव मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, (प्रथम स्वप्नमें वृषभ देखा था) स्वप्न नाभि कुलकरसे कहे, नाभिकुलकरने ही अपनी बुद्धिके अनुसार स्वप्नोंका अर्थ कहा (उस समय स्वप्नपाठक नहीं थे) उसको सुनकर मरुदेवी प्रसन्न हुई।

अव भगवान्का जन्म अधिकार कहते हैं—तिसकाल तिस समयमें ऋषभदेव अर्हन् कौशलिक उष्णकाल के पहले महीनेके पहले पक्षकी चैत्रवदी अष्टमीको, नौ महीने साढे सात दिनकी गर्भस्थिति पूर्ण होनेसे, उत्तराषाढा नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेपर आरोग्यवती मरुदेवीने आरोग्यवान् श्रीऋषभकुमार पुत्रको जन्म दिया. तव ५६ दिक्कुमारियोंका आना, इन्द्रादिका जन्माभिषेकका करना, वसुधाराका वर्षाना इत्यादि देवोंके कृत्य श्री वर्धमान स्वामीके जैसेही हुए, परन्तु प्रातःसमयमें कैदी छोडने, मान, उन्मान प्रमाणोंका वढ़ाना, कर वगैरहका छोड़ना, जुसर-मूसलादि ऊंचे करने इत्यादि मनुष्योंके पुत्रजन्म-योग्य-व्यवहार नहीं था. वे जुगलिये थे. इसलिये इन्द्रादि देवोंने सर्व विधि व्यवहार किया. मरुदेवीने पहले स्वप्नमें वृषभ देखा था और ऋषभदेव

भगवान्के दोनों जंघोंमें रोमोंके वृषभोंका चिह्न देखनेसे नाभिकुलकरने "ऋषभ कुमार" ऐसा नाम दिया. भगवान् देव भवसे च्यवकर आये थे. उत्कृष्ट लावण्यको धारनेवाले, देव-देवी व इन्द्राणियोंके वृन्दसे लाल्य-पाल्य मान, सुनन्दा तथा दूसरी सुमंगला युगलिनीके साथ बड़े होने लगे, भ्रमरके जैसे केश, कमलपत्र जैसे नेत्र, पक्क बिम्ब फल जैसा ओष्ट, अनारकी फलीके जैसे दांत, तपेहुए सोनेके जैसी शरीरकी कान्ति, कमलके सुगन्ध जैसा निःश्वास, अप्रतिपाति तीन ज्ञानोंसे विराजमानं, सर्व उत्तम लक्षणोंसे युक्त ऋषभकुमार बाल्यावस्थामें रमते, माताके हृदयमें हर्ष उत्पन्न करते, मन, मन, भाषा बोलते, दूर रही हुई वस्तु लाने के लिये धीरे २ गोडा-लिये चलते हुए(ऋषभदेव) को देखकर मरुदेवीने विचार किया—हे पुत्र ! तू सर्व देव-देवियोंको वल्लभ है अत्यन्त शोभाग्ययुक्त है, तुझे देवांगनयें रमाती हैं, इंद्र द्वारा संचारण किये हुए अमृतका तू पान करता है तब मैं किस गुणसे तेरी माता होऊं. इस प्रकार भगवान् कुछ कम एक वर्षके हुए, तब इन्द्र, वंश स्थापनाके लिये हाथमें इक्षुयष्टि लेकर आया. इन्द्रको आता हुआ देखकर श्रीऋषभदेव गोडालिये चलकर शेलडीकी लकड़ी पकडकर खड़ेहुए. इन्द्रने भगवान्को इक्षु खानेकी इच्छा हुई विचारकर इक्ष्वाकु नामक वंशकी स्थापना की.

तथा अन्य तीर्थंकर बाल्यावस्थामें अंगूठा चूसकर अमृतका आहार लेते हैं पीछे अग्निपक्व आहार करते हैं, परन्तु ऋषभदेव भगवान् तो देवकुरु-उत्तरकुरु क्षेत्रसे देवोंके लाये हुए कल्पवृक्षके फलोंकाही आहार करते रहे, दीक्षा लिये बादभी वर्षी तपका पारणा इक्षुरससे हुआ. मरुदेवी ऋषभदेवजीको क्रीडाकरते हुए देखकर हृदयमें लगाकर अपने चक्षु मींचकर अन्दर देखती है—मेरा हृदय हर्षसे कितना भरा हुआ है, अब कितना भरना है, हृदय तो बाह्य दृष्टिसे नहीं देखा जाता और मैं तेरा उपकार कुछभी नहीं कर सकती. तूने तो मेरा बहुत उपकार किया है, तेरे प्रभावसे मैं सर्व देवेन्द्रोंके वंदन-पूजन-नमस्कार करने योग्य हुई हूं. इस प्रकार माता-पिताके मनोरथोंके साथ श्रीऋषभदेव भगवान् बड़े होने लगे।

अब भगवान् भोगसमर्थ हुए उस समय चारों निकायों के देव-देवियोंने और इन्द्र-इन्द्राणियोंने आकर, वरपक्षमें इन्द्रादि देव हुए. और इन्द्राणियोंने कन्याके पक्षमें होकर सुनंदा-सुमंगलाके साथ * पाणीग्रहण विधिका

---

* जिस तरह अभी विवाह संस्कार हुए बाद पतिके मरनेसे स्त्री विधवा मानी जाती है, परन्तु कुमारिकावस्थामें अगर पति मर जावे तो वह कन्या विधवा नहीं मानी जाती. इसी तरह जब तक संसारिक सुख का संयोग नहीं होता तब तक युगलियों में स्त्री पुरुष का सम्बन्ध नहीं माना जाता, किन्तु भाई बहन का सम्बन्ध माना जाता था। सुमंगला युगलनी के जन्म काल में ही युगलिया भाई के

महोत्सव किया. इन्द्रद्वारा दिखाई हुई वह विवाह-विधि अब भी लोकमें होती है. सुनन्दा-सुमंगलाके साथ श्रीऋषभदेवजीको विषयसुख भोगते हुए छः लाख पूर्व वर्ष गये, उस समय सुमंगलाने भरत-ब्राह्मीरूपी जोड़ला जन्मा, सुनन्दाने बाहुबली-सुन्दरीरूप जोड़ला जन्मा. उसकेबाद सुमंगलाने गुनपचास पुत्ररूप जोड़ले जन्में. सुनन्दाके तो एक ही पुत्र-पुत्रीका जोड़ला उत्पन्न हुआ, इसके बाद कोई सन्तान नहीं हुई। अब जैसे २ काल

मस्तक पर ताड़ वृक्ष का फल गिरने से वह अकस्मात् मर गया, उनके माता पिता भी देवलोक चले गये, अकेली सुमंगला को देखकर दूसरे युगलियों ने सुमंगला नाभिकुलकर को लाकर दी. ऋषभदेव भगवान् एक वर्ष के भी नहीं हुए थे उस समय की यह बात है, इसलिये सुमंगला दूध पीने वाली एक वर्ष से भी छोटी अवस्था की थी और उस समय सब युगलिये थे, इसलिये सुमंगला के साथ ऋषभदेव स्वामी ने पाणी-ग्रहण किया इसमें कोई दोष नहीं आसकता. तथापि अभी कई जैनी भाई सुमंगला के युगलिया भाई मरजाने से सुमंगला को विधवा समझकर ऋषभदेव भगवान् पर विधवा विवाह का आरोप लगाते हैं, यह उनकी बड़ी अन समझ है. देखो-जिस तरह भरत के साथ जन्मी हुई ब्राह्मी बहुत वर्षों तक बाल्यावस्था में भरत के साथ रही थी तो भी भरत की स्त्री नहीं मानी गई, ऐसेही बाहुबली के साथ जन्मी सुन्दरी भी बाहुबली की स्त्री नहीं मानी गई. और ऋषभदेव स्वामी ने युगलिया धर्म का निवारण करने के लिये ब्राह्मी का बाहुबली के साथ, सुन्दरी का भरत के साथ और अठानवे पुत्रों का अन्य युगलियों की बहनों के साथ पाणी-ग्रहण करवाया, इससे भरत बाहुबली आदि को परस्त्री ग्रहण करने का दोष नहीं आसकता, इसी तरह सुमंगला भी उनके मृत भाई की स्त्री नहीं मानी गई थी, जिस से ऋषभदेव स्वामी ने उनके साथ पाणी ग्रहण किया इसमें विधवा-विवाह का दोष कभी नहीं आसकता।

हीन होता गया, वैसे २ ही कल्पवृक्षोंका प्रभाव कम होता गया. जिससे युगलिये परस्पर क्रोधसे लड़ाई करने-लगे, हंकार, मकार, धिक्कारके दंडसे भी नहीं मानते, नाभिकुलकर वृद्ध होगये, जब युगलियोंने मिलकर ऋषभ-देवजी से विनती की हमारा न्याय आप करो, तब ऋषभदेवजी ने कहा—जो राजा होता है, वह न्याय करता है, मैं तो राजा नहीं हूं. तब युगलियोंने कहा—हमारे आप राजा होओ. ऋषभदेवने कहा—नाभिकुलकरसे पूछो. वह जो कहें, सो ही प्रमाण है. तब युगलियोंने नाभिकुलकरकी आज्ञासे गंगा-नदीके तटपर धूलिके ढेरपर ऋषभदेवजी को बैठाकर राज्याभिषेक करनेके लिये जल लेनेको गये. उस समय इन्द्रका आसन कंपायमान हुआ, अवधि-ज्ञानसे श्रीऋषभदेवका राज्याभिषेक का उत्सव जानकर इन्द्र आया और भगवान्‌को राज्य योग्य मुकुट, कुन्डल, हार आदि पहिना कर स्वर्णके सिंहासन पर बैठाये. युगलिये कमलनीके पत्तोंमें जल लेकर आये, ऋषभ-देवको वस्त्र-आभूषणोंसे शोभित देखकर, पैरोंकी अंगुलियों पर जल चढ़ाया. इन्द्रने उनका विवेक और विनय देखकर कहा— ये बहुत ही विनीत पुरुष हैं इसलिये यहांपर विनीता नामकी नगरी स्थापित की जावे. इसलिये लोक प्रसिद्ध विनीता नामकी नगरी स्थापित की गई, इन्द्रकी आज्ञासे धनददेवने आकर बारह योजन लम्बी

नौ योजन चौड़ी, सौ धनुष ऊँचे व पचास धनुष चौड़े आठ दरवाजे वाली सोनेके कोटसे घिरी हुई, मध्य भागमें ईशान कौनमें नाभिकुलकरके रहनेके लिये सात भूमि वाला चौकोना प्रासाद बनाया, पूर्व दिशामें वैसाही भरतके लिये, अग्नि कौनमें बाहुबलीके लिये और अठानवे कुमारोंके लिये दक्षिण दिशामें भवन बनाये, अन्य क्षात्रियोंके लिये भी यथायोग्य महल बनाये, पश्चिम दिशामें नवनारु नवकारुके घर बनाये, उत्तर दिशामें व्यौपारियोंके निवासस्थान किये, नगरीके मध्यमें एक-बीस मंजलोंका त्रैलोक्य-विभ्रमनामका प्रासाद श्रीऋषभदेवजीके रहनेके लिये एक सौ आठ जालीसहित बनाया और भी बहुत जिन मन्दिर सहित विनीता नगरी स्थापित की. जन्मसे बीसलाख पूर्व वर्ष व्यतीत हुए तब इन्द्रने राज्याभिषेक किया, देवदूष्यवस्त्र पहिनाये भगवान्‌के शरीरमें चन्दनका विलेपन किया. इस प्रकार विनीता नगरीमें श्रीऋषभदेवस्वामीको राज्यमें स्थापित करके धनद सहित इन्द्र अपने स्थान गया।

अब श्रीऋषभदेवजीने मनुष्योंके योग्य हाथी, घोडे, बैल वगैरह वस्तुओंका संग्रह किया, पीछे चार वर्णोंकी स्थापना की, नगरीकी रक्षाके लिये कोतवाल बनाये उनका उग्रवंश हुआ १, जिनको गुरुरूपसे स्थापित किये

उनका भोगवंश हुआ २, जिनको मित्र रूपसे स्थापित किये, उनका राज्यवंश हुआ ३, जिनको सेवकरूपसे स्थापित किये, वे क्षत्रिय कहलाये ४, अठारह वर्णोंकी स्थापना की, भरतके साथमें जन्मी हुई ब्राह्मीको बाहुबली के साथ परणाया, और बाहुबलीके साथ जन्मी हुई सुन्दरी भरतको परणाई. भरतने स्त्रीरत्नके लिये रक्खा. इस प्रकार श्रीऋषभदेव भगवान्ने युगलिया–धर्मका निवारण किया। अब कालके वशसे कल्पवृक्ष नष्ट प्रभाव हुए, युगलिये भूखसे बहुत दुःखी होने लगे, कन्द–मूल–फल–पत्रादि खाते वहभी पचता नहीं था, जब भगवान्ने चाँवल उत्पन्न हुए देखे तो उनको लेकर; हाथसे मसलकर, चाँवल निकालकर युगलियों को दिये, उनके खानेसेभी पेट दुःखने लगा. कल्पवृक्षके दिये हुए मनोज्ञ भोजन करने वाले युगलियोंको कच्चे अन्न-फल-फूलभी पाचन नहीं होते, तब युगलिये आकर ऋषभदेवस्वामीको अपना दुःख दिखाते. भगवान् भी उनके पेटपर अपना हाथ स्पर्श करके पीड़ारहित करते. कल्पवृक्षों के विना युगलिये अत्यन्त दुःखी हुए. उस समय वनमें अग्नि उत्पन्न हुई, पहले अठारह कोडा-कोडी सागरोपम तक भरतक्षेत्रमें बादर अग्नि नहीं था. अपूर्व निर्मल आश्चर्यकर पदार्थको देखकर युगलियोंने उसके लेनेको हाथ डाले, हाथ अग्निसे जले तब श्री

ऋषभदेवजीको अपने जले हुए हाथ दिखाये. भगवान्ने अग्निका उत्पन्न होना जानकर युगलियोंसे कहा—— अब कन्दमूल-फल-पुष्पादि अग्निमें पका कर खाना. यह सुनकर युगलिये कन्दमूलादि अग्निमें डालते, परन्तु वापिस नहीं ले सकते, वे अग्निमें ही भस्म हो जाते, तब युगलिये ऋषभदेवजीसे पुकार करते— हे स्वामिन् वह अग्नि तो हमसेभी अधिक भूखी है, हम जो पकानेको डालते हैं वह सब खाजाती है हमको वापिस नहीं देती, इस प्रकार कहकर युगलिये भूख से दुःखित अपना पेट दिखाकर रोने लगे. तब श्रीऋषभदेव स्वामी हाथी पर बैठ कर नगर के बाहर गये, युगलियों के पाससे तलाव की गीली मिट्टी मंगवाकर, हाथीके कुंभस्थलपर मिट्टीकी हांडी बनाकर, अग्निमें पका कर, उसमें जल और अन्नका प्रमाणसे पाकविधि दिखाकर भोजन तैयार करके वह भोजन युगलियोंको कराया, उसके बाद सर्वत्र पाकविधि लोगोंमें प्रकट हुई. श्रीऋषभदेव स्वामीने कुम्हारका कर्म १, लोहारका कर्म २, चित्रकारका कर्म ३, खाती (सुथार) का कर्म ४, और नाईका कर्म ५. यह पांच शिल्प प्रकट किये, इनके भी एक २ के बीस २ भेद करके सौ भेद दिखलाये. और ब्राह्मीको दक्षिण हाथसे अठारह प्रकारकी लिपियें दिखाई—हंसलिपी १, भूतलिपी २, यक्षलिपी ३, राक्षसीलिपी ४, यावनीलिपी ५, तुरकीलिपी ६,

कीरीलिपी ७, द्रविडीलिपी ८, सैंधवीलिपी ९, मालवीलिपी १०, नड़ीलिपी ११, नागलीलिपी १२, लाटीलिपी १३, पारसीलिपी १४, अनिमित्तीलिपी १५, चाणक्कीलिपी १६, मौलदेवीलिपी १७, उड्डीलिपी १८. देवविशेषसे औरभी लिपियाँ हुई हैं— जैसे, लाटी १, चौड़ी २, डाहली ३, कानड़ी ४, गूर्जरी ५, सौरठी ६, मरहठी ७, कौंकणी ८, खुरासानी ९, मागधी १०, सिंहली ११, हाडी १२, कीडी १३ हम्मीरी १४, परती १५, मसी १६, मालवी १७, महायोधी १८, इत्यादि लिपियोंके साथ ही साथ भगवान्ने अंकोंकी गणितकला भी दिखाई, और वाम हाथसे सुन्दरीको भी लिखनेकी लीपियें बताई।

तिस काल तिस समय में आदीश्वर भगवान् विचक्षण, प्रतिज्ञा का निर्वाह करने वाले, सर्व गुण पूर्ण, अलिप्त, भद्रक, सरल स्वभावी, विनीत, बीसलाख पूर्व वर्ष कुमारावस्थामें रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष राज्य भोगा. लिखनेकी कलासे लेकर गणितप्रधान पुरुषोंकी बहत्तर तथा स्त्रियोंकी चौंसठ कला प्रकट करके सबको सिखलाई, सौ शिल्प, सौ विज्ञान बतलाये और सेवा, व्योपार, खेती वगैरह तीन प्रकारकी उदर वृतिका उपाय सर्व प्रजाको बतलाया. सौ पुत्रों को राज्य में स्थापित किये. अब पुरुषों की ७२ कला कहते हैं— लिखने की कला १, पढ़ने

र्की कला २, गणित कला ३, गीत कला ४, नृत्य कला ५, ताल बजानेकी० ६, पटह बजानेकी० ७, मृदंग बजाने की० ८, बीणा बजानेकी कला ९, वंश परीक्षा १०, भेरी परीक्षा ११, गजशिक्षा १२, अश्व शिक्षा १३, धातु वाद् १४, दृष्टिवाद् १५, मन्त्रवाद् १६, वृद्धका जवान करना १७, रत्न परीक्षा १८, स्त्री परीक्षा १९, नर परीक्षा २०, छन्द्बन्धन २१, तर्कवाद् २२, नीतिविचार २३, तत्त्वविचार २४, कवि-शक्ति २५, ज्योतिष्-शास्त्रज्ञान २६, वैद्यकशास्त्रज्ञान २७, षट्भाषाज्ञान २८, योगाभ्यास २९, रसायणविधि ३०, अंजनविधि ३१, अष्टादशलिपीज्ञान ३२, स्वप्नलक्षणज्ञान ३३, इन्द्रजाल दिखाना ३४, कृषिज्ञान ३५, व्यौपारकी विधि ३६, नृप-सेवा ३७, शकुनविचार ३८, वायुस्तंभन ३९, अग्निस्तंभन ४०, मेघवृष्टि ४१, विलेपनविधि ४२, मर्दनविधि ४३, ऊर्ध्वगमन ४४, घटबन्धन ४५, घटभ्रमन ४६, पत्रछेद्न ४७, मर्मभेद्न ४८, फलाकर्षण ४९, जला-कर्षण ५०, लोकाचार ५१, लोक रंजन ५२, जिन वृक्षोंके फल नहीं लगते हों, उनके फल लगादेना ५३, खड्ग वन्धन ५४, क्षुरीबन्धन ५५, मुद्राविधि ५६, लोहज्ञान ५७, दन्तसमारण ५८, कालज्ञान ५९, चित्रकला ६०, बाहुयुद्ध ६१, मुष्टियुद्ध ६२, दंडयुद्ध ६३, दृष्टियुद्ध ६४, खड्गयुद्ध ६५, वाक्युद्ध ६६, गारुडी विद्या

६७, सर्पदमन ६८, भूतदमन ६९, योग–द्रव्यानुयोग–अक्षरानुयोग–औषधानुयोग ७०, वर्षज्ञान ७१, नाम माला ७२, इत्यादि पुरुषोंकी ७२ कलायें भगवान् ने भरत-बाहुबली आदि को बतलाईं.

अब स्त्रियोंकी चौंसठ कला कहते हैं—नृत्यकला १, औचित्यकला २, चित्रकला ३, वादित्रकला ४, मन्त्र ५, तन्त्र ६, ज्ञान ७, विज्ञान ८, दंड ९, जलस्तंभन १०, गीतगान ११, तालमान १२, मेघवृष्टि १३, फलाकृष्टि १४, बगीचा लगाना १५, आकारगोपन १६, धर्मविचार १७, शकुनविचार १८, क्रियाकल्प १९, संस्कृतजल्पन २०, प्रासादनीति २१, धर्मनीति २२, वाणिवृद्धि २३, सुवर्णसिद्धि २४, सुगन्धतैल २५, लीलासंचरन २६, हाथी घोड़ोंकी परीक्षा २७, स्त्री-पुरुषलक्षण २८, सुवर्ण रत्नभेद २९, अष्टादश लिपीका जानना ३०, तत्कालबुद्धि ३१, वस्तुसिद्धि ३२, वैद्यकाक्रिया ३३, कामक्रिया ३४, घटभ्रमन ३५, सारपरिश्रम ३६, अंजनयोग ३७, चूर्णयोग ३८, हस्तलाघव ३९, वचनपाटन ४०, भोज्यविधि ४१, वाणिज्याविधि ४२, मुखमंडन ४३, शालीखंडन ४४, कथाकथन ४५, पुष्पग्रन्थन ४६, वक्रोक्तिजल्पन ४७, काव्यशक्ति ४८, स्फारवेष ४९, सकल भाषाविशेष ५०, अभिधानज्ञान ५१, आभरणपरिधान ५२, नृत्योपचार ५३, गृहाचार ५४, शाठ्यकरण ५५,

परनिराकरण ५६, धान्यरंधन ५७, केशबन्धन ५८, वीणादिनाद ५९, वितंडावाद ६०, अंकविचार ६१, लोक-व्यवहार ६२, अन्ताक्षरिका ६३, प्रश्नप्रहेलिका ६४, इत्यादि कला ब्राह्मी, सुन्दरी आदिको दिखाई. अब ऋषभदेव स्वामी ने सौपुत्रों को अपने २ नामके देश बसा कर राज्य दिया. उन पुत्रोंके नाम कहते हैंः—भरत १, बाहुबली २, श्रीमस्तक ३, अंगारक ४, मलदेव ५, अंगज्योति ६, मलयदेव ७, भार्गवतीर्थ ८, वंगदेव ९, वसुदेव १०, मगधनाथ ११, मानवर्तिक १२, मानयुक्ति १३, वैदर्भदेव १४, वनवासनाथ १५, महीपक १६, धर्मराष्ट्र १७, मायकदेव १८ आस्मक १९, दंडक २०, कलिंग २१, ईषिकदेव २२, पुरुषदेव २३, अकलदेव २४, भोगदेव २५, विमलभोग २६, गणनाथ २७, तीर्णनाथ २८, अमोदपति २९, आयुवीर्य ३०, वल्लीवसु ३१, नायक ३२, कांक्षिक ३३, आनर्तक ३४, सारिक ३५, गृहपति ३६, कुरुदेव ३७ कच्छनाथ ३८, सौराष्ट्र ३९, नर्मद ४०, सारस्वत ४१, तापसदेव ४२, कुरु ४३, जंगल ४४, पंचाल ४५, शूरसेन ४६, पुटदेव ४७, अकलंकदेव ४८, काशीकुमार ४९, कौशल्य ५०, भद्रकाश ५१, विकाशक ५२, त्रिगर्त्तक ५३, आवर्ष ५४, शाल्तुक ५५, मत्स्यदेव ५६, कुलीयक ५७, मुषकदेव ५८, बाल्हीक ५९, कांबोज ६०, मधुनाथ ६१, सान्द्रक ६२, आत्रेय ६३, यवन ६४, आभीर

६५, वानदेव ६६, वानस ६७, कैकेय ६८. सिन्धु ६९, सौवीर ७०, गन्धार ७१, काष्टदेव ७२, तोषक ७३ शौरक ७४, भारद्वाज ७५, शूरदेव ७६, प्रस्थान ७७, कर्णक ७८, त्रिपुरनाथ ७९, अवन्तिनाथ ८०, चेदिपति ८१, किष्कन्द ८२, नैषद ८३, दशार्णनाथ ८४, कुसुमवर्ण ८५ भूपालदेव ८६, पालप्रभु ८७, कुशल ८८, पद्म ८९, महापद्म ९०, विनिद्र ९१, विकेश ९२, वैदेह ९३, कच्छपति ९४, भद्रदेव ९५, वज्रदेव ९६, सान्द्रभद्रक ९७, सेतज ९८, वज्रनाभ ९९, अंगदेव १००, इन पुत्रोंको अलग अलग देशोंका राज्यदेकर, विनीता नगरी का राज्य भरतको और बहुली देशमें तक्षशिला नगरीका राज्य बाहुबलीको दिया और सर्व प्रकारकी लोकस्थिति का व्यवहार बतलाया, जिससे प्रजापति * (ईश्वर) कहलाये।

---

* भक्तजन अपने परिश्रम से कर्मानुसार कार्य्य सफल करते हैं तोभी राजा, महाराजा, माता, पिता और गुरु आदिका विनयके लिये आपके प्रतापसे यह मेरा कार्य्य हुआ इत्यादि भक्ति वश कहते हैं, यह सज्जन प्रवृत्ति है। राजा, महाराजा आदि ऐश्वर्ययुक्त सम्पत्तिशाली पुरुषों को भी ईश्वर कह सकते हैं। ऋषभदेव स्वामी ने प्रथम ही संसार व्यवहार चलाया और गृहवास व राग द्वेष आदि का त्याग धर्म बतलाकर आत्मिक गुण प्रकट करने वाला मुक्ति मार्ग चलाया। आप स्वयं ही तप-ध्यानादि से जन्म-मरणके हेतु भूत कर्म और शरीर आदिका क्षय करके अशरीरी हुए, मुक्तिमें गये। जिससे इनको ईश्वर, आदीश्वर कहते हैं. इस बातको समझे बिना ही लोगोंने जगत्का कर्त्ता ईश्वर मानकर कल्पना जालसे तर्क-वितर्क करके बडे २ विवाद खडे कर दिये हैं। कई कहते हैं कि चौर चौरी स्वयं करता है, परन्तु उसका दंड

अब स्वामी के पांच नाम हुए, सो कहते हैं:—ऋषभदेव १, प्रथम राजा २, प्रथम भिक्षाचर ३, प्रथम केवली ४, प्रथम तीर्थंकर ५. अब भगवान् दीक्षा लेकर, तप करके, केवल ज्ञान प्राप्त कर बहुत भव्य जीवों को प्रतिबोध देकर मोक्ष गये, उसका अधिकार कहते हैं:— लौकान्तिक देवोंने आकर इष्टवाणियों से भगवान् को दीक्षा लेनेकी विनती की. उस समय प्रायः निर्धनता नहीं थी, तथापि दान धर्म की मर्यादा दिखाने के लिये भगवान्ने एक वर्ष तक स्वर्ण रत्न और अन्न आदिका दान दिया. भगवान् सम्वत्सरी दान देकर उष्ण

राजा देताहै. उसी तरह जीव भी शुभाशुभ कर्म स्वयं करता है, परन्तु उसका फल ईश्वर देता है। इस बात पर दूसरे कहते हैं– राजा तो प्रजा से द्रव्य लेता है उसके बदले में प्रजा की चिन्ता करने वाला नौकर कहा जाता है और ईश्वर के शरीर नहीं है और कुछ स्वार्थ भी नहीं है जिससे वह राजा की तरह जगत् की चिंता करने वाला नौकर नहीं बन सकता। और अशरीरी के मन नहीं होता, मनके विना इच्छा नहीं होती, इच्छा के बिना कोई कार्य्य नहीं बन सकता. और जहां इच्छा आदि सांसारिक कार्य्यों की माया जाल लगी है, वहां ईश्वरता नहीं हो सकती. और पहले प्राणियों से पाप-कर्म करवाकर फिर पीछे जीवों को दुःखमें डालने का अन्याय ईश्वर कभी नहीं कर सकता, इसलिये मुक्तात्मा ईश्वर को जगत् का कर्त्ता मानकर ऐसे दोष लगाना ठीक नहीं, किन्तु काल, स्वभाव आदि संयोगोंसे जीव और पुद्‌गल का व्यवहार अनादि काल से संसार में चला आता है। और जिस तरह नशा किये बाद समयांतर में उसका विपाक उनको स्वयं उदयमें आता है, इसी तरह जीवों के किये हुए कर्म भी उनकी स्थिति पूर्ण होने से काल-स्वभाव आदि निमित्त पाकर स्वयं उदयमें आते हैं, इसमें किसीका हस्तक्षेप नहीं हो सकता। ईश्वरवाद का विशेष निर्णय "जैन तत्त्वादर्श" आदि ग्रन्थों में देख लेना।

कालके पहिले महीने की पहिले पक्ष की चैत्रवदी अष्टमी को दोपहरके बाद सुदर्शना नामक शिविकामें बैठ कर देवता और मनुष्यों सहित श्रीमहावीर स्वामीके दीक्षा महोत्सव जैसे आडंबरसे विनीता नगरी के मध्य में होकर, सिद्धार्थ नामक उद्यानमें अशोक वृक्षकी छायामें आकर पालखीसे नीचे उतरे. सर्व आभूषण वगैरह त्याग कर चार मुष्टि लोच किया, उस समय गौरवर्ण पीठ व कन्धों पर पांचवीं मुष्टि के श्याम और सुन्दर केशों को देखकर इन्द्रने भगवान्से विनती की हे स्वामिन् ! ये केश रमणीक दिखाई देते हैं, इनको इसी तरह रहने दें. तब इन्द्रकी विनती से भगवान्ने पांचवीं मुष्टिका लोच नहीं किया (इसीसे अब भी श्री आदीश्वर की प्रतिमाके पृष्ट भागमें और कन्धों पर पांचवीं मुट्ठी के केश रक्खे जाते हैं). जब उत्तराषाढा नक्षत्र में चंद्रका योग आनेसे भगवान् ने दीक्षा ली, तब जल रहित दो उपवास किये थे, और उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रीय वंशके चार हजार राजाओं ने भी श्रीऋषभदेव स्वामी के साथ दीक्षा ली, दीक्षावसरमें इन्द्रने भगवान् के बांये कन्धेपर एक देवदूष्य वस्त्र (रत्न कंबल) रक्खा. भगवान् गृहस्थावासका त्यागकर अनागार हुए, उस समय भगवान् को चौथा मनपर्य्यव ज्ञान उत्पन्न हुआ ।

तिस काल तिस समयमें ऋषभदेव अर्हन् कौशलिकने एक हजार वर्ष तक लगातार शरीरकी शुश्रुषाका त्याग किया, ग्रामानुग्राम विहार करते रहे, चार हजार मुनि भी भिक्षा के लिये फिरे परन्तु भिक्षा नहीं मिलने से कन्द्मूल–फलादि खाकर, भोजपत्र वगैरह के वस्त्र पहिनकर वनमें रहने लगे. लज्जासे वापिस घर नहीं गये, उन्होंसे तापस धर्म प्रकट हुआ, तोभी स्मरण–ध्यानतो ऋषभदेव भगवान्का ही करते रहे. जब भगवान् को केवलज्ञान हुआ तब फिरसे भगवान्के पास दीक्षा लेकर कर्मक्षय करके मुक्तिमें गये. और कच्छ–महा-कच्छको भगवान्ने पुत्र रूपसे माने थे, उनके पुत्र नमि–विनमि किसी कार्य के लिये परदेश गये थे. पीछे से भगवान् ने सर्व पुत्रों को राज्य दिया, परन्तु उनके लिये कुछभी राज्यका विभाग नहीं रक्खा. दीक्षा लेने के बाद वे आये, और भरतसे पूछा हमारे पिता ऋषभदेव कहां हैं. भरतने कहा स्वामीने दीक्षा ली है, अब तुम मेरी सेवा करो. मैं तुमको देश ग्रामादि दूँगा. तब उन्होंने भरतका वचन नहीं मानकर, राज्यके लिये स्वामी के पास आये, भगवान्के विहारमें आगे २ काँटा, कंकर वगैरह दूर करते, काउसग्गमें खडे हुए भगवान् के डांश, मच्छर वगैरह उडाते और प्रातः कालमें वंदना पूर्वक–" हे स्वामिन् ! राज्य दो " ऐसा कहते हुए हमेशा

सेवा करने लगे। एकदा धरणेन्द्र भगवान्के दर्शन करनेको आया, उनकी भक्ति देखकर तुष्टमान हो करके दोनों को ४८ हजार पठित सिद्ध विद्या दी, सौलह विद्यादेवियोंकी आराधना वतलाई. वैताढ्य पर्वतपर दक्षिण-श्रेणि में रथनुपुर-चक्रवाल वगैरह ५० नगर, और उत्तर-श्रेणिमें गगन-वल्लभ वगैरह ६० नगर बनाकर दिये, और वहां विद्याके बलसे लोगों को बसाकर जितने नगर उतने ही देश स्थापित करके नमि-विनमि विद्याधर राजा अलग २ राज करते रहे। इसके वाद भगवान् ग्रामानुग्राम विहार करते हुए, भिक्षाके लिये फिरते परन्तु किसी पूर्व-भवमें बैलके मुँहपर छींका बांधने से अन्तराय कर्म उपार्जन किया था, उस कर्म के उदयसे भगवान् जिधर २ गये वहां २ पर हाथी-घोड़े-रथ-कन्या-मणि-मोती-सौना वगैरह के लिये लोगों ने प्रार्थना की, परन्तु शुद्ध आहार किसीने नहीं दिया। इस तरह जव एक वर्ष होगया. तब उस कर्म के क्षय होने से हस्तिनापुर नगरमें वाहुबली के पुत्र सोमयशा राजा, उनके पुत्र श्रेयांस कुमारने रात्रिमें ऐसा स्वप्न देखा कि मेरुपर्वत मैला हो गया था, मैंने दूधसे धोकर निर्मल किया १, उसी रात्रिमें सोमयशा राजाने भी स्वप्न देखा कि– वैरियों से पराभव पायाहुआ कोई सुभट श्रेयांस कुमार की सहायतासे विजयको प्राप्त हुआ २, उसी नगरमें नगरसेठको

भी स्वप्न आया—सूर्य्यकी किरणें गिरने लगीं, उनको श्रेयांसकुमार ने पीछे जोड़ दीं. प्रातःकाल सबने राज्य सभामें आकर अपने २ स्वप्न कहे और बोले श्रेयांसकुमारको आज कोई महान् लाभ होगा. ऐसा कहकर वे सब अपने २ घर गये. उसी समय भगवान् आहारके लिये नगरमें आये, तब लोगोंने आहारके सिवाय अन्य वस्तुओंको लेनेकी प्रार्थना की. श्रेयांसकुमारने गोखमें बैठेहुए श्रीऋषभदेवस्वामीको देखे. जिनमुद्रा देखनेसे श्रेयांसको जातिस्मरणज्ञान हुआ. तब श्रेयांसकुमार साधुओंको आहार देनेकी विधि जानकर भगवान्के पास आया, तीन प्रदक्षिणा देकर, वन्दना करके आहार लेनेकी विनती की और उसी वक्त आये हुए इक्षु रससे भरे हुए घड़े लेकर वहोराने लगा. स्वामीने भी शुद्ध आहार जानकर दोनों हाथ पसारे।

अब कविकल्लोलसे हाथोंका विवाद कहते हैंः—भगवान्ने हाथ पसारे उस समय पहले बाँया हाथ दाहिने हाथसे बोला. हे वाम हस्त ! तू भिक्षा मांग—मैंनेतो दान दियाहै, मैं दातारके आगे लेनेको कैसे जाऊँ, मैं तो निरन्तर ऊपर रहता हूं, तो इस वक्त नीचे कैसे होऊँ. राज्यस्थापन, देवपूजन, नाटकविधि, व्याख्यान देना इत्यादि पवित्र कार्यों में मैं हीं प्रधान हूँ, इसके अलावा याचनाके समान नीच कार्य कोई भी नहीं है और अपवित्र कार्य भी

तू ही करता है, इसलिये भिक्षाभी तू ही मांग, यह सुनकर दाहिना हाथ ईर्षा करके बोला—अरे बायें हाथ ! उदर भरनेमें तत्पर कैसे मान करताहै, अरे ! कायर बाण फैंकने, ढाल लेने, और संग्राम आदि कठिन कार्य्यों में आगे मैं जाता हूँ। तू वहाँसे पीछे भाग जाताहै, तू मुझको नीच कर्म करने वाला कैसे कहता है, अपना नीचपना नहीं जानता, मींठी २ बातें करता है, नीच तू ही है, तू भिक्षा मांग. इस प्रकार दोनों हाथोंको विवाद करते एक वर्ष हुआ, तब भगवान्‌ने दोनोंका विवाद इस प्रकार कह करके मिटाया— हे वाम हस्त ! तू शुभ कार्य्य उत्पन्न करताहै, और दाहिना हाथ दानादि देकर सफल करता है, संयोगसे सिद्धिहै अकेले कभी नहीं रहना, दोनोंको मिलकर कार्य्य करना चाहिये. भगवान्‌का ऐसा वचन सुनकर दोनों हाथ इकट्ठे हुए. भगवान्‌ने प्रासुक इक्षुरस लेनेको हाथ पसारे. इस विषयमें कवि कहते हैं—श्रेयांसके सदृश चित्त, इक्षुरसके जैसा दान योग्य पदार्थ, श्रीऋषभदेवस्वामी के समान पात्र, ये तीन—चित्त १, वित्त २ और पात्र ३, महान् पुण्यसे मिलते हैं. श्रेयांसने भगवान्‌को इक्षुरस वहोराया, भगवान्‌ने कर पात्रसे पारणा किया. यहांपर कोई कहेंगे:— भगवान् के हाथों से इक्षुरस का छींटा पडनेसे अयतना नहीं होती ? उसपर कहते हैं—

"माइज्ज घडसहस्स, अहवा माइज्ज सायरा सव्वे ॥ एयारिसि लद्धीओ, सा पाणिपडिग्गही भयवं ॥ १ ॥"

हजारों घड़े हाथों में आजावें, अथवा सर्व समुद्रों का जल हाथों में अजावे, तो शिखा ऊँची चढे, परन्तु बिन्दु मात्रभी नीचे नहीं गिरे, ऐसी पाणिपात्रिकी लब्धि तीर्थंकरके होती है. आवश्यक सूत्रमें कहाहैः—भगवान् के हाथों में एक सो आठ घड़ोंका रस श्रेयांस ने वहोराया. अब उस दानसे क्या फल हुआ, सो कहते हैं—देवोंने "अहो दानं! अहो दानं", ऐसी उद्घोषणा की. आकाशमें देवदुन्दुभियाँ बजीं, चारों निकायोंके देव आये, साढे बारह करोड सौनैयों की वर्षा हुई. श्रेयांसकुमार का घर धनसे भरा. तीन जगत् यशसे भरे. भगवान् ने इक्षुरस से वर्षी तपका पारणा किया. श्रेयांसने सुपात्र दानसे मोक्षका अक्षय फल उपार्जन किया, और उसी दिनसे लोगोंमें 'अक्षय तीज' पर्व हुआ. जहां भगवान् का पारणा हुआ, वहां रत्नोंका चबूतरा बनाया, श्रीआदीश्वर भगवान्का प्रथम पारणा इक्षुरस से हुआ, अन्य तीर्थंकरोंका पहला पारणा परमान्नसे हुआ. जब सर्व लोगों ने श्रेयांससे पूछा—हम तो आहार देना नहीं जानते थे. आपने यह कैसे जाना कि भगवान् आहारके लिये पधारे हैं. तब श्रेयांसने भगवान् का और अपने आठ भवोंका सम्बन्ध कहा. जब भगवान्का जीव ललितांग देव था

तब मैं स्वयंप्रभा देवी थी १, जब स्वामी वज्रजंघ राजा हुए थे, तब मैं श्रीमती रानी थी २, इसके बाद हम दोनों युगलिये हुए ३, सौधर्म देवलोक में दोनों मित्र देव हुए ४, स्वामी वैद्य हुए, तब मैं मित्र था ५, अच्युत देवलोक में मित्र देव हुए ६, स्वामी वज्रनाभ चक्रवर्ती हुए थे तब मैं सारथी हुआ था ७, वहां तीर्थंकरके पास दीक्षा ली थी, वह स्वरूप, इस वक्त भगवान् के दर्शनसे मुझको जाति स्मरण ज्ञान हुआ, जिससे याद आया ८. तब मैंने जाना कि भगवान् आहार के लिये फिरते हैं, इसलिये इनको शुद्ध आहार देना. ऐसा सुनकर सर्व लोगोंने आहार देनेकी विधि जान ली।

अब श्रीऋषभदेव स्वामी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए बहुली देशमें बाहुबली की तक्षशिला राजधानी के समीप वनमें संध्या समय आकर काउसग्गमें रहे. वनपालकने आकर बाहुबलीको बधाई दी. बाहुबली ने विचारा कि– प्रातः समय बडे महोत्सव से पिताजी के दर्शन करूंगा. ऐसा विचार कर चार प्रकारकी सैना तैयार कराई और अन्तःपुरियों के शृंगार करवाये, जिसमें बहुत समय लगा. वायुके जैसे अप्रतिबद्ध विहारी भगवान्ने सूर्य्योदय में विहार किया. पीछे बाहुबली बडे आडम्बर के साथ वंदना करने को आया, तमाम

वनमें फिरा. भगवान्को नहीं देखे, बहुत उदास हुआ, और विचार किया कि मैं शामको आता तो भगवान् के दर्शन करता. इसके बाद उसने कानोंमें अंगुली डालकर ऊँचे स्वरसे 'बाबा आदम' किधर पधारे. ऐसी पुकार की. जहां भगवान् काउसग्गमें रहे थे, वहां रत्नमय चबूतरे पर भगवान्के चरण कराये, धर्मचक्र प्रासाद बनाया और हमेशा दर्शन-पूजन करने लगा.

श्रीऋषभदेव स्वामी के दीक्षा लेनेके अनंतर माता मरुदेवी भरतको उपालम्भ देने लगी, हे भरत ! मलान पुष्पोंकी माला जैसी मुझको छोड़कर ऋषभ गया, सर्व ऋद्धिका त्याग करके अकेला वनवासी हुआ, जो क्षुधा-तृषा से पीड़ित होगा, श्मशान, पर्वतकी गुफ़ा वगैरह स्थानोंमें रहता हुआ शीत, वायु, वर्षा, आताप, डांश, मच्छरोंसे पीड़ा पाता होगा. मैं तो पुत्रको दुःखी सुनकर मरती भी नहीं हूं—पृथ्वीपर मेरे जैसी कोई दुःखी नहीं है. हे भरत ! तू राज्यके सुखमें लोभी हुआ है, जो मेरे पुत्रकी कभी खबर भी नहीं मंगाता. तुम सब भाई नित्य षट्रस सुंदर भोजन करते हो. मेरा पुत्र तो घर २ में नीरस भिक्षा मांगता होगा. तुम रेशम वगैरह के वस्त्र पहनते हो, मेरा पुत्र तो नग्न रहता होगा. तुम हंसतूल वगैरह की शय्यापर सोते हुए, चंवरोंसे वींजाते हुए सुस्वर गीत

ध्वनि सुनते हुए रात्रि व्यतीत करते हो, मेरा पुत्र तो ऊँची नीची भूमिपर डाभ वगैरह पर सोता हुआ अथवा काउसग्ग ध्यानमें खड़ा हुआ वननिकुंजमें वायुसे पीड़ित कानों में मच्छरोंका भनकार सुनता हुआ रात्रि व्यतीत करता होगा. मेरा पुत्र ऋषभ जैसा दुःखी और कोई भी नहीं है. पहले यह सब ऋद्धि मेरे पुत्रकी थी, परन्तु तुम सब भाइयोंने इकट्ठे होकर मेरे पुत्रका राज्य लेकर उसे देशसे निकाल दिया, उसकी तुम कभी खबर भी नहीं लेते हो. इस प्रकार हमेशा भरतको उपालम्भ देती हुई, अश्रुपातपूर्वक रोती हुई मरुदेवीके नेत्रों में पटल आगये, तब भरत कहने लगा हे माताजी ! दुःख मत करो, आपके पुत्र ऋषभदेव बहुत सुखी हैं, मरुदेवीने कहा— मुझको दिखाओ. भरतने कहा—यहां आवेंगे तब दिखाऊँगा ।

अब भगवान् तप-संयम में अपनी आत्माको भावन करते हुए एक हजार वर्ष तक विदेशमें विहार कर घन-घाति कर्मोंका क्षय करके केवल ज्ञान पाये सो कहते हैं—शीत कालके चौथे महीने के सातवें पक्ष की फाल्गुन कृष्ण एकादशी के दिन दो पहर में पुरिमताल नगरके बाहर शकटमुख उद्यान में वट वृक्षके नीचे उत्तराषाढा नक्षत्रमें चन्द्रमा का योग आने से शुक्ल ध्यान ध्याते हुए जल रहित तीसरे उपवासमें श्रीऋषभदेव स्वामी

को केवल ज्ञान और केवल दर्शन उत्पन्न हुआ. तब भगवान् जीवाजीवादि षड्द्रव्यों के भाव जानने वाले तथा देखने वाले हुए. उसी समय भरत राजाकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हुआ. केवलज्ञान और चक्ररत्न की बधाई देने वाले दो पुरुषोंने एकही समयमें आकर बधाई दी. भरत राजाने दोनोंको इनाम देकर विदा किये. बादमें भरतने विचार किया—पहले किसका उत्सव करूँ. थोडे समयमें विचार करके निर्णय किया कि उभय लोक सुखदायक पिताजी की पूजा करनेसे चक्रकी पूजा हो ही चुकी अथवा धर्म के लिये सर्व काम छोड देने चाहियें. ऐसा विचार कर मरुदेवी के पास आकर बोला— हे माताजी ! आप मुझको हमेशा उपालम्भ देती थीं कि तू मेरे पुत्र की खबर भी नहीं मंगाता है, सो आज आपके पुत्र यहां आये हैं, उनकी महिमा दिखाउं. ऐसा कहकर श्रीमरुदेवी माताको हाथीके होदेपर बैठाया, स्वयं भी पीछे बैठे और बडे आडम्बरके साथ चले. मार्ग में आती हुई मरुदेवी ने देव-दुन्दुभि का शब्द सुनकर भरतसे पूछा ये वाजिंत्र किधर बजते हैं. भरतने कहा— आपके पुत्रके आगे देवता बजाते हैं. मरुदेवी ने सत्य नहीं माना. वहांसे आगे चलती हुई मरुदेवीने देव-देवियों का बडा कोलाहल सुना, और भरत से पूछा—यह कोलाहल कहां होता है ? भरत बोला— आपके पुत्रकी सेवा

के लिये इन्द्रादि देव आते जाते हैं, उन्होंका यह शब्द है. मरुदेवीने तब भी नहीं माना. फिर भी भरतनें कहा आपके पुत्रका सौने, चांदी, रत्नोंका समोवसरण देखोगे, तब तो मानोगे. उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता. तब भरतका ऐसा वचन सत्य माना और योजन-गामिनी भगवान्‌की वाणी सुनने में आई, देखनेका हर्ष उत्पन्न हुआ, हर्षसे अश्रुधारा छूटी, हाथों से नेत्रों को मसले, पटल दूर होगये. तब मरुदेवीने साक्षात् सर्व समोवसरण का स्वरूप और तीर्थंकरका महात्म्य देखा. उसे देखकर विचार किया—अहो ! मोह सहित जीवको धिक्कार हो, सर्व जीव स्वार्थी हैं. मैं तो जानती थी मेरा ऋषभ अकेला दुःखी होगा, जिससे भरतको हमेशा उपालंभ देती थी मैंने इसी दुःखसे अपने आंखों का तेजभी खो दिया. इसने तो मुझको कभी यादभी नहीं किया, संदेश भी नहीं भेजा. हे माता ! मेरी चिन्ता नहीं करना, मैं बहुत सुखी हूँ, जब यह मेरा दुःख नहीं जानता, तब मेरा एक पक्षका प्रेम किस कामका. यह वीतराग है, मैं सराग हूँ. ऐसा विचार करती हुई मरुदेवी माता बारह भावना भावती हुई, गुण स्थानों पर चढ़ती हुई, क्षपक श्रेणिसे अन्तकृत केवली होकर हाथी के होदे पर ही मोक्ष गई। यहां कवि कहता है—श्रीऋषभदेव समान कोई सुपुत्र नहीं हुआ, कि जिसने एक हजार वर्ष तक तपकरके केवल ज्ञान

उत्पन्न कर माता को भेंट दे दिया. और मरुदेवी के समान कोई माता भी नहीं हुई कि जो पुत्रको सिद्धिरूपी स्त्री का पाणी ग्रहण करने को उत्सुक देखकर उसका मिलाप कराने के लिये पहले ही आप मुक्ति नगरी गई. इसके बाद मरुदेवीका शरीर देवोंने क्षीर समुद्रमें बहाया. शोक-हर्ष सहित भरतको समझाकर इन्द्र समोवसरण में लाया. आदीश्वर भगवान्को वन्दना करवाई, भरतका शोक दूर हुआ. श्रीऋषभदेव स्वामीने धर्म देशना दी. देशना सुनकर भरत के पांचसौ पुत्र तथा सात सौ पौत्रों ने प्रतिबोध पाकर दीक्षा ग्रहण की. पुंडरीक पहला गणधर हुआ. बारह सौ कुमारों में मरीचिने भी दीक्षा ली. उस समय ब्राह्मी ने भी बाहुबलीसे पूछकर दीक्षा ली. सुन्दरी भी दीक्षा लेनेको तैयार हुई, परन्तु भरतने स्त्री रत्न जानकर दीक्षा की आज्ञा नहीं दी, तब श्राविका हुई, भरत श्रावक हुआ. इस प्रकार चतुर्विध संघकी स्थापना करके स्वामीने अन्यत्र विहार किया।

अब भरतने घर आकर आठदिन तक महोत्सव सहित पूजा करके चक्ररत्नकी आराधना की. बादमें चक्ररत्न चला. उसके पीछे सैना सहित भरत चक्रवर्ती भी चले, साठ हजार वर्षोंमें छः खंड साधन करके आये. सुन्दरीने दीक्षा लेनेकी भावनासे साठहजार वर्ष तक आंबिलका तप किया. दुर्बल शरीर हुआ देखकर भरतने सुंदरीको

दीक्षा की आज्ञा दी. भगवान्के पासमें जाकर सुन्दरीने दीक्षा ली. उस समय आयुधशालामें चक्ररत्न प्रवेश नहीं करने लगा. मन्त्रियोंसे उसका कारण पूछा, मंत्रियोंने कहा अपने भाइयोंको आपने वशमें नहीं किये, तब अठाणवें भाइयों को दूत भेज कर अपनी सेवा के लिये बुलाये. वे सर्व मिल कर अष्टापद पर ऋषभदेवस्वामी से पूछनें गये. भगवान्ने नाशवान् द्रव्य राज्यका त्याग करके कर्मशत्रुओंको जीतकर मुक्तिका अक्षय राज्य प्राप्त कराने वाली देशना दी, वैतालीय अध्ययन सुनाया. उसको सुनकर प्रतिबोध पाकर सबने दीक्षा ली और केवली होगये. यह सब भरतने सुना, तोभी चक्ररत्न को आयुधशाला में प्रवेश करता नहीं देख कर मन्त्रियों के कहनेसे जबतक बाहुबली को नहीं जीता तबतक छः खंड साधन निष्फल हैं, ऐसा विचार कर भरतने सुवेग नामक दूतको बाहुबली को बुलाने के लिये लेख देकर तक्षशिला नगरी भेजा. सुवेग भी बाहुबलीके देशमें वनमें क्षेत्र की रक्षा करने वाले स्त्री पुरुषों को मधुर स्वरसे आनंदपूर्वक बाहुबली के गुणोंके गीत गाते हुए सुनकर और भरतका नाममात्र भी नहीं जानते हुए देख कर आश्चर्य पाया अनुक्रमसे तक्षशिला नगरी में बाहुबली की सभा में बाहुबलीको नमस्कार करके लेख दिया. बाहुबली भी भरतका कुशलप्रश्न पूर्वक लेख बांचकर अपनेको

बुलाया जान कर नाराज हुआ, अपमान करके दूतको निकाल दिया. दूत भी अपने प्राण लेकर भगा और शीघ्र भरतके पास आकर सर्व स्वरूप कहा. तब भरत अपने बडे पुत्र सूर्ययशाको सेनापति बनाकर सब सेना ले करके बाहुबलीके उपर चला. बाहुबली भी भरतको आता हुआ जानकर, अपने बडे पुत्र सोमयशाको सेनापति बनाकर सेना लेकर के अपने देशकी सीमातक सामने आया. दोनोंके १२ वर्ष तक महान् संग्राम हुआ. बहुतसे देश उजड़ हुए. तब इन्द्रने यह स्वरूप जान कर, दोनों भाईयोंका युद्ध मिटाने के लिये आकर उपदेश दिया. पांच युद्ध स्थापित किये– दृष्टियुद्ध १, वचनयुद्ध २, बाहुयुद्ध ३, दंडयुद्ध ४, मुष्टियुद्ध ५, दोनों सेनाएँ शांतिसे अलग २ खड़ी रहीं. इन्द्रादि देव साक्षी होकर रहे. दृष्टि आदि चारों प्रकारके युद्धोंमें भरत हारा और बाहुबली जीता. पांचवें मुष्टि युद्धमें भरतने बाहुबली के मस्तक पर मुष्टिका प्रहार किया, जिससे बाहुबली गोड़ों तक पृथ्वी में धँस गया. पीछे निकलकर बाहुबली मुष्टि उठाकर भरतको मारनेको दौड़ा. भरत डरा, और बाहुबली को मारनेके लिये चक्र फैंका, परन्तु चक्र अपने गौत्रीका घात नहीं करता, इसलिये बाहुबलीको आलिंगन करके भरतके पास वापिस आया. भरत मनमें अति उदास हुआ, और मुष्टि उठाये हुए बाहुबली को आता हुआ देख

कर, क्या यह नवीन चक्रवर्त्ती मेरी सर्व ऋद्धि लेगा, ऐसा भरत विचार करने लगा. देव भी बाहुबली की सब युद्धों में जय होनेकी उद्घोषणा करने लगे. उसी समय बाहुबली के मनमें विचार उत्पन्न हुआ—यह मेरा बडा भाई राज्य सुखके लिये मारने योग्य नहीं है, धिक्कार हो ऐसे राज्यको जिसके लिये ऐसा अकार्य किया जाय, और मेरी मुष्टिभी निष्फल न जावे. ऐसा विचारकर वैराग्य भावसे मुष्टिको मस्तकपर रखकर लोच कर साधुजी होगये, और मुझको केवल ज्ञान उत्पन्न होगा, तब मैं काउसग्ग पारकर श्रीऋषभदेवस्वामीके पास समोवसरणमें जाऊँगा. ऐसा नियम करके वहींपर काउसग्गमें खड़े रहे. भरत भी बाहुबलीको नमस्कार करके, अपने अपराध की क्षमा कराकर बाहुबलीके पुत्रको बाहुबलीका राज्य देकर अयोध्या आया. बाहुबली-मुनिको काउसग्ग में खड़े हुए एकवर्ष हुआ. भूख-तृषासे शरीर सूख गया, तृण-लत्तादिसे वेष्टित होगये, पक्षियोंने दाढी-मूंछ-कान आदिमें माले डाल दिये, तोभी केवलज्ञान नहीं हुआ. अब ऋषभदेवस्वामीने बाहुबलीको केवलज्ञान नजदीक ज्ञान कर प्रतिबोधने के लिये ब्राह्मी-सुन्दरी साध्वी बहिनोंको भेजीं. उन्होंने बाहुबली के पास आकर, मधुर स्वर से "वीरा मारा गजथकी उतरो, गजचढ्यां केवल न होयरे" इत्यादि गीतध्वनि की. वह गीतध्वनि सुनकर,

मनमें विचार करने लगे मेरी बहिन, ब्राह्मी-सुन्दरी कहती हैं हे भाई! हाथीसे नीचे उतरो. मैंने तो हाथी छोड दिये हैं. अहो! अब मैंने जान लिया, मैं मानरूपी हाथीपर चढ़ा हूँ. पहले दीक्षा लिये हुए मेरे छोटे भाई और भरतके पुत्र-पौत्रादिको कैसे वन्दना करूँ, यह मेरा अभिमान वृथाहै. धर्ममें अभिमान विनयका घात करने वाला है, पहले दीक्षा ली वे सब वंदनीय हैं, इससे साध्वियों का कहना सत्य है. ऐसा विचार कर मानको छोड कर वंदनाके लिये पैर उठाया, तत्काल केवलज्ञान उत्पन्न हुआ. बाहुबली केवली समोवसरणमें केवलियोंकी पर्षदा में आये. ब्राह्मी-सुन्दरी भी स्व स्थान गईं. यह भरत बाहुबलीका संक्षेपसे संबंध कहा।

अब श्रीऋषभदेवस्वामीका परिवार कहते हैं—श्रीऋषभदेव अर्हन् कौशलिक के चौरासी गच्छ और चौरासी गणधर हुए. ऋषभसेन आदि चौरासी हजार साधुओंकी संपदा हुई, ब्राह्मी-सुन्दरी वगैरह तीन लाख साध्वियाँ हुई। श्रेयांस आदि तीन लाख पचास हजार श्रावकोंकी संपदा हुई, सुभद्रा आदि पांच लाख चौवन हजार श्राविकाओं की संपदा हुई. ऋषभदेव अर्हन्के चार हजार सात सौ पचास चौदह पूर्वधारी सर्वज्ञ नहीं तोभी सर्वज्ञके समान हुए, नौ हजार अवधिज्ञानी हुए, वीस हजार केवलज्ञानी हुए, वीस हजार छः सौ वैक्रिय-

लब्धिधारी हुए, बारह हजार छः सौ पचास, अढाई द्वीप-समुद्रों में रहने वाले संज्ञि पंचेन्द्रीय जीवोंके मनोगत भावोंको जानने वाले मनपर्य्यवज्ञानी हुए, बारह हजार छः सौ पचास (जिन्होंके साथ इन्द्रादि देवभी वादमें नहीं जीत सकें ऐसे) वादी हुए. ऋषभदेव अर्हन्‌के अपने हाथसे दीक्षा दिये हुए बीस हजार साधु मोक्ष गये. चालीस हजार साध्वियाँ मोक्ष गईं. बाईस हजार नौ सौ पंचानुत्तरविमान वासी एकावतारी देव हुए. ऋषभदेव अर्हन् के दो प्रकार की अन्तःकृतभूमि हुई. एक युगान्तकृतभूमि, दूसरी पर्य्यायान्तकृतभूमि. श्रीऋषभदेवस्वामी के पट्टपरंपरामें असंख्याता राजा मोक्ष गये, श्रीअजितनाथस्वामी के पिता जितशत्रुराजा पर्य्यन्त मोक्षमार्ग चलता रहा, यह युगान्तकृतभूमि हुई और ऋषभदेवस्वामीको केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद अन्तर्मुहूर्त्तसे मरुदेवी माता मुक्ति गई. यह पर्यायान्तकृतभूमि हुई।

अब भगवान्‌के आयुःप्रमाणका और मुक्ति गमनका अधिकार कहतेहैंः—तिस काल तिस समयमें ऋषभदेव अर्हन् कौशलिक बीस लाख पूर्वतक कुमार अवस्थामें रहे, त्रेसठ लाख पूर्व तक राज्य भोग कर, त्रयासी लाख पूर्व तक गृहस्थावासमें रह कर, एक हजार वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें दीक्षा पाल कर, एक हजार वर्ष

कम एक लाख पूर्व तक केवलज्ञान सहित विचर कर, सर्व एक लाख पूर्व वर्ष तक चारित्र पाल कर, चौरासी लाख पूर्व वर्षका सर्वायुः पाल कर अन्तमें वेदनीय १, आयुः २, नाम ३, गोत्र ४, इन चार अघाति कर्मोंका क्षय करके इस अवसर्पिणीकाल के सुखम-दुःखम नामक तीसरे आरेके बहुत कुछ व्यतीत होनेपर सिर्फ तीनवर्ष साढेआठमहीने शेष रहनेपर शीतकालके तीसरे महीने के पांचवें पक्षकी माघवदी तैरसके दिन अष्टापदपर्वतके ऊपर दश हजार मुनियों के साथ जल रहित छः उपवास करके अभिजित् नक्षत्रमें चन्द्रमाका योग आनेसे, सवेरेसे लेकर दोपहरमें पद्मासन बैठे हुए भगवान् मोक्षगये, सर्व दुःखरहित हुए. श्रीऋषभदेवस्वामीके मोक्ष जानेके तीन वर्ष साढे आठ महीने जानेसे तीसरा आरा उतरा, और चौथा आरा शुरु हुआ. इस चौथे आरे में तेईस तीर्थंकर हुए. श्रीआदीश्वरके निर्वाणसे एक क्रोडाक्रोडसागरोपम प्रमाणमें तीन वर्ष साढे आठ महीने बियांलीस हजार वर्ष शेष रहे तब श्रीमहावीर स्वामीका निर्वाण हुआ. श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणसे नौसौ अस्सी वर्षे कल्पसूत्र पुस्तकमें लिखा गया. इस प्रकार श्रीआदीश्वर भगवान्के पांच कल्याणक संक्षेपसे कहे।

॥ इति सप्तम व्याख्यान समाप्त ॥

॥ अथ अष्टम व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

अब आठवीं वाचनामें स्थविरावली कहते हैंः—तिस काल तिस समयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामीके नौ गच्छ और ग्यारह गणधर हुए. सर्व तीर्थंकरों के जितने गणधर होते हैं, उतने ही गच्छ होते हैं. और श्री महावीरस्वामीके ११ गणधर और नौ गच्छ कैसे हुए? इसका कारण कहते हैं—अकंपित, अचलभ्राता इन दो गणधरोंकी एक वाचना थी. मैतार्य और प्रभास इन दो गणधरोंकी भी एक वाचनाथी. समुदायका नाम गच्छ है, इसलिये श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी के ग्यारहगणधरोंके नौ गच्छ * हुए. श्रीमहावीरस्वामीके प्रथम बड़े

---

*—धर्माचार्य के पास वाचना लेनेवाले साधुओंकी समुदायका नाम 'गच्छ' है, जिससे सर्व तीर्थंकरोंके शासनमें साधुओंको वाचना देनेवाले जितने गणधर होते हैं, उतने ही 'गच्छ' कहे जाते हैं. सर्वज्ञ शासन अविसंवादी होनेसे सब गच्छ वालों के आपसमें किसी प्रकारका विसंवाद नहीं होता, एक दूसरे को आज्ञा विरुद्ध नहीं कह सकते, धार्मिक व्यवहार सबका समान होता है. परन्तु अभी तो गच्छके नामसे वाडाबंधी होकर दृष्टिराग पक्षपातसे एक दूसरेको आज्ञा विरुद्ध समझने लगे हैं, विरोधभाव फैलाते हैं, यह सर्वथा अनुचित हैं. नवकार में "नमो लोए सव्व साहूणं" कहकर सब जगहके संयमी साधुओं को वंदना करते हैं, परन्तु यदि अपरिचय वाला या अन्य गच्छका कोई संयमी साधु सामने मिल जावे तो बहुत से लोग मुँह फेर लेते हैं और वंदना करनेमें पाप मानते हैं. यह कैसी अज्ञानता है।

शिष्य गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति अनागार (गौतमस्वामी) ने पांच सौ साधुओं को वाचना दी १; दूसरे अग्निभूति गौतम गोत्रीयनेभी पांचसौ साधुओंको वाचना दी २, तीसरे वायुभूति गौतम गोत्रीयने भी पांचसो साधुओंको वाचना दी ३, ये तीनों सगे भाई थे. चौथे आर्यव्यक्त भारद्वाज गोत्रीयने भी पांचसौ साधुओंको वाचना दी ४, पांचवें सुधर्मस्वामी अग्निवैश्यायन गोत्रीयनेभी पांचसौ साधुओंको वाचना दी ५, छठे मंडितपुत्र वासिष्ठ गोत्रीयनेभी साढेतीनसौ साधुओंको वाचना दी ६, सातवें मौर्यपुत्र * काश्यप गोत्रीयनेभी साढेतीनसौ साधुओं को वाचना दी ७, आठवें अकंपित गौतम गोत्रीय, नवें अचलभ्राता हारियायन् गोत्रीय इन दोनों गणधरोंने तीन २ सौ साधुओंको वाचना दी ८–९, दशवें मेतार्य, और ग्यारहवें प्रभास कौडिन गोत्रीय इन दोनोंनेभी तीन २सौ साधुओंको वाचना दी १०-११, इसलिये नौ गच्छ, और ग्यारह गणधर हुए. इन सबका परिवार चार

---

*– वासिष्ठ गोत्रीय मंडित पुत्र और काश्यप गोत्रीय मौर्य पुत्र, यह दोनों एकही माता के पुत्र होनेसे भाई थे. उनकी ज्ञाति में उस देशमें एक पति परलोक जाने पर दूसरा पति करनेका रिवाज था. यह बात उन्हों के जैन दीक्षा लेनेके पहले गृहस्थावस्थाकी थी, इसलिये इस प्रमाणसे जैन समाजमें अभी कई लोग विधवा विवाहका रिवाज स्थापित करना चाहते हैं, यह सर्वथा अनुचित है ।

हजार चारसौ हुआ. ये ग्यारह गणधर आचारांगादिसे दृष्टिवाद पर्य्यन्त द्वादशांगीके धारण करने वाले, बारह अंग (द्वादशांगी) के स्वयं रचनेवाले, चौदह पूर्वोंके धारण करने वाले, चौदह पूर्वोंका बारहवें अंगमें अन्तर भाव है, तथापि अनेक विद्या मंत्रोंकी महान् प्रभावक आम्नाय पूर्वोंमें है. इसलिये प्रधानपना बतलानेके लिये प्रथक् ग्रहण किया है, और सम्पूर्ण गणिपिटकके धारण करने वाले, अर्थात्–ज्ञानादि सर्व गुण रत्नोंके करंडिये (पेटी) के समान सूत्र और अर्थ सहित व समस्त अक्षरों के संयोगोंका प्रभाव युक्त द्वादशांगीको धारण करने वाले, गणि भावाचार्य हुए. ये सर्व गणधर राजगृह नगरके पासके पर्वतपर एक महीनेका अनशन करके मोक्ष गये, उन्होंमें नौ गणधर तो महावीर स्वामी के विद्यमान रहते मोक्ष गये. श्रीगौतम स्वामी भगवान् के निर्वाण के बारह वर्ष बाद मोक्ष गये. पांचवें गणधर श्रीसुधर्म स्वामी महावीर स्वामी के निर्वाणके २० वर्ष बाद मोक्ष गये. इस वक्त जो श्रमण निर्ग्रन्थ विचरते हैं, वे सर्व सुधर्म स्वामीके संतानीय हैं. अन्य गणधरों ने अपने २ निर्वाण समय अपनी २ शिष्य समुदाय सुधर्म स्वामी को दे दिया था, इसलिये उन्हों के शिष्यों की परंपरा नहीं चली.

अब सुधर्मस्वामीसे स्थविरावली कहते हैं–श्रीमहावीर स्वामीके शिष्य अग्नि वैश्यायनगोत्रीय सुधर्मस्वामी १,

सुधर्मस्वामीके शिष्य काश्यपगोत्रीय जम्बूस्वामी २, जम्बूस्वामीके शिष्य कात्यायनगोत्रीय प्रभवस्वामी ३, प्रभवस्वामीके शिष्य मनक पिता, वच्छगोत्रीय शय्यंभवसूरि ४, शय्यंभवसूरिके शिष्य तुंगीयायन गोत्रीय यशोभद्रसूरि ५ हुए. अब इन स्थविरोंके चरित्र कहते हैं:—सुधर्मस्वामीका चरित्रः—कोल्लागसन्निवेशमें धम्मिलनामका ब्राह्मण था. उसके भद्दिलानामकी भार्य्या थी. उनके सुधर्म नामका चौदह विद्यानिधान पुत्र था, जिसने पचास वर्षकी आयुः में भगवान्के पास दीक्षा ली, तीस वर्ष तक भगवान्की सेवाकी, भगवान्के मोक्ष जानेके बाद बारह वर्ष तक छद्मस्थ अवस्थामें रहे, आठ वर्ष तक केवल ज्ञानी रहे. सौवर्षका सर्व आयुः पालकर, और जम्बूस्वामी को अपने पट्टपर स्थापित करके मोक्ष गये. जम्बूस्वामीका चरित्रः— एकदा श्रीमहावीर स्वामीको वंदना करनेके लिये समोवसरणमें अनेक देव और चार देवियों सहित महान् कांतिवान् विध्युन्माली नामक देव आया, तब श्रेणिकराजाने पूछा हे स्वामिन् ! इस देवकी ऐसी आश्चर्य करने वाली अधिक कान्ति कैसे है ? स्वामी बोले—हे श्रेणिक ! यह देव पूर्व भवमें महाविदेह क्षेत्रमें शिवनामक राजकुमार था. वैराग्य पाकर बेले बेलेका तपकरके पारणे में आंबिल करता. इस प्रकार बारह वर्ष तक निरन्तर महान् तप करके पांचवें देवलोकमें विध्युन्मालीनामक

महर्द्धिक देव हुआहै. यह देव वहांसे सातवें दिन च्यवकर इसी राजगृह नगरीमें ऋषभदत्त सेठकी धारणी स्त्रीके पुत्र होगा. भगवान्‌के कहने मुजब जंबूकुमार उत्पन्न हुआ. जन्म महोत्सव किया. माताने जम्बूवृक्षका स्वप्न देखा था, इसलिये स्वप्नके अनुसार 'जम्बूकुमार' नाम रक्खा. क्रमशः योवन अवस्था पाया, एकसमय जंबूकुमार श्री-सुधर्म स्वामीके पासमें धर्म सुनकर वैराग्य पाकर दीक्षा की आज्ञा लेनेको अपने घर आताथा. नगरके दरवाजे में प्रवेश करते समय तोपका गोला सामने आया, थोड़ेसे हटकर उसे बचा लिया, नहींतो मरण होजाता, वहींसे पीछे लोटकर उसी वक्त सुधर्मस्वामी के पास जाकर ब्रह्मचर्यव्रत ले लिया. बादमें नीरागी होनेपर भी माता-पिताके आग्रहसे पाणिग्रहण किया, रात्रिमें आठ स्त्रियोंको प्रतिबोधी. उसी रात्रिमें निद्रादेनेवाली और तालोद्‌घाटनी इन दो विद्यासहित प्रभवनामका चौर पांच सौ चौरोंसहित चौरीकरनेको आयाथा, उसकोभी प्रतिबोधा. प्रभातमें आठ स्त्रियों और उनके माता-पिता २४, अपने माता-पिता २६, और पांचसौ एक चौर इन सर्व ५२७ के साथ जम्बूस्वामीने दीक्षा ली. जिस जम्बूकुमारने नवी परणी हुई आठ स्त्रियाँ और ९९ क्रोड़ सौनैयोंका त्याग किया, १६ वर्ष घरमें रहे. २० वर्षतक छद्मस्थ चारित्रपाला और ४४ वर्ष केवलीपर्य्याय पालकर, ८० वर्षका

सर्वायुः पालकर श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणके ६४ वर्ष बाद् चरमकेवली जम्बूस्वामी मोक्ष गये. तब मनपर्य्यवज्ञान १, परमावधिज्ञान २, पुलाकलब्धि ३, आहारकशरीर ४, क्षपकश्रेणि ५, उपशमश्रेणि ६, जिनकल्पिमार्ग ७, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्म संपराय, यथाख्यात ये तीन चारित्र ८, केवलज्ञान ९, सिद्धिगमन १०, यह दशवस्तु विच्छेद् हुई. श्रीजम्बूस्वामीका सौभाग्य अधिक है, इसलिये मोक्षलक्ष्मी इनको पति प्राप्त करके दूसरे की इच्छा नहीं करती. जम्बूस्वामी सरीखा कोई कोतवाल भी नहीं हुआ, और होवेगाभी नहीं, कि जिसने चौरों को भी मोक्ष मार्गमें चलने वाले साधु बना दिये, और जम्बूस्वामी वणिक्जाति वाले महालोभी थे, जिससे मुक्तिपुरीमें प्रवेश कर, अनन्त सुखको प्राप्त होकर अन्यका आगमन रोकनेके लिये मुक्तिके ताला लगा दिया. इति जम्बूस्वामी चरित्र. श्रीजम्बूस्वामीने प्रभवस्वामीको आचार्य पदमें स्थापित किये थे. एक समय श्रीप्रभवस्वामीने ज्ञानका उपयोग देकर गच्छमें और संघमें आचार्यपद् योग्य किसीको न देखा परंतु राजगृह नगरी में यज्ञ करते हुए शय्यंभवभट्टको देखा. तब प्रभवस्वामीने दो साधुओंको सिखा कर भेजे. वे साधु वहां जाकर बोले— "अहो कष्टं अहो कष्टं तत्त्वं न ज्ञायते" यह सुनकर शय्यंभवने सत्य तत्त्व ज्ञानके लिये हाथमें खड्ग लेकर गुरुसे

पूछा तत्त्व कहो. गुरुने विचारकिया शिरच्छेद् कोई करता होवेतो तत्त्व कहदेना, इसमें कोईदोष नहीं. गुरुबोले—यज्ञ स्तम्भके नीचे श्रीशांतिनाथकी प्रतिमाहै, जिससे शांति होती है. यह सुन जैनधर्मपर रुचि हुई, और प्रभवस्वामी के पास जाकर, धर्मोपदेश सुनकर दीक्षा ली. श्रीप्रभवस्वामी गृहस्थावासमें तीस वर्ष रहे, पचपन वर्ष तक दीक्षा पाली, पिचासी वर्ष की सर्वायुः पालकर और शय्यंभवसूरिजी को अपने पट्टपर स्थापित करके स्वर्ग गये. इति प्रभवस्वामी चरित्र. जब शय्यंभवभट्ट ने दीक्षा ली थी, तब उनकी स्त्री के गर्भ था, उसके पुत्र हुआ, 'मनक' नाम दिया. वह पाठशालामें पढने जाता था. लडके आपस में लडने लगे और मनकको बिना पिताका कहने लगे. उससे दुःखी होकर, माताके पास आकर पिताका नाम पूछा. माता बोली—तेरे पिताका नाम शय्यंभव-भट्ट है, दीक्षा लेकर आचार्य हुए हैं, अभी चम्पा नगरी में हैं. तब मनक चम्पा गया. आचार्य बाहर गये थे, उन से रास्ते में मनक मिला और पूछा—शय्यंभवसूरि कहां हैं? गुरु बोले—तेरे क्या प्रयोजन है? उसने अपने आने का कारण कहा, तब उन्होंने अपना संबंध बतलाकर संसारकी असारता दिखाकर प्रतिबोध दिया, मनकने कहा—मुझको दीक्षा दो. गुरु बोले— जो तू अपना पिता-पुत्र का सम्बन्ध साधुओं से नहीं कहे तो मैं दीक्षा दूं. मनक

ने अंगीकार किया. दीक्षा देकर गुरु उपाश्रयमें आये, और ज्ञानसे मनक का अल्प आयुः जानकर सिद्धांतोंमेंसे संक्षिप्तसार लेकर दशवैकालिकसूत्र बना कर मनक को पढाया. छः महीने तक चारित्र पालकर स्वर्ग गया. श्रावक अग्निसंस्कार करके गुरुके पास आये. यशोभद्रसूरि पासमें थे, गुरुने उपदेश दिया. गुरुके नैत्रोंमें आंसू आये. यशोभद्रसूरि ने और संघने कहा कि हे भगवन्! आपके अनेक साधु स्वर्ग जाते हैं, परन्तु आंसू कभी नहीं देखे, आज आंसू आनेका क्या कारण? गुरु बोलेः—यह मनक मेरा पुत्र था, थोडे दिनों में इसने अपना आत्म कल्याण किया, इसलिये मोह व हर्षसे आंसू आये, साधुओं ने कहा— हे भगवन्! यह सम्बन्ध आपने पहले क्यों नहीं बताया. गुरु बोलेः— जो मैं पुत्रका सम्बन्ध पहले कहता, तो इससे कोई भी साधु वैयावच्च नहीं करवाता, तब इसका कल्याण कैसे होता. इसके बाद गुरु दशवैकालिकको सिद्धांतों में वापिस मिलाने लगे, जब अल्प आयुः व अल्प बुद्धि वालों के हितकारी जानकर संघने मना किया, तब साधुओं में पढाना शुरु हुआ. श्रीशय्यंभवसूरि अपने पट्टपर यशोभद्रसूरि को स्थापित करके श्रीमहावीर स्वामी के निर्वाण से ९८ वर्षे स्वर्ग गये.

अब यशोभद्रसूरिसे आगे संक्षेप वाचना से स्थविरावली कहते हैं. तुंगियायन-गोत्रीय यशोभद्रसूरि के दो

शिष्य हुए– एक संभूति विजय माढर गोत्रीय १, दूसरे भद्रबाहु प्राचीन गोत्रीय २, संभूति विजय आचार्य्य बयालीस वर्ष घरमें रहे, चालीस वर्ष साधुपने में, आठ वर्ष युग प्रधान पदमें विचर कर श्रीवीर निर्वाणसे एक सौ छप्पन वर्षे स्वर्ग गये. इनके पट्टपर उनके छोटे भाई भद्रबाहु स्वामी आचार्य हुए. इनका सम्बन्ध कहते हैं–प्रतिष्ठानपुरमें वराहमिहिर १, भद्रबाहु २, ये दोनों भाई ब्राह्मण थे, श्रीयशोभद्र सूरिके पासमें धर्म सुनकर दोनोंने दीक्षा ली और क्रमसे चौदह पूर्वधारी हुए. गुरुने भद्रबाहु स्वामीको विनीत जानकर आचार्य पद दिया, परन्तु वराहमिहिरको अविनीत होनेसे आचार्य पद नहीं दिया. क्योंकि आचार्य पद गौतमादि गणधर महापुरुषोंने धारण किया है. यह पद जो गुरु कुपात्रको दे देवें तो गुरु महापापी और अनंत संसारी होवे. इसपर वराहमिहिर नाराज हुआ, गच्छसे निकलकर गुरुपर द्वेष रखने लगा, पूर्व पढे थे जिससे नवीन ज्योतिष्शास्त्र 'वराहसंहिता' नामका ग्रन्थ बनाया, साधुका वेष छोडकर ब्राह्मणका वेष धारण करके निमित्तसे आजीविका करता रहा. एकदा वह लोगोंसे बोला कि मैंने नगरके बाहर लग्न लिखा था, परन्तु लग्नको नहीं मिटाया, घर आकर विचार किया– अहो ! मैंने ज्ञानकी विराधना की, उसके बाद मैं लग्न मिटानेको वहाँ गया, लग्नके ऊपर लग्नका अधिष्ठाता देव

सिंह पूंछ पछाड़ते हुए बैठा देखा, तथापि लग्नकी भक्तिसे साहस करके मैंने सिंहके नीचे हाथ डालकर हाथ फेर दिया. तब सिंह सूर्य होकर बोला—हे वराहमिहिर! वर मांग मैं प्रसन्न हुआ हूँ. मैंने कहा—नक्षत्रादि चार साक्षात् दिखाओ. तब सूर्य्य मुझको ज्योतिष्मंडल में ले गया, सर्व ग्रहोंका उदय-अस्त-वक्रादि स्वरूप दिखाया, फिर यहाँ पहुँचा दिया. इसलिये मैं ज्योतिष् के बलसे अतित, अनागत और वर्तमान सर्व जानता हूँ. ऐसा कहते हुए राजादिको चमत्कार दिखाकर खुशी किये. उस नगरमें भद्रबाहुस्वामी आये. श्रावकों ने प्रवेश महोत्सवादिसे बहुत महिमा की, वराहमिहिरसे सहन न हुआ, उनका अपमान करने की इच्छा हुई. बादमें राज्य सभामें जाकर राजाके आगे बोला—आजसे पांचवें दिन पूर्व दिशासे वर्षा आवेगी १, वहभी तीसरे पहरके अन्तमें २, पहले कुण्डली लिख देता हूँ उसके मध्यमें ३, बावन पलका मच्छ पडेगा ४. ऐसा निमित्त सुनकर श्रावकोंने भद्रबाहुस्वामी से पूछा, गुरु बोले—इसमें कुछ सत्य और कुछ असत्यभी है. वर्षा पूर्व दिशासे नहीं किन्तु ईशान कौनसे आवेगी १, तीसरे पहरके अन्तमें नहीं किन्तु छः घडी दिन बाकी रहने पर २, मच्छ कुण्डली के मध्यमें नहीं किंतु कुछ अन्दर और कुछ बाहर पडेगा ३, बावन पलका नहीं किंतु वायुसे सूकने से तौलमें साढे इक्यावन

पलका होगा ४. भद्रवाहु स्वामी का कहा हुआ ऐसा विशेष निमित्तभी राजाने सुना, वादमें पांचवें दिन वृष्टि हुई, भद्रवाहु स्वामीके कहे हुए सर्व वचन सत्य हुए. वराहमिहिर सत्यासत्यवादी ठहरा, और भद्रवाहु सत्यवादी प्रसिद्ध हुए. एक समय राजाके पुत्र हुआ. वराहमिहिरने सौवर्ष आयुःकी जन्मपत्री लिखी. सर्व लोग अक्षतों के थाल भरकर राजाके पास बधाई देनेको जाने लगे. सर्व दर्शनीय लोगभी आशीर्वाद देनेको आये परन्तु भद्रबाहु स्वामी नहीं गये. वराहमिहिरने राजाके आगे काह—हे महाराज ! आपके पुत्र हुआ सो भद्रवाहुको अच्छा नहीं लगा. जिससे वह यहां नहीं आये. यह वात श्रावकों ने भद्रवाहु स्वामी से कही. गुरु बोलेः—वारंवार क्या जावें, एकवक्त जावेंगे. श्रावकों ने पूछा यह कैसे ? गुरु बोले—आजसे आठवें दिन विल्ली से राज पुत्रकी मृत्यु होने वाली है. यह वात राजानेभी सुनी, और राज्य महलों में बिल्लियों को रोकने के सैंकड़ों यत्न कराये. उसके बाद आठवें दिन दैवयोगसे दासी के हाथसे वालकके ऊपर अर्गला गिरपडी, बालक मर गया. वराहमिहिरने लोगों से कहा बिल्ली से तो मृत्यु नहीं हुई. गुरु बोले—आगलमें बिल्लीका रूप वना हुआ है, देख लो. इसपर वराहमिहिर लज्जित हुआ, वहां से अन्यत्र गया, मरकर व्यन्तर हुआ. जैनोंपर रोगका उपद्रव करने लगा. तव गुरु महाराज

ने श्रावकों का उपद्रव निवारण करने के लिये महा प्रभाव सहित "उवसग्गहर" स्तोत्र बनाकर दिया और श्रावकों ने उसे घर २ में पढना शुरू किया, उसीके प्रभाव से व्यन्तर का उपद्रव नष्ट हुआ, और सर्वत्र शांति हुई. कभी गाय दूध नहीं देती, तब भी लोग इस स्तोत्रको गुणते, तब अधिष्ठायकदेव आकर उन्होंका विघ्न निवारण करता. इस प्रकार हमेशा घर २ में आनेसे देवको बडा कष्ट होने लगा, तब आचार्य से विनती की, कि मैं संघके कार्य्योंसे क्षण मात्रभी विश्राम नहीं पाताहूँ, इसलिये अतिशय वाली छठी गाथा निकाल दो, मैं अपने स्थानपर रहा हुआ ही ये पांच गाथा गुणने वालों के विघ्न दूर करूंगा. तब गुरुने छठी गाथा भंडार कर दी. भद्रबाहु स्वामी के बनाये हुए आवश्यक निर्युक्ति आदि अनेक ग्रन्थ अभी मौजूद हैं, भद्रबाहु स्वामी पैंतालीस वर्ष घरमें रहे, सत्रह वर्ष साधुपने में, चौदह वर्ष युगप्रधानपदमें रहकर छिअत्तर वर्षका सर्वायुः पालकर श्रीवीर निर्वाणसे एकसो शत्तरवर्षे स्वर्ग गये. अब श्रीसंभूतिविजय माढर गोत्रीयके शिष्य श्रीस्थूलभद्र स्वामी गौतम गोत्रीयका चरित्र कहते हैं:—पाटलीपुत्र नगरमें नन्द राजाके 'शकडाल' मन्त्री था. उसके 'लाछलदेवी' स्त्री थी. उनके दो पुत्र हुए—स्थूलभद्र १, और सिरीयक २. वहांपर वररुचिभट्ट राजसभामें आकर हमेशा १०८ काव्यों

से राजा की स्तुति करता था, परन्तु मिथ्यात्वी होने से मन्त्री उसकी प्रशंसा नहीं करे, तबतक राजा कुछ भी इनाम नहीं दे. तब भट्टने मंत्रीकी स्त्री की सेवा की. स्त्रीकी प्रेरणा से मंत्रीने काव्योंकी प्रशंसा की. राजा तुष्टमान होकर हमेशा १०८ सौनेये इनाम देने लगा. मन्त्रीने भंडार खाली होता जानकर राजाको मनाकिया तोभी राजाने नहीं माना. मंत्रीके यक्षा आदि सात पुत्रियाँ थीं, प्रथम काव्योंको एकबार सुननेसे यादकर लेती, दूसरी दोबार सुननेसे याद कर लेती थी. इसी प्रकार सातवीं पुत्री सातबार सुननेसे यादकर लेती. उन पुत्रियोंके मुखसे राज सभामें वररुचिके कहे हुए काव्य सुना दिये और यह नवीन काव्य नहीं है ऐसा कहकर सभासे निकाल दिया. बादमें वररुचि भट्ट गंगा नदी में संध्या समय यंत्र प्रयोगसे पांचसो सौनेयोंकी गठडी रखदेता, सवेरे गंगाकी स्तुति करके पैरसे यन्त्र दबाता, जिससे गठडी उछलकर हाथमें आती, तब लोगोंसे कहता देखो गंगाजी मुझपर प्रसन्न होकर पांचसो सौनेये हमेशा देतीं हैं. यह बात राजाने भी सुनी और मंत्री से उसका कारण पूछा. मन्त्रीने रात्रिमें आदमी भेजकर गठडी रखता देखकर गुप्त रीतिसे गठडी मंगवा ली, सवेरे राजा गंगापर आया, वररुचिने स्तुति करके यन्त्र दबाया परन्तु गठडी नहीं पाई, तब शकडाल बोला—हे वररुचि !

सन्ध्याको रखना भूल गया, या किसीने ले ली. ऐसा कहकर वह गठडी राजाको बताकर वररुचिको दे दी. बाद में मन्त्री पर द्वेष रखता हुआ वररुचि लडकों को पढाने लगा. लडकों को एक दोहा सिखाया.

नन्दराय न वि जाणही, जं सगडाल करेसि । नन्दराय मारे य करी, सिरीयो राज ठवेसि ॥१॥

यह दोहा लड़के कहते हुए नगरमें फिरने लगे, यह बात राजाने सुनी और मन्त्री के घर गुप्त पुरुष भेजे. सिरीयकके विवाहकी सामग्री तय्यार होती थी. उसमें राजाको बुलाकर भेट देनेके लिये छत्र, चँवर आदि बन ते थे. उनको अपने मारने की सामग्री जानकर राजा नाराज हुआ. मन्त्री को कुटुम्ब सहित मारूंगा, राजाका ऐसा विचार मन्त्री ने जान लिया. मन्त्री ने अपने कुलकी रक्षाके लिये सिरीयकसे कहा—राजा नाराज हुआहै, मैं तो वृद्ध मरने वाला हूँ. मेरे एकके मरने से सर्व कुटुम्ब बचेगा. इसलिये मैं जब राजाको नमस्कार करूँ, तब तू मेरा मस्तक काट देना. सिरीयकने मुश्किलसे यह बात मानी. मन्त्रीने राजाको नमस्कार किया, जब राजाने मुंह फेर लिया. तब सिरीयक बोला—जो राजाका द्वेषी होता है वह मारने योग्य है, ऐसा कहकर मन्त्री का मस्तक काट दिया. राजा खुशी होकर बोला— तू पिताका अधिकार ले ले. सिरीयक बोला—मेरा बडा भाई

स्थूलभद्र बारह वर्षोंसे कोशा वैश्याके घर रहताहै और बारह करोड़ सौनेये खर्चकर दिये हैं, उसको यह अधिकार दो. राजाने स्थूलभद्रको बुलाकर कहा पिताका पद ग्रहण कर. स्थूलभद्रने वररुचि भट्टके प्रपंचसे पिताका मरण सुनकर संसारको असार जानकर, लोचकरके रत्न कम्बलका रजोहरण बनाकर संभूतिविजय आचार्य के पासमें दीक्षा ले ली. राजाने सिरीयकको मन्त्रीकी मुद्रिका दी. स्थूलभद्र स्वामी गुरुकी आज्ञासे कोशा वैश्याके यहाँ चौमासा रहे १, दूसरा साधु सिंहकी गुफामें चौमासा रहा २, तीसरा साधु सर्पके बिलके पास चौमासा रहा ३, चौथा साधु कुएके बीचके काष्ठपर चौमासा रहा ४. स्थूलभद्र स्वामीकी कठिनता बतलाते हैं:—वर्षा काल, मेघ गर्जें, बिजलियाँ चमकें, मयुर बोलें, पपैयें पियु २ करें, मैंडक टर्रावें, वैश्याकी चित्रशालामें रहे, हमेशा षट्रस भोजन करें, रागवान् कोशा वैश्या सौलह श्रृंगार करके सखियोंके साथ नृत्य करती. कामोद्दीपक सराग वचन बोलती. इसतरहसे बहुत हाव भाव नाटक आदि करके उसने मुनिके मनको चलानेका बहुत उद्यम किया, परन्तु महापुरुषका तो रोम मात्रभी नहीं चला और धर्मोपदेश देकर कोशाको श्राविका बना दी. चौमासा पूरण करके चारों साधु गुरुके पास आये. जब तीन साधु आये, तब तो गुरु कुछ उठकर बोले:— हे दुष्कर

कारकों ! तुम्हारा आना अच्छा हुआ और जब स्थूलभद्रस्वामी आये, तबतो गुरुने उठकर "दुष्कर दुष्कर कारक तुम्हारा आना अच्छा हुआ" ऐसा कहा. तब उन साधुओंमेंसे सिंह गुफावासी साधु अमर्षसहित दूसरा चौमासा करनेके लिये गुरुने मना किया तोभी उपकोशा वेश्याके घर गया. उसका रूप देखकर मन चलायमान हुआ. वैश्या बोली—धन लाओ. साधुबोला—धन कहाँ हैं? उपकोशा बोली—नैपाल देशका राजा याचकोंको सवा-लक्ष सौनेयों के मूल्यका रत्न-कम्बल देता है, उसे लाओ. जब वर्षाकालमें भी वह साधु राजाके पास जाकर रत्नकम्बल लेकर आया, और वैश्याको दिया. तब वैश्याने स्नान करके रत्नकम्बलसे शरीर पूँछकर मुनिको प्रति-बोधनेके लिये उसे मोरीमें डालदिया. मुनिबोला—अहो! अज्ञानतासे तैने यह क्या किया? बहुत कष्टसे मैं अमूल्य कम्बल लाया था. तैने खालमें वृथा डाल दिया. उपकोशा बोली—अरे मूर्ख! तैने क्या किया? उभय लोक सुखकारी रत्नकम्बलसे भी अनंत गुणा अधिक मूल्य वाला और महान् दुर्लभ ऐसा चारित्र रत्न, मल-मूत्रसे भरा हुआ मेरा अपवित्र शरीरपर डाल दिया, यह सुनकर प्रतिबोध पाया, गुरुके पास आकर मिच्छामि दुक्कडं दिया. एक समय राजाने कोशा वैश्याके पास एक सारथीको भेजा. झरोखेमें बैठेहुए सारथीने बाणके पीछे बाण

जोडकर दूर से आमका गुच्छा तोड़ कर कोशाको दिया, अपनी कला बताई. तव कोशाने थालमें सरसोंका ढेर कर, उसपर एक सूई रखकर, सूई के अग्रभागमें पुष्पपर देवी के जैसा नाटक किया, और यह गाथा बोली—

" न दुक्करं अंवय लुंवितोडणं, न दुक्करं सिक्खिय नच्चियाए ॥
तं दुक्करं तं च महाणुभावो, जं सो मुणी पमयवणम्मि वुज्झो ॥ १ ॥ "

आमकी लुंव तोड़ना दुष्कर नहीं है, सरसोंपर नाचना भी दुष्कर नहीं है, दुष्करतो वह है, जो स्थूलभद्र महामुनिने स्त्रियोंमें रहकर अखंड ब्रह्मचर्यका पालन किया. बारह वर्षतक मेरे साथमें रहे, बाद दीक्षा ली, फिर चौमासा करनेको यहां आये. मेरे किये हुए हाव-भावादि विकारोंके कारणोंको सर्वथा निष्फल किये, और अखंड ब्रह्मचर्य धारण करते हुए वापिस गये. यह सुनकर सारथीने भी दीक्षा ली. अन्यदा वारह वर्षी दुष्कालके अन्त में पाटलीपुत्रमें साधु इकट्ठे हुए. नहीं गुणनेसे कितनेही साधु सिद्धान्त भूल गये. तब दृष्टिवाद पढ़ानेके लिये भद्रबाहुस्वामीको बुलानेके लिये संघने दो साधु नैपाल देशमें भेजे. भद्रबाहुस्वामीने कहा—इस वक्त मैने महा प्राणायाम ध्यान प्रारम्भ कियाहै, इससे नहीं आसकता. ऐसा कहकर मुनियोंको वापिस भेजे. तब संघने फिर

मुनियोंको भेजकर कहलाया—जो संघकी आज्ञा न माने, उसको क्या दंड मिले? भद्रबाहुस्वामीने कहा संघसे बाहर करना चाहिये. परन्तु मेरे आने में ध्यानका भंग होताहै, इसलिये संघ मुझपर महरबानी करके साधुओं को यहां भेजे, मैं पढाउंगा. तब संघने स्थूलभद्रादि पांचसौ साधुओंको भेजे. गुरु सातवार वाचना देकर पढाने लगे, जिससे अन्य साधु तो घबराकर चले गये, परन्तु स्थूलभद्रस्वामी दो वस्तु कम दश पूर्व पढे. एकदा यक्षादि सात साध्वियाँ स्थूलभद्रस्वामीकी बहिनें भाईको वंदना करनेको आई. आचार्यको वंदना करके पूछा—स्थूलभद्रजी कहाँ हैं? गुरुने कहा पर्वतकी गुफामें पूर्व गुण रहाहै, तब वे वहाँ गई. बहिनोंको आती देख कर स्थूलभद्रजीने चमत्कार दिखानेको सिंहका रूप किया. बहिनें सिंहको देखकर डरी और गुरुके पास जाकर बोली— वहां हमारा भाई नहीं है, सिंह बैठाहै. तब गुरुने ज्ञानसे जान लिया कि विद्याके बलसे स्थूलभद्र सिंह बना है. गुरु बोले—अब तुम वहां जाओ. भाई तुमको मिलेगा. साध्वियें वहाँ गई, भाईको देख कर हर्षित हुई, वन्दना की. एकदा गुरु महाराजके पास आकर यक्षाने कहा—हमारे साथ सिरीयकने दीक्षालीथी. पर्युषणापर्वमें मैने सिरीयक को उपवास कराया, वह उसी दिन स्वर्ग गया. उसका प्रायश्चित्तके लिये मुझको श्रीसीमंधरस्वामीके पास जाना है.

तब सब संघने काउसग्ग किया. शासन देवी यक्षाको सीमन्धरस्वामी के पास ले गई. सीमंधरस्वामी ने निर्दोष कहा, और दो चूलिकाएँ दीं, वे लेकर यहाँ आई और गुरुको वन्दना करके अपने स्थान गई. अन्यदा स्थूलभद्र स्वामी अपने मित्र ब्राह्मणके घर गये और पूछा—मेरामित्र कहाँ है ? ब्राह्मणी बोली दरिद्री होनेसे भिक्षाके लिये विदेश गया है. स्थूलभद्रस्वामीने ज्ञानसे जान लिया— इसके घरमें अमुक स्थानमें निधानहै परन्तु यह नहीं जानता. इसके बाद निधानकी तरफ संकेत कर चले गये. मित्रने आकर स्त्रीके वचनसे वह स्थान खोदा, महा निधान निकला, ब्राह्मण सुखी हुआ. सिंह बना और निधान दिखाया, ये दो अपराध जान कर स्थूलभद्रस्वामी वाचना लेनेको आये, तब गुरुने कहा—तू अयोग्यहै, अब तुझे वाचना नहीं दूँगा, तथापि संघके आग्रहसे दूसरोंको नहीं पढाना, ऐसा नियम दिलाकर आगे के चार पूर्व मूलसे पढ़ाये, अर्थसे नहीं. इसप्रकार स्थूलभद्रस्वामी भगवान् के निर्वाणसे दोसौ पन्द्रह वर्ष स्वर्ग गये. जम्बूस्वामी चरमकेवली १, और प्रभवस्वामी १, शय्यंभवसूरि २, यशोभद्रसूरि ३, संभूतिविजय ४, भद्रबाहु ५, स्थूलभद्र ६, ये छः चौदह पूर्वधर श्रुतकेवली हुए. स्थूलभद्रजी के दो शिष्य—पहिले एलावत्य गोत्रीय आर्य महागिरी १, दूसरे वासिष्ठ गोत्रीय आर्य सुहस्ति सूरि २, आर्य महा-

गिरीजी जिनकल्पी मार्ग विच्छेद हुआ था, तथापि उसके समान चारित्र पालते थे एकदा आर्य महागिरीजी गौचरी गयेथे, उस वक्त सेठके घरमें रहे हुए आर्य सुहस्ति सूरिने उन्होंकी स्तुति की.

अब आर्य सुहस्तिसूरिका चरित्र कहते हैं— एकदा दुष्काल पडा. अन्न नहीं मिले, लोग बड़े दुःखी होने लगे. राजा भी रंक जैसे हुए, तोभी श्रावक साधुओंको घर २ में विशेष दान देते थे, उसको देख कर एक भिक्षुक बोलाः—मुझको खानेको दो. साधु बोलेः—गुरु जाने. तब वह गुरुके पास आया, गुरुने भावि लाभ जान कर, दीक्षा देकर यथेष्ट भोजन कराया, बादमें विसूचिका हुई, चारित्र की अनुमोदना करता हुआ वह मरकर उज्जैनी नगरी में संप्रतिराजा हुआ *, संप्रतिको जन्म समयही राज्य मिलगया था. अनुक्रमसे तीन खंड का राजा हुआ. एकदा रथयात्रामें आये हुए आर्यसुहस्ति सूरिको देखकर संप्रतिराजाको जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हुआ, तब

---

* श्रेणिक राजा १, श्रेणिकके पट्टपर कोणिक हुआ २, जिसके पट्टपर उदायिन हुआ ३, उदायिनके पट्टपर नौ नन्द हुए १२, नवें नन्दके पट्टपर चन्द्रगुप्त हुआ १३, चन्द्रगुप्तके पट्टपर बिन्दुसार हुआ १४, उसके पट्टपर अशोकश्री १५, जिसका पुत्र कुणाल हुआ १६, कुणालका पुत्र संप्रति राजा हुआ १७.

गुरुके पास आकर पूछा– हे स्वामिन् ! अव्यक्त सामायिकका क्या फल होताहै ? गुरु बोले–राज्यादि. तब राजाको विशेष प्रतीति हुई, और बोला– आप मुझको जानते हो ? गुरुने ज्ञानके उपयोगसे राजाका पूर्वभव जानकर बतलाया, और उपदेश देकर श्रावक किया. संप्रति राजाने सवालक्ष मन्दिर बनवाये, सवा करोड जिन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराई, तेरह हजार जीर्ण उद्धार कराये. पिच्चानवे हजार धातुओंकी प्रतिमा कराई, सातसौ दानशालायें बनाईं, जिनमन्दिर और जिनप्रतिमाओंसे तीनखंडकी पृथ्वी शोभित की. कर छोड दिये और पहले साधुओंका वेष धारण करने वाले पुरुषोंको अनार्य देशमें भेजकर साधुओं के विहार योग्य देश किया, अनार्य देशों के राजाओंको भी जिनधर्म के रागी किये और वस्त्र, पात्र, घृत, दूध, गुड़ आदि फासुक द्रव्यों के बेचने वालों को बुलाकर राजाने कहा, आपलोग साधुओंको विनती करके ये वस्तुएँ देना. उसका मूल्य मैं गुप्तरूपसे दिला-ऊँगा. उन्होंने वैसा ही किया. साधुओंने भी अशुद्धको भी शुद्ध बुद्धिसे लिया. आर्य सुहस्तिसूरि प्रतिबोधित संप्रति राजा ऐसा धर्म प्रभावक हुआ. आर्य सुहस्तिसूरि चारित्र पालकर स्वर्ग गये। आर्य सुहस्तिसूरिके दो शिष्य कोटिक १, काकंदक २ नामा तत्त्वज्ञ और कठिन क्रियावाले हुए. अथवा सुस्थित-सुप्रतिबुद्धनामक, करोड़

वार सूरिमन्त्रके जापसे कौटिक और काकन्दी नगरीमें हुए, इसलिये काकन्दक, ये दो नाम कहे जाते हैं. कोटिक-काकन्दक व्याघ्रापत्य गोत्रवालोंके शिष्य कौशिकगोत्रीय इन्द्रदिन्न सूरि हुए, इन्द्रदिन्न सूरिके शिष्य गौतम गोत्रीय दिन्नसूरि हुए, दिन्नसूरि के शिष्य कौशिकगोत्रीय आर्यसिंहगिरी जातिस्मरण-ज्ञानवाले हुए, सिंहगिरी के शिष्य गौतमगोत्रीय वज्रस्वामी हुए, वज्रस्वामीके शिष्य उत्कौशिक गोत्रीय वज्रसेनसूरि हुए, वज्रसेनसूरि के शिष्य नागिल १, पोमिल २, जयन्त ३, तापस ४, ये चार स्थविर हुए. इन चारोंके नामकी नागिला १, पोमिला २, जयन्ति ३, और तापसी ४, ये चार शाखायें निकलीं.

अब सिंहगिरी, वज्रस्वामी, वज्रसेनसूरि, इन्होंका चरित्र कहते हैं:—सिंहगिरी के पास सुनंदाके भाई आर्य समित और पति धनगिरी दोनोंने दीक्षा ली थी. तब तुंबवन गांवमें सुनंदा गर्भवती थी, उसके पुत्र हुआ, स्त्रियाँ बोलीं—इसके पिताने दीक्षा ली है, कौन उत्सव करे ? ऐसा सुन कर बालकको जातिस्मरण-ज्ञान हुआ, दीक्षा लेनेकी इच्छा हुई, जिससे हमेशा रोना शुरू किया, माता बहुत दुःखी होगई और विचार किया—इसे किसीको दे दूँ. उसी समय सिंहगिरी आचार्य आये, धनगिरी जब गौचरी गये तब गुरुने लाभ जानकर कहा—

आज गोचरीमें सचित्त या अचित्त जो मिले सो ले लेना. बादमें धनगिरी सुनंदाके घर गये, सुनंदा बोली– आपके पुत्रने मुझको बहुत कष्ट दिया है, हर वक्त रोताही रहता है, इसको लो. साधु बोले– आज तू देती है, पीछे दुःख करेगी, फिर वापिस नहीं मिलेगा. सुनंदा बोली–मुझको नहीं चाहिये. तब धनगिरी बहुतसी स्त्रियों को साक्षी करके झोलीमें पुत्रको लेकर गुरुके पास आये. गुरुके पास आतेही रोना बंद कर दिया. गुरुने झोली हाथमें ली, वज्र जैसा भार होने से 'वज्रकुमार' नाम दिया. गुरुने वज्रकुमारको पालने के लिये शय्यातरी श्राविकाओंको दिया. साध्वियोंके उपाश्रयमें पालनेमें वज्रकुमार रहने लगा. साध्वियाँ ग्यारह अंगोंका पाठ करती थी उनको सुनकर छःमहीनेकी उम्रमेंही उसने ११ अंग याद कर लिये. तीनवर्षका हुआ, तब सुनंदाने पुत्रको पीछा मांगा, संघने नहीं दिया. गुरु, संघ और सुनंदा आदि राज सभामें गये. माताने पुत्रको अपने पास बुलाने के लिये खिलोने, मिठाई, वस्त्र, आभूषण आदिका राजसभामें ढेर कर दिया, बहुत लोभ बताया तोभी वज्रकुमारने उसके सामनेही नहीं देखा. जब गुरुने ओघा-मुंहपत्ति आदि चारित्रके उपकरण बतलाकर उन्हें लेनेको कहा, तब वज्रकुमार चारित्रकी इच्छा करता हुआ रजोहरण आदि लेकर माथेपर रखकर नाचने लगा. झगडा समाप्त

हुआ. राजाने वज्रकुमार गुरुको दिलाया. आठ वर्षका हुआ जब दीक्षा ली, तब माताने भी दीक्षा ली. वज्रस्वामी के पूर्वभवका मित्र जृम्भकदेव महाअटवीमें उज्जैयनीके मार्गमें वर्षा बन्द होनेपर मनुष्यका रूप करके कोलेका पाक देनेलगा, परन्तु अनिमेषनेत्र देखकर देवमाया जानकर नहीं लिया, तब देवने तुष्टमान होकर वैक्रीयलब्धि दी. फिरभी गृष्म कालमें घेवर देनेकी परीक्षा की, वे भी न लेनेसे आकाश-गामिनी विद्या दी. एकदा गुरु बाहर भूमि गये, अन्य साधु गौचरी गये. पीछेसे वज्रमुनि साधुओंके आसन बिछाकर, आप गुरुकी तरह बीचमें बैठकर शिष्यों के समान ग्यारह अंगोंकी वाचना अलग २ देने लगे. गुरु दरवाजे पर आये, खडे रहकर सब सुना, और सब साधुओं में वज्रमुनिका ज्ञान प्रकट करने के लिये अन्यदा ग्रामान्तर जाते हुए गुरु बोले–हे शिष्यों ! तुम्हारा वाचनाचार्य वज्र है, ऐसा कहकर गये. पीछे से वज्रमुनिने विनीत शिष्योंको ऐसी वाचना दी कि जितना अनेक वाचनाओं से पढाया जावे, उतना एक वाचनासे पढाया. साधुओं ने विचार किया–गुरु देरसे आवें तो अच्छा, हमारे श्रुतस्कन्ध जल्दी से समाप्त हो जावें, बादमें गुरु आये और पूछा तुम्हारी वाचना सुखसे हुई. शिष्यों ने कहा–आपके प्रसादसे. अब हमारे वाचनाचार्य वज्रमुनिको बनाओ, तब गुरुने वज्रमुनि

को ग्यारह अंगोंकी वाचना देकर वाचनाचार्य किये, वादमें वज्रस्वामी दशपुरनगरसे उजैयनी जाकर गुरुकी आज्ञासे भद्रगुप्ताचार्यके पास दशपूर्व पढे. गुरुने आचार्यपद दिया. विहारकरके पाटलीपुर गये. 'मेरे रूपसे लोगोंको क्षोभ न हो' ऐसा जानकर सामान्य रूप करके राजादि के सामने देशना दी. साधुओं ने लोगों से सुना— अहो ! गुरुकी देशना अमृत समान है, परन्तु वैसा रूप नहीं है. गुरुने भी दूसरे दिन साधुओंसे यह वात सुनकर, सौनेके सहस्त्रदलकमलके ऊपर वैठकर स्वाभाविक रूपसे धर्मोपदेश दिया, सव लोग वडे खुशी हुए. वहांपर धन्न सेठके रुक्मिणी पुत्री थी, वह साध्वियोंके मुखसे वज्रस्वामीके गुण सुनकर मोहित हुई, उसका पिता एक करोड़ सौनेये लेकर, वज्रस्वामी के पास आकर वोला—इस कन्याके साथ पाणिग्रहण करो, यह द्रव्य लो. वज्रस्वामी ने उसको प्रतिबोध देकर दीक्षा दी, और पदानुसारिणी लब्धिसे आचारांगसूत्रके महापरिज्ञा अध्ययनसे मानुषोत्तरपर्वत तक जा सकें वैसी आकाश गामिनी विद्या निकाली. अन्यदा उत्तर दिशामें दुर्भिक्ष हुआ, तव सव संघको वस्त्रपट्टपर वैठाकर वज्रस्वामी आकाशमें चले *. मार्ग में जगह २ पर चैत्य वन्दना करते हुए मानसी-

---

* शय्यातर लोच करने से मैं भी सधर्मी हूँ. मुझे भी साथ ले चलो, ऐसा कहने से उसको भी पट्टपर वैठाया.

नगरी पहुँचे, वहां सुभिक्ष था, परन्तु बोद्धराजा था. पर्युषणा आनेसे बोद्ध श्रावकों की प्रेरणासे राजाने जैन मन्दिरों में पुष्प देने बंद किये. संघने वज्रस्वामीसे विनती की. गुरु बोले–चिन्ता मत करो. ऐसा कहकर आकाश मार्ग से माहेश्वरी नगरी के हुताशन नामक देवके वनमें अपने पिताके मित्र मालीसे पुष्प संग्रह करनेका कह कर, हिमवंत पर्वतपर गये. वहाँ श्रीदेवीने वन्दना की और देवपूजा के लिये लक्षदल कमल लायाथा वह दिया, जिसे लेकर पीछे आते हुए हुताशन वनसे बीसलाख पुष्प लेकर विमानमें बैठे हुए पूर्व-भव-मित्र जृम्भकदेव कृत गीत-गान-वादित्रादिके महोत्सव सहित आकर, श्रावकोंको पुष्प देकर जिनमन्दिरोंमें महिमा कराई. संघ हर्षित हुआ. राजाभी चमत्कार देखकर जैनी होगया. अन्यदा दक्षिण तरफ विहार करते हुए श्रीवज्रस्वामी के कफ का विकार हुआ, साधुओंसे कहा–आज गौचरी में सोंठ लाना, साधु लाये. गुरुने कानपर रक्खी, और भूल गये, खाई नहीं. प्रतिक्रमणके वक्त कान पडिलेहनेसे सोंठ नीचे गिरी. गुरुने विचार किया–दशपूर्वधर मेरी स्मृति अल्प हो गई, इससे अब मेरी अल्प आयुः है, इसलिये अनशन करूँगा. बारह वर्षका दुर्भिक्ष जानकर अपने शिष्य वज्रसेनसे कहा– तू सोपारक-पत्तन जाना. वज्रसेनने पूछा सुकाल कब होगा ? गुरु बोले–लाख

द्रव्यसे अन्नकी एक हांडी चढ़ेगी, और तू देखेगा, उसके दूसरे दिन सुकाल होगा. ऐसा कहकर वज्रसेनको भेज दिया. पीछे अपने पासमें रहे हुए साधुओंको भिक्षा न मिलनेसे विद्यापिण्डसे कितने ही दिन आहार करा कर सविघ्न पच्चीस साधुओंको साथमें लेकर अनशन करनेके लिये चले, एक छोटा शिष्य था, उसको मना किया तोभी वह साथमें आने लगा, उसको नीचे छोडकर सब साधु पर्वतपर चढे. गुरुको अप्रीति न होवे, ऐसा विचार कर उस लघु शिष्यने पर्वतके नीचेही अग्निके जैसी तपी हुई शिलाके ऊपर अनशन किया. सुकोमल शरीर होनेसे क्षण भर में ही वह शुभ ध्यानसे स्वर्ग गया. देवोंने उसकी महिमा की. यह जानकर साधु धर्ममें विशेष रूपसे स्थिर हुए, परन्तु उस पर्वतपर रहने वाली मिथ्यात्वी देवीने मोदकादिसे निमन्त्रणा करके अनशनमें उपसर्ग किया. अप्रीति जानकर साधु वहाँसे उठकर नजदीकके दूसरे पर्वतपर अनशन करके शुभ ध्यान से वज्रस्वामी आदि श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणसे पांच सौ चौरासी वर्षे स्वर्ग गये, तब रथमें बैठकर इन्द्रने पर्वतकी प्रदक्षिणा करके साधुओंको वन्दना की. पर्वत पर रथके चक्रकी रेखाएँ पडी, जिससे पर्वतका 'रथावर्त्त' नाम हुआ और वहांके वृक्षभी साधुओंको नमन करनेके अभ्याससे अब भी नमे हुए दिखाई देते हैं. वज्रस्वामी

स्वर्ग गये, तब दशवाँपूर्व और चौथा अर्धनाराच संघहन विच्छेद हुआ. बादमें सोपारक पत्तनमें जिनदत्त श्रावक और ईश्वरी नामकी श्राविका जिनको वज्रस्वामीने पहले प्रतिबोधाथा, उनके घर वज्रसेनसूरि गौचरी गये. उस समय ईश्वरी श्राविका चार पुत्र सहित धान्यके अभाव से लाख मूल्य से धान्य लाकर हांडी चढाई, और विचार किया:— जहर डाल कर, भोजन कर, अनशन कर मरूँगी. वज्रसेन सूरिने जहर डालती हुई देख कर पूछा ऐसा मरनेका उपाय क्यों करती है ? ईश्वरी बोली—धनतो बहुत है, परन्तु अन्न नहीं मिलता. लाख रुपये से एक सेर अन्न आज मिला है. वज्रसेनसूरि बोले—श्रीवज्रस्वामीने मुझसे कहा था कि लाख द्रव्यसे हांडी चढेगी उसके दूसरे दिन ही सुभिक्ष होगा. ईश्वरी को आचार्य के वचन पर विश्वास आया, और बोली—जब ऐसा है, तो मैं चारों पुत्रोंको आपके पास दीक्षा दिलाऊँगी. इसके बाद तोफानी वायुसे बहुत दूर रहे हुए जुगंधरीके जहाज बारह पहरके बाद वहाँ आये, सुभिक्ष हुआ. युगका उद्धार किया, जिससे उसका नाम जुगंधरी (जवार) हुआ. ईश्वरीने नागेन्द्र १, चन्द्र २, निर्वृत्ति ३, विद्याधर ४, इन चारों पुत्रोंको दीक्षा दिलाई और आपने भी जिनदत्त श्रावकके साथ दीक्षा ली. वे चारों बहुश्रुत आचार्य हुए. उनसे चार शाखायें निकलीं, जो अब भी देखने

में आती हैं. इस प्रकार सिंहगिरी १, वज्रस्वामी २, वज्रसेनसूरि ३, इन तीनोंका चरित्र कहा. श्रीमहागिरी १, सुहस्ति सूरि २, गुणसुन्दर सूरि ३, श्यामाचार्य ४, स्कन्धलाचार्य ५, रेवतीमित्र ६, श्रीधर्म ७, भद्रगुप्त ८, श्रीगुप्त ९, वज्रस्वामी १०, ये युगप्रधान दशपूर्वधारी हुए. यह संक्षेप-वाचनासे स्थविरावली कही, अब आर्य यशोभद्रसूरिके आगे विस्तार वाचनासे स्थविरावली कहते हैं--इसमे लेखकोंके प्रमादसे स्थविरोंके नाम-गोत्रोंमें व शाखा-कुलोंमें बहुतसे नामान्तर भेद होगये हैं. और बहुतसे शाखा-कुल विच्छेदभी होगये हैं, इसका निर्णय ज्ञानी जाने. एक आचार्यकी शिष्य परंपराको कुल कहते हैं, एक वाचना आचार वाले साधुओंके समुदायका नाम गच्छ है. प्रसिद्ध पुरुषकी पृथक् २ संतानको शाखा कहते हैं. जैसे, हमारे वज्रशाखा और चन्द्रकुल है, यथार्थ अपत्यः--जिसके होनेसे पूर्वज दुर्गतिमें अथवा अपयश रूपी कीचडमें नहीं पडें, उसका नाम अपत्य (शिष्य) है. शुद्ध आचार वाले शिष्य गुरुओंकी शोभा बढाते हैं.

अब विस्तार वाचनामें यशोभद्रसूरिके कितने स्थविर, कितने गच्छ, कितनी शाखायें, कितने कुल हुए, सो कहते हैंः-- यशोभद्र स्थविरके दो शिष्य हुए-- भद्रबाहुस्वामी १, संभूतिविजय २. भद्रबाहुस्वामी के चार

शिष्य हुए– गोदास १, अग्निदत्त २, यज्ञदत्त ३, सोमदत्त ४. गोदाससे गोदास नामक गच्छ निकला १, गोदासगच्छसे चार शाखायें निकलीं–ताम्रलिप्तिका १, कोडीवर्षिका २, पोण्डुवर्धनिका ३, दासीखर्बडिका ४. संभूतिविजय के बारह शिष्य हुए:– नन्दनभद्र १, उपनन्दन २, तिष्यभद्र ३, यशोभद्र ४, सुमनभद्र ५, मणिभद्र ६, पूण्यभद्र ७, स्थूलभद्र ८, ऋजुमति ९, जम्बू १०, दीर्घभद्र ११, पांडुभद्र १२, सब उन्नीस स्थविर हुए. संभूति विजयजी के (स्थूलभद्रकी बहिनें) सात शिष्यायें हुईं–जक्खा १, जक्खदिन्ना २, भूया ३, भूयदिन्ना ४, सेणा ५, वेणा ६, रेणा ७. स्थूलभद्रजी के दो शिष्य हुए– आर्य महागिरी १, आर्य सुहस्ति २. श्रीआर्य महागिरी के आठ शिष्य हुए–उत्तर १, बलिसह २, धनाढ्य ३, श्रियाढ्य ४, कौडिन्य ५, नाग ६; नागमित्र ७, छुल्लुयरोहगुप्त ८. इसी तरह सब स्थविर उन्नतीस हुए. छुल्लुयरोहगुप्तसे त्रैराशिक मत निकला, सो कहते हैं– श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणसे पांच सौ चँवालीस वर्षे अन्तरंजिका नगरी में श्रीगुप्ताचार्यके रोहगुप्त नामक शिष्य हुआ. उसी समयमें पोट्टशाल नामक परिव्राजक एक वादी आया. बिच्छु १, सर्प २, मूषक ३, मृगी ४, वराही ५, काक ६, शकुन ७, इन विद्याओं से मेरापेट फटता है, ऐसे मानसे पेटपर पट्टा बांधा था

उस वादीने नगरमें पटह बजाया कि जो मेरे साथ वाद् करेगा, वह पटह स्पर्श करेगा. तब रोहगुप्त बोला—मैं वाद् करूंगा. गुरुने परिव्राजक की विद्याओं को जीतने वाली मयूरी १, नकुली २, बिलाडी ३, व्याघ्री ४, सिंही ५, उल्लुकी ६, होलावली ७ आदि विद्याएँ दीं. और कहा— जो अन्य विद्याओंका प्रयोग करे तो यह रजोहरण मैं मन्त्रकर देताहूँ, सो फिराना, जिससे उसकी तमाम विद्याएँ निष्फल होकर तेरा विजय होवेगा. तब रोहगुप्त बल-श्रीराजाकी सभामें वाद् करनेको गया. परिव्राजकने जीव-अजीव दो राशि स्थापित की, जैन शास्त्रोंका ही पूर्व पक्ष किया. रोहगुप्तने एक डोरे को उल्टा बटकर पृथ्वीपर डाला, चलाऽचल दिखाया और बोला—जीव १, अजीव २, नोजीव ३, ये तीन राशि हैं. ऐसा कह कर बहुतसे दृष्टान्त देकर रोहगुप्तने वादीका खण्डन किया. परिव्राजकने विद्याओंका प्रयोग किया. रोहगुप्तने प्रतिकूल विद्याओंसे उसकी तमाम विद्याओंको नष्टकर दिया, विजय पाकरके बडे महोत्सवसे गुरुके पास आया, गुरुसे सब हाल कहा. गुरु बोले—तेने वादीको जीता, जिन शासनकी प्रभावना की सो अच्छा किया परन्तु नोजीव पदार्थ नहीं है संघ समक्ष उसका मिच्छामि दुक्कडं दे, रोहगुप्तने अभिमानसे मिच्छामि दुक्कडं नहीं दिया, और बोलाः—नोजीव भी है, मिच्छामि दुक्कडं कैसे

दूँ ? छः महीने तक राजसभामें उसने गुरुके साथ वाद् किया. राजा बोलाः— महाराज ! छः महीने हो गये तोभी आपका वाद् पूरा नहीं हुआ, मैं तो राजकार्य भी नहीं कर सकता. गुरु बोले—कल पूरा करेंगे. दूसरे दिन वे देव-हाटमें गये, और जीव-अजीव-नोजीव मांगे. देवने जीव-अजीव दिये, परन्तु नोजीव नहीं दिया, और बोला—तीन जगत् में नोजीव नहीं है. इस प्रकार एक सौ चंवालीस प्रश्नोंसे गुरुने रोहगुप्तको जीता. और उसके मस्तक पर राखका पात्र डालकर गच्छसे बाहर किया. रोहगुप्तने त्रैराशिक मत निकाला, इसका विशेष विवरण टीकाओं से जान लेना. उत्तरबलिस्सह स्थविरसे उत्तरबलिस्सह नामक गच्छ निकला, इसकी चार शाखाएँ हुई— कौशांबिका १, सूक्तिमुक्तिका २, कौटुंबिनी ३, चन्द्रनागरी ४. सब शाखाएँ आठ हुई. आर्य सुहस्तिसूरि के बारह शिष्य हुए—रोहण १, भद्रयश २, मेघ ३, कामार्द्धि ४, सुस्थित ५, सुप्रतिबुद्ध ६, रक्षित ७, रोहगुप्त ८, ऋषिगुप्त ९, श्रीगुप्त १०, ब्रह्मगुप्त ११, सोमगुप्त १२. सब स्थविर ४१ हुए. रोहणस्थविर से उद्देह नामक गच्छ निकला. सब तीन गच्छ हुए. उद्देहगच्छ से चार शाखा निकलीं. उदुम्बरीज्जिया १, मासपूरिया २, महिपत्तिया ३, पुण्यपत्तिया ४. सब १२ शाखाएँ हुई. उद्देह गच्छसे छः कुल हुए— नागभूय १, सोमभूइय २,

उल्लगच्छ ३, हत्थलिज्ज ४, नन्दालिज्ज ५, परिहासय ६. श्रीगुप्तस्थविर से चारण नामक गच्छ निकला. सब चार गच्छ हुए. चारण गच्छसे चार शाखाएँ निकलीं–हारियमालागारी १, संकासीया २, गवेधुया ३, विज्जनागरी ४. ऐसी सौलह शाखाएँ हुईं. और चारणगच्छसे सात कुल हुए:–वत्थलिज्ज १, पीइधम्मिय २, हालिज्ज ३, पुसमित्तिज्ज ४, सालिज्ज ५, अज्जवेडय ६, कण्हसह ७. सब बारह कुल हुए. भद्रयश स्थविरसे उडुवालिय नामक गच्छ निकला. सब पांच गच्छ हुए. उडुवालिय गच्छसे चार शाखाएँ निकलीं–चंपिज्जिया १, भद्दिज्जिया २, काकंदिया ३, मेहालिजिया ४. इस प्रकार सब बीस शाखाएँ हुईं. उडुवालिय गच्छ से तीन कुल हुए–भद्रयशिक १, भद्रगुप्तिक २, यशभद्रक ३. इस प्रकार कुल पन्द्रह हुए. कामर्द्धि स्थविरसे वेसवाडिय नामक गच्छ निकला. सब छः गच्छ हुए. वेसवाडिय गच्छसे चार शाखाएँ निकलीं:– सावत्थिया १, रज्जपालिया २, अन्तरिज्जिया ३, खेमलिज्जिया ४. ऐसी चौवीस शाखाएँ हुईं. वेसवाडिय गच्छसे चार कुल हुए– गणिय १, मेहिय २, कामड्ढिय ३, इदपुरग ४. ऐसे कुल १९ हुए. ऋषिगुप्त स्थविरसे मानव नामका गच्छ निकला. सब सात गच्छ हुए. मानवगच्छ से चार शाखाएँ निकलीं:– कासवज्जिया १, गोयमज्जिया २, वासिट्ठिया ३,

सोरट्ठिया ४. ऐसी २८ शाखाएँ हुईं. और मानव गच्छसे तीन कुल हुए—ऋषिगुत्तिक १, ऋषिदत्तिक २, अभिजयन्त ३. इस तरह कुल २२ हुए. सुस्थित-सुप्रतिबुद्ध स्थविरसे कोटिक नामक गच्छ निकला. सब आठ गच्छ हुए. कोटिक गच्छकी चार शाखाएँ हुईं— उच्चानागरी १, विद्याधरी २, वयरी ३, मज्झिमिल्ला ४. ऐसी ३२ शाखाएँ हुईं. कोटिक गच्छसे चार कुल हुए:— बंभलिज्ज १, वत्थलिज्ज २, वाणिज्ज ३, प्रश्नवाहन ४. ऐसे कुल २६ हुए. प्रश्नवाहन कुलसे मलधार गच्छ निकला. सुस्थित-सुप्रतिबुद्धके पांच शिष्य हुए:— इन्द्रदिन्न १, प्रियग्रन्थ २, विद्याधरगोपाल ३, ऋषिदत्त ४, अरिहदत्त ५. ऐसे ४६ स्थविर हुए.

अब प्रियग्रन्थ सूरिका चरित्र कहते हैं:— अजमेर के पास श्रीहर्षपुरनगरमें तीनसौ जिनमन्दिर, चारसौ लौकिक देवमन्दिर, आठ हजार ब्राह्मणोंके घर, छत्तीस हजार बनियों के घर, नौ सौ बगीचे, सातसौ वावडियें और सातसौ दानशालाएँ थीं. वहां सुभटपाल राजा राज्य करता था. ब्राह्मणों ने यज्ञ शुरु किया, मारनेके लिये बकरा यज्ञस्तम्भमें बांधा. वहां प्रियग्रन्थसूरि आये, उन्होंने वासक्षेप मन्त्र करके एक श्रावकके हाथमें दिया, उसने बकरे पर डाला. अम्बिका अधिष्ठाता हुई. बकरा उडकर आकाशमें खडा रहकर बोला—अहो ! दया-

रहित ब्राह्मणों तुम लोग निरपराधी मुझको मारनेके लिये तैयार हुए हो, यदि मैं भी वैसाही निर्दय हो जाऊँ तो तुम्हें सबको अभी मारूं, जैसे—हनुमानने राक्षसों के कुलमें किया, वैसा तुम्हारे लिये मैं भी करूं, परन्तु दया अन्तराय करने वाली है, इतना कहकर फिर बोला—पशुके शरीरमें जितने रोम होते हैं, उतने ही हजार वर्ष तक पशुको मारनेवाले नरकमें पचते हैं. और कोई दाता मेरु पर्वत जितना सौने का दान देवे, अथवा सर्व पृथ्वीका दान करे, इन दो दानोंके पुण्यसे भी मरते हुए किसी जीवको बचावे तो अधिक पुण्य होताहै—एक तरफ यज्ञ, दक्षिणा वगैरह का पुण्य और दूसरी तरफ भयभीत प्राणीकी रक्षा करनेका पुण्य, इन दोनोंमें जीव रक्षाका पुण्य अधिक होता है, तथा अन्य वडे २ दानों का फल वहुत कालसे क्षय होजावे, परन्तु अभयदानका फल क्षय होताही नहीं है. तब यज्ञ करने वाले बोले—आप कौन हैं ? अपना स्वरूप कहो. बकरा बोलाः—मैं अग्निदेव हूँ, यह बकरा मेरा वाहन है, तुम इसे क्यों मारते हो ? ब्राह्मण बोलेः— धर्मार्थ. देव बोला—पशुवधमें धर्म नहीं किन्तु महापाप है, सच्चे धर्म तत्त्वका स्वरूप प्रियग्रन्थसूरिसे पूछो. ब्राह्मणोंने आचार्यसे पूछा, आचार्य ने जीव दयाको ही पवित्र धर्म कहा. तब यज्ञ कारक वगैरह बहुतसे लोगोंने प्रतिबोध पाया. जैन धर्मकी महिमा हुई. प्रिय-

ग्रन्थसूरिसे मध्यमा शाखा निकली, विद्याधर गोपालसे विद्याधरी शाखा निकली. ऐसी ३४ शाखाएँ हुईं. इन्द्र दिन्नसूरि के शिष्य दिन्नसूरि हुए. सब ४७ स्थविर हुए. दिन्नसूरि के दो शिष्य हुए, आर्य शान्ति सैनिक १, और सिंहगिरी २. यह ४९ स्थविर हुए. आर्य शान्ति सैनिकसे उच्च नागरी शाखा निकली. यह ३५ शाखाएँ हुईं. आर्य शांति सैनिक आचार्यके चार शिष्य हुए. आर्य श्रेणिक १, आर्य तापस २, आर्य कुबेर ३, आर्य ऋषिपालित४. यह ५३ स्थविर हुए, आर्य सैनिक आचार्यसे आर्य्य सैनिका शाखा निकली १, आर्य तापस आचार्य से आर्य तापसी शाखा निकली २, आर्य कुबेरसूरिसे आर्य कुबेरी शाखा निकली ३. आर्य ऋषिपालित सूरिसे आर्य ऋषिपालित शाखा निकली. यह ३९शाखाएँ हुईं. जातिस्मरणज्ञानवान् सिंहगिरि आचार्यके चार शिष्य हुए— धनगिरि १, वज्रस्वामी २, आर्य समितसूरि ३, आर्य दिन्नसूरि ४. यह ५७ स्थविर हुए. आर्य समितसूरिसे ब्रह्मदीपिका शाखा निकली, वज्रस्वामीसे वज्रशाखा निकली. यह ४१ शाखाएँ हुईं.

अब ब्रह्मदीपिका शाखाकी उत्पत्ति कहते हैं— आभीरदेशमें अचलपुर नगरके पास कन्ना, बेन्ना दो नदियोंके बीचमें ब्रह्मनामक द्वीप था. उसमें ५०० तापस रहते थे, जिनमेंसे एक तापस पादलेप कर, खड़ाउ पहिन

बेन्नानदीको पारकर पारनेको जाताथा, लोग उसके तपकी शक्ति जानकर तापसके भक्त हुए और श्रावकोंसे कहते– तुम्हारे गुरुमें कोई शक्ति नहीं है, तब श्रावकोंने वज्रस्वामीके मामा श्रीआर्यसमितसूरिको बुलाये. श्रावकोंने आचार्यसे सब कहा, आचार्य बोले– यह तप शक्ति नहीं है, पादलेपकी शक्ति है. गुरुके कहनेसे श्रावकोंने उस तपस्वीको भोजनके लिये विनती की, बहुत आदरसे घरमें लाये, पैर और खड़ाउ धोकर सत्कार पूर्वक भोजन कराया. उस तपस्वीके साथ श्रावक नदी तटपर गये. नदीमें प्रवेश करतेही पादलेपके बिना डूबने लगा. लोगोंने बाहर निकाला. तपस्वीने निन्दा पाई. उसी समय श्रीआर्यसमितसूरि वहाँ आये, लोगोंको प्रतिबोधनेके लिये वासक्षेप डाला, और बोलेः– हे बेन्ना ! हम तेरे पार जावेंगे. ऐसा कहतेही नदीके दोनों किनारे मिल गये. लोगोंने आश्चर्य पाया. नगरके लोगों सहित आचार्यने नदीपार तापसोंके आश्रममें जाकर धर्मोपदेश देकर तापसोंको प्रतिबोधे. पांच सौ तापसोंने भी दीक्षा ली. आचार्य वापिस आये, जिनशासनकी प्रभावना हुई. उन तापस साधुओंकी ब्रह्मदीपिका शाखा हुई.

वज्रस्वामीके तीन शिष्य हुएः– वज्रसेनसूरि १, पद्मसूरि २ और आर्यरथसूरि ३. वज्रसेनसूरिसे नागली,

शाखा निकली. पद्मसेन सूरिसे पद्मा शाखा निकली. आर्य रथसूरिसे जयन्ती शाखा निकली. ऐसी ४४ शाखाएँ हुई. सब स्थविर ६० हुए. आर्यरथसूरिके शिष्य पूष्यगिरिसूरि १, पूष्यगिरिसूरिके शिष्य फल्गुमित्रसूरि २, फल्गु-मित्रसूरिके शिष्य धनगिरिसूरि ३, धनगिरिसूरिके शिष्य शिवभूतिसूरि ४, (श्रीवीर निर्वाणसे ६०९ वर्षे दूसरे शिवभूतिसे दिगंबर मत निकला). शिवभूतिसूरिके शिष्य आर्यभद्रसूरि ५, आर्यभद्रसूरिके शिष्य आर्य्यनक्षत्र-सूरि ६, आर्य्यनक्षत्रसूरिके शिष्य आर्य्यरक्षसूरि ७, आर्य्यरक्षसूरि के शिष्य आर्य्यनागसूरि ८, आर्य्यनागसूरि के शिष्य आर्य्यजेहिलसूरि ९, आर्य्यजेहिलसूरिके शिष्य आर्य्यविष्णुसूरि १०, आर्य्यविष्णुसूरिके शिष्य आर्य्य-कालिकसूरि ११, आर्य्यकालिकसूरिके दो शिष्य पहले आर्य्यसंपालितसूरि १२, दूसरे आर्यभद्रसूरि १३, इन दोनों के शिष्य आर्यवृद्धसूरि १४, आर्यवृद्धसूरिके शिष्य संघपालितसूरि १५, संघपालितसूरिके शिष्य आर्यहस्तिसूरि १६, आर्यहस्तिसूरिके शिष्य आर्यधर्मसूरि १७, आर्यधर्मसूरिके शिष्य आर्यसिंहसूरि १८, आर्यसिंहसूरिके शिष्य आर्यधर्मसूरि १९, आर्यधर्मसूरिके शिष्य आर्यसंडिलसूरि २०. इस प्रकार विस्तार वाचनामें स्थविर ८० हुए. और श्री सुधर्मस्वामी १, जम्बूस्वामी २, प्रभवस्वामी ३, शय्यंभवसूरि ४, ये चार स्थविर संक्षिप्त

वाचनामें कहे थे. सब मिलकर ८४ स्थविर, ४५ शाखा, ८ गच्छ और २७ कुल हुए हैं. तथा "वन्दामि फग्गुमित्तं" इत्यादि गाथाओंमें क्षमाके सागर, दर्शन-ज्ञान-चारित्र युक्त, अनुयोगधर, सूत्र-अर्थके समुद्र, गुणरत्नोंकी खान समान देवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण तक स्थविरोंकी स्तुति करके उन्हेंको नमस्कार किया है।

स्थविरावली में आर्य्यरक्षितसूरि आदि नहीं कहे परन्तु वे भी स्थविर हुए हैं, उनका चरित्र कहते हैं—दशपुर नगरमें सोमदेव पुरोहितके रुद्रसोमा स्त्री थी, उनका पुत्र आर्यरक्षित परदेशसे चौदह विद्या पढकर आया, राजा ने बड़े महोत्सवसे हाथीपर बैठाकर घर पहुँचाया, सब लोग खुशी हुए, उसने माताको नमस्कार किया, परंतु माताको हर्ष नहीं हुआ, तब उसका कारण पूछा, माता बोली—मैं परम श्राविका हूँ, तेने नरक देनेवाली विद्या पढी इसमें क्या ? यदि तू मेरा भक्त और बुद्धिवान् है तो मुक्ति दायक दृष्टिवाद पढ. दर्शनोंका वाद 'दृष्टिवाद' इसका नामभी सुन्दर है, ऐसा विचारकर पढनेकी इच्छासे माताकी आज्ञा लेकर इक्षुवाटिका गांवमें अपने मामा तोसलीपुत्र आचार्यके पास जानेको आर्यरक्षित प्रभातमें चला. रास्तेमें पिताका मित्र ब्राह्मण मिलनेको सामने आया, उसके हाथमें साढे नौ सैलडीके सांठे देखकर, साढेनौ पूर्व तक मैं पढूंगा, ऐसा शकुन विचारकर,

ये सांठे मेरी माताको देना, ऐसा कहकर गया. आचार्य महाराजके उपाश्रयमें ढड्ढर श्रावकके साथमें प्रवेशकर गुरुको वन्दना करके बैठा, साधुओंने पहिचाना कि यह तो गुरुमहाराजका भानजाहै, तब गुरुने देशना देकर, योग्यता जानकर दीक्षा दी, अपने पासके सूत्र पढाये, पूर्व पढानेके लिये वज्रस्वामीके पास भेजा, उज्जैयनीमें भद्रगुप्त सूरिने अनशन किया था, उनकी वैयावच्च की. भद्रगुप्तसूरिने कहा—तुम वज्रस्वामीसे अलग उपाश्रयमें रहना, वज्रस्वामीके साथ सोपक्रम आयुः वाला एक रात्रिभी रहे तो उन्हीं के साथ मरण पावे. आर्यरक्षितमुनि वज्रस्वामीके पास गये, अलग उपाश्रयमें रहे. श्रीवज्रस्वामीने उसी रात्रिमें स्वप्न देखा कि मेरा खीरसे भरा हुआ पात्र किसी पाहुणे साधुने आकर पिया, थोडा बाकी रहा. प्रभातमें आर्य रक्षित मुनि आये, नमस्कार करके पूर्व पढने शुरु किये. दसम पूर्वमें यमक पढने लगे, पिताने बुलाने के लिये संदेश भेजा, आर्यरक्षित नहीं गये, तब माता आदिने उसके छोटेभाई फल्गुरक्षितको भेजा, उसकोभी प्रतिबोधकर दीक्षा दी. बादमें माता-पिता आदिको प्रतिबोधने के लिये जानेकी इच्छा हुई, वज्रस्वामीसे पूछा भगवन् ! दसवां पूर्व कितना बाकी रहा है ? गुरु बोले—बिन्दुमात्र पढाहै, समुद्र जितना बाकी है, तबतो पढनेका उत्साह कम होगया, तथापि फिरभी कुछ पढने लगे,

परन्तु पढनेमें दिल नहीं लगा. तव वज्रस्वामीने शेषपूर्वश्रुत उनसे विच्छेद करके आर्यरक्षित मुनिको आचार्य पद देकर जानेकी आज्ञा दी. फल्गुरक्षित सहित दशपुर नगर गये, राजाने प्रवेश उत्सव किया. माता बहिन वगैरहको असार संसारका स्वरूप बतलाकर दीक्षा दी, पितानेभी पुत्रके अनुरागसे दीक्षा ली, परन्तु लज्जासे धौती १, यज्ञोपवित २, छत्ता ३, खडाउ ४, कमंडल ५, ये नहीं छोडे. तव गुरुके सिखलाये हुए बालक आदि बोले कि हम सर्व साधुओंको वन्दना करते हैं, परन्तु छत्ते वालेको नहीं. तव छत्ता छोड दिया, इसतरह कमंडल, यज्ञोपवित, खडाउ भी छोड दिये. अन्यदा किसी साधुने अनशन करके काल किया, गुरुके सिखाने से मृतकको लेजानेमें साधु विवाद करने लगे, तव सोमदेवमुनिने पूछा इसमें बहुत निर्ज्जरा होती है? गुरु बोले हां. वृद्धमुनि बोले— मैं लेजाऊँ, गुरु बोले— उपसर्ग सहनेकी शक्ति हो तो लेजाना, अन्यथा उपद्रव होगा. वृद्धमुनि मृतको उठाकर मार्ग में चले, गुरुके सिखाये हुए बालकोंने धौती खोस ली, साधुओंने चोलपट्टा बांध दिया. मृतकको जंगलमें परिठाकर (छोडकर) सोमदेवमुनि गुरुके पास आये और बोले— पुत्र बहुत उपसर्ग हुआ, गुरु बोले—धौती पहरो, वृद्धमुनि बोले, अव क्या पहरूँ, देखना था सो देखलिया. तवसे चौलपट्टा रक्खा. परन्तु लज्जा

से गौचरी नहीं जावे, गुरु दूसरे गांव जाते हुए साधुओं से कह गये– तुम आहार लाकर वृद्धमुनिको नहीं देना स्वयं लावेगा. साधुओंने आहार लाकर किया, उसको नहीं दिया, वृद्धमुनि भूखाही रहा. दूसरे दिन गुरु आकर बोले क्या वृद्धमुनिको आहार नहीं दिया. साधु बोले आप लेनेको क्यों नहीं जाते. जब उनके लिये खुद गुरु आहार लानेको चले, तब अविनय जानकर आप गौचरी गये. पिछाडीकी खिडकीसे किसी धनवान्‌के घरमें जाने लगे, घरके स्वामीने कहा हे मुनि ! मुख्य द्वारसे आवो, वृद्धमुनि बोले– जिधरसे लक्ष्मी आवे उधरसेही उत्तम है, इसमें कुछ विचार नहीं, वहांसे बत्तीस मोदक वहोर कर आये. आचार्यने विचार किया इससे हमारे बत्तीस शिष्य होवेंगे, वे मोदक साधुओंको देकर, फिर गौचरी जाकर क्षीर लाकर आपने आहार किया, सोमदेव वृद्ध मुनि लब्धिवान् होनेसे गच्छके आधार भूत हुए. उस गच्छमें तीन साधु लब्धि संपन्न थे–दुर्बलिकपुष्प मित्र १, घृतपुष्पमित्र २, वस्त्रपुष्पमित्र ३. और चार साधु बडे बुद्धिवान् थे–दुर्बलिकपुष्पमित्र १, बन्ध्यमुनि २, फल्गुरक्षित ३, गोष्ठामहिल ४. अन्यदा इन्द्रने श्रीसीमन्धरस्वामी के वचनसे कालिकाचार्य की तरह आर्यरक्षित सूरिकोभी निगोदका विचार पूछकर परीक्षा की, वन्दनाकर स्तुति करके उपाश्रयका दरवाजा पश्चिम था उसको

पूर्वमें करके इन्द्र निज स्थान गया. श्रीआर्यरक्षितसूरिने भविष्य में साधुओंको मन्दबुद्धि वाले जानकर चारों अनुयोगों को अलग२करदिये, पहले एकही सूत्रका चारप्रकारका व्याख्यान होताथा, ऐसे श्रीआर्यरक्षितसूरिहुए.

अब विद्याधर गच्छीय वृद्धवादीसूरि और सिद्धसेन दिवाकरका चरित्र कहते हैं—एक साधु वृद्ध अवस्थामें जोर २ से पढता था, उसको देखकर राजा बोला—आप क्या मुसल फुलाओगे ? वृद्ध साधु बोले— हां, मुसलके भी फूल लगते हैं, बादमें सरस्वती देवीका आराधन करके बाजारमें मुसलको खडा करके राजादिके समक्ष उसके फूल लगा दियें और यह काव्य कहा—

मद्गोश्शृंगं शक्रयष्टिप्रमाणम्, शीतोवन्हिर्मारुतो निष्प्रकम्पः ॥
यो यद्ब्रूते सर्वथा तन्न किंचित्, वृद्धो वादी कः किमाहात्र वादी ॥ १ ॥

शशकके शृंग, इन्द्रधनुष्का प्रमाण, अग्नि शीतल, और वायु निष्प्रकंप नहीं है तथापि वृद्धवादी ऐसाभी कर सकते हैं ॥१॥ वृद्धवादीने कुमुदचन्द्र ब्राह्मण पंडितको वादमें जीतकर अपना शिष्य बनाया, आचार्यपद दिया,

सिद्धसेनदिवाकरसूरि नाम रक्खा. सिद्धसेनदिवाकरसूरिने विक्रमादित्य राजाको प्रतिबोधा, विक्रमादित्य राजाने शत्रुंजयकी यात्राका संघ निकाला, संघमें एकसौ सत्तर (१७०) सोनेके देरासर थे. आचार्यके उपदेशसे दूसरे बहुतसे राजाओंनेभी प्रतिबोध पाया और तीर्थका उद्धार किया, आचार्यकी सहायतासे विक्रमादित्य राजाने अपना सम्वत्सर चलाया. पहले नन्दीवर्धन राजाका सम्वत्सर था. इति वृद्धवादी-सिद्धसेनदिवाकर चरित्र.

अब श्रीहरिभद्रसूरिका चरित्र कहते हैं:- हरिभद्र ब्राह्मणने व्याकरणादि शास्त्र पढ़ने के अभिमानसे प्रतिज्ञा की-जिसका कहा वाक्य का अर्थ मैं नहीं समझसकूं उसका शिष्य होऊंगा. एक समय सन्ध्याको नगरमें फिरते हुए. साध्वीके मुंह से यह गाथा सुनी—

चक्किदुगं हरिपणगं, पणगं चक्कीण केसवो चक्की। केसव चक्की केसव, दुचक्कि केसव चक्की य ॥१॥

इसका अर्थ हरिभद्र पंडित नहीं समझ सका तब बोला हे साध्वीजी यह चिकचिकायमान शब्द क्या है? साध्वी बोली-नये आदमीको चिकचिकायमान मालूम पडता है, यह सुनकर हरिभद्रने विचार किया-इसका अर्थभी मैं नहीं समझा और साध्वी ने वचनमें भी मुझको जीत लिया. तब साध्वीसे बोला-इसका अर्थ बताओ

साध्वी बोली—में नहीं कह सकती *, हमारे गुरु उद्यानमें हैं, वे कहेंगे. तब गुरुके पास जाकर गाथाका अर्थ पूछा गुरुने कहा—दो चक्रवर्ती, पांच वासुदेव, पांच चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती, एक वासुदेव, एक चक्रवर्ती फिर एक वासुदेव, दो चक्रवर्ती और एक वासुदेव तथा एक चक्रवर्ती. इस प्रकार क्रमशः बारह चक्रवर्ती और नौ वासुदेव हुए हैं. यह सुनकर प्रतिज्ञा पालनेके लिये दीक्षा ली, जैन शास्त्रोंका अध्ययन करके आचार्य पद पाये. हरिभद्रसूरिके हंस, परमहंस दो शिष्य शास्त्रोंके ज्ञाता हुए, बौद्धोंके शास्त्रोंको पढनेके लिये बौद्धाचार्यके पास गये, विद्यार्थी होकर पढने लगे. एकदा पुस्तकों में अक्षरोंपर खडी लगी हुई देखकर बौद्धाचार्य ने विचार किया, ये कोई जैन होंगे? उसने ऊपरकी माल पढाना शुरु किया, परीक्षाके लिये सीढीपर जिनप्रतिमा लिख दी.

---

*—कई महाशय इस प्रसंग का दृष्टांत बतला कर साध्वियों को श्रावक—श्राविकाओं की समुदाय में व्याख्यान वांचने का निषेध करते हैं, यह उचित नहीं है. अकेली साध्वी को अन्य दर्शनीय अकेले पुरुष के साथ वार्ता करना उचित नहीं था जिससे साध्वी ने उनसे विशेष बात नहीं की, परन्तु व्याख्यान तो परिचय वाले भक्त श्रावक—श्राविकाओं की समुदाय में वांचा जाता है। इसमें कोई दोष नहीं है।

बौद्ध साधु प्रतिमापर पैर रखकर उतरे, हंस-परमहंस जिनप्रतिमा देखकर खडियासे प्रतिमाके जनेउ करके बौद्ध प्रतिमा बनाकर उतरे और मरनेके भय से अपनी पुस्तक लेकर अपने देशको चले. बौद्धाचार्यके कहने से राजाने सेना भेजी, सेनाने पहले सहस्त्रयोधी हंसको मारा और चित्तौड़के पास परमहंसको भी मारा. हरिभद्रसूरि यह जानकर क्रोधित हुए, और उपाश्रयमें लोहके कडाह में तैल गरम करवाकर मंत्रशक्तिसे १४४४ बौद्धोंको मारने के लिये आकर्षित किये, तब श्रावकने यह गाथा सुनायाः—

"जइ जलइ जलो लोए, कुसत्थ पवणा उ कसायग्गी । तं बुज्जं जिणसत्थं, वरिसत्तो वि पज्जलई ॥१॥

मिथ्यात्वी लोग कुशास्त्ररूपी पवनसे प्रेरित कषायरूपी अग्निसे जलते हैं, उनको शांत करनेवाला जैन शास्त्ररूपी अमृत वर्षने परभी आप क्रोधसे अनर्थ क्यों करते हैं. अथवा किसी जगह ऐसाभी लिखाहै—याकिनीमहत्तरा साध्वी एक श्राविकाको उपाश्रयमें लेजाकर गुरुसे पंचेन्द्रीय वधकी आलोयणा पूछी, गुरुने पांच उपवास कहे. साध्वी बोली अज्ञानतासे एक जीवकी हिंसामें इतनी आलोयणा देते हो, तब आप जानते हुए इतने बौद्धोंको मारोगे तो कितनी आलोयणा आवेगी ? यह सुनकर हरिभद्रसूरिका क्रोध शान्त हुआ, पश्चात्ताप करके सब

बौद्धों को छोड दिये. अपने पापकी शुद्धिके लिये पूजापंचाशिका, पंचाशक, अष्टक, षोडषकादि १४४४ प्रकरण बनाये, आवश्यक बृहद्वृत्ति आदि टीकाएँ भी बनाई. इति श्रीहरिभद्रसूरि चरित्र. वप्पभट्टसूरि भी बडे प्रभावक हुए. उन्होंने गोपनगरके आमराजाको प्रतिबोधा, उसने शत्रुंजयका संघ निकाला, रास्तेमें अभिग्रह लिया कि शत्रुंजयके दर्शन कर पीछे पारणा करूंगा. छः उपवास हुए, राजा कमजोर होगया, शत्रुंजय दूर रहा. तब देवने 'खिवसरंडी' गांवमें शत्रुंजयावतार प्रासादमें प्रतिमा पादुकाके दर्शन करवाकर अभिग्रह पूर्ण कराया, शत्रुंजयकी यात्राकर तीर्थोद्धार किया और आमराजाने गोपनगरमें १०८ गज ऊँचे जिनमंदिरमें १८ भार प्रमाणे सोनेकी श्रीवीरप्रभुकी प्रतिमा स्थापित की. वह प्रतिमा अब भी पृथ्वी में है। और श्रीपादलिप्ताचार्य भी पादलेपसे आकाशमें उडकर शत्रुंजय, गिरनार, आबू, अष्टापद, संमेतशिखर आदि तीर्थोंकी यात्रा करके पारणा करते थे. उनके बनाये हुए निर्वाण कलिकादि ग्रन्थ हैं। श्रीमलयगिरीजीभी विशेषावश्यक टीका वगैरहके बनानेवाले हुए। कलिकालसर्वज्ञ श्रीहेमचन्द्रसूरिजी भी साढे तीन करोड ग्रन्थ कर्ता, अठारह देशोंका राजा श्रीकुमारपालको प्रतिबोधने वाले, देवीकी सहायतासे शासनकी प्रभावना करने वाले हुए. उकेश गच्छीय श्रीरत्नप्रभसूरिने

ओसियानगरमें और कोरटानगरमें एकही मुहूर्त्तमें दो रूप करके प्रतिष्ठा की, लोगोंमें चमत्कार दिखाया और ओसियानगरी के उपल राजा आदिको प्रतिबोधकर ओसवाल वंश स्थापित किया, १८ गोत्रोंकी स्थापना की, सच्चाईदेवी को भी प्रतिबोधी। मानदेवसूरि शान्ति स्तवनके कर्त्ता हुए। मानतुंगसूरिको राजाने ४८ तालोंमें बन्द कर दिये थे, भक्तामर स्तोत्रके ४८ काव्य बनाये, जिससे अडतालीस ताले टूट गये। इसीतरह कुमुदचन्द सूरिने कल्याणमन्दिर स्तोत्र बनाकर अवंतीपार्श्वनाथकी प्रतिमा पृथ्वीमेंसे प्रकटकी वह उज्जैनमें अभी मौजूद है. इसी प्रकारसे श्री खरतरगच्छमें नवांगीवृत्ति कर्ता, श्रीस्तंभनकपार्श्वनाथको प्रकट करनेवाले अभयदेवसूरि हुए। और सैकडों साधु-साध्वी तथा एकलक्ष तीसहजार श्रावक बनानेवाले, अनेक देव-देवी साधक महान् प्रभावक दादा श्रीजिनदत्तसूरि हुए. इसीतरह श्रीतपगच्छमें कर्म ग्रन्थादि प्रकरण करनेवाले देवेन्द्रसूरिजी हुए, वादीवैताल शान्तिसूरि और परकाय प्रवेश विद्यावाले जीवदेवसूरि और कुमुदचन्द्र दिगम्बर वादीको जीतने वाले वादीदेवसूरि आदि बहुतसे प्रभावक आचार्य हुए हैं. उन्होंके चरित्रभी स्थविरावली के अन्तमें समय हो तो कहने चाहिये. और तीनों कालिकाचार्यभी स्थविर हुए हैं. पहले कालिकाचार्य श्रीमहावीर स्वामीके निर्वाणसे

२७६ वर्षे श्यामाचार्य नामक पण्णवणासूत्रके करनेवाले हुए. दूसरे कालिकाचार्य महावीर स्वामीसे ४५२ वर्षे सरस्वती साध्वीके कारणसे गर्दभिल्ल राजाका उच्छेद करनेवाले हुए, तीसरे कालिकाचार्य श्रीवीरनिर्वाणसे ९९३ वर्षे हुए, उनके पासमें इंद्रने आकर निगोदका स्वरूप सुना था और इन्हीं तीसरे कालिकाचार्यने चौथकी सम्वत्सरी स्थापित की है. इनका विस्तार 'कालिकाचार्य कथा' से जान लेना. आगमादिके ज्ञाता—ज्ञान स्थविर १, वीशवर्षसे अधिक दीक्षा पालनेवाले पर्याय स्थविर २, साठवर्षकी अवस्थावाले वय स्थविर ३, ऐसे तीन प्रकारके स्थविर होते हैं. इस स्थविरावलीमें संक्षेपसे पूर्वाचार्योंके चरित्र कहे हैं, विस्तारसे उन्होंके अलग २ चरित्रहैं।

॥ इति स्थविरावली नामक अष्टम व्याख्यान संपूर्ण ॥८॥

॥ अथ नवम व्याख्यान प्रारभ्यते ॥

अब नवमी वाचनामें साधु समाचारी कहतेहैं:– तिसकाल तिससमयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीरस्वामी वर्षाकालमें एकमहीना वीशदिने, अर्थात् ५०दिन जानेसे पर्युषणा करतेथे. वर्षाकालमें एकजगह ठहरना और वार्षिक पर्व करना उसको पर्युषणा कहते हैं. अप्रतिबद्ध–उग्रविहारी साधु वर्षाकाल लगतेही ठहर जावें तो लोग समझ लेवें कि इसवर्ष वर्षा बहुत होगी और शीघ्र आवेगी, अतः गृहस्थ लोग अपने घरोंमें वर्षाकी बोछांट न आनेके लिये बांशकी चटाई आदि लगावें, खडी आदिसे पोताई करें, घासादिसे ढकें, गोबर आदिसे लीपें, घरोंके आसपास कांटे आदिकी बाड करें, दरवाजे आदि ठीक करें, ऊंची-नीची जमीनको सम करें, पाषाणादिसे ठीक करें, धूपसे सुगंधित करें, छत्तका जल निकलनेको नाली या घरका जल निकलनेका खाल ठीक करें, और खेती आदिके कार्योंमें लगें उसमें जीवोंकी हानिका निमित्त कारण दोष साधुको न लगे इसलिये ५०दिने पर्युषणा करते हैं. वर्षाकाल लगतेही साधु ठहर जावे और कोई गृहस्थ पूछे महाराज आप यहां वर्षा काल ठहरोगे तो साधु बोले–अभी पांच दिन ठहरे हैं. इस प्रकार पांच पांच दिन (दश पंचक) करके ५०दिने

वार्षिक पर्व करें. जैसे भगवान् ५० दिने पर्युषणा करतेथे, वैसेही गणधर, गणधरोंके शिष्य, स्थविर और वर्त-
मान कालके सब साधुभी ५० दिने पर्युषणा करते हैं. उसी प्रकार हमारे आचार्य, उपाध्याय तथा हम लोगभी ५०
दिने पर्युषणा करते हैं. उसमेंभी कारण विशेषसे ५० दिनके अंदर पर्युषणा करना कल्पताहै परंतु ५० वें दिनकी
रात्रिको उल्लंघन करके आगे पर्युषणा करना नहीं कल्पताहै *. पर्युषणा करनेमें दिनोंकी गिनतीका नियम होनेसे

---

*—चंद्र पन्नत्ति, सूर्य्य पन्नत्ति, जम्बूद्वीप पन्नत्ति, ज्योतिष्करंडपयन्न आदि जैन शास्त्रों में अधिक महीना होवे तब उसको दिनों में पक्षों में, मासों में गिनती करके तेरह महीनों के छव्वीस पक्षोंका अभिवर्धित वर्ष मानाहै १, "अभिवड्ढियंमि वीसा, इयरेसु सवीसइ मासो" निशीथ भाष्य, चूर्णि आदिके इस पाठानुसार जब अधिक महीना होवे तब उसकी गिनती करके आषाढ चौमासी से वीस दिने श्रावण में पर्युषणा करनेका और जब अधिक महीना न होवे तब पचास दिने भाद्रपद में पर्युषणा करने का अनादि नियम है २, अधिक महीना होवे तब पर्युषणा के पीछे १०० दिन तक और अधिक महीना नहीं होवे तब ७० दिन तक ठहरने की निशीथ भाष्य, चूर्ण आदि शास्त्रोंकी आज्ञा है ३, यही नियम नवांगी वृत्तिकारक अभयदेवसूरिजी ने भी स्थानांग सूत्रके तीसरे ठाणेकी टीकामें खुलासा लिखाहै ४, इन्हीं महाराजने समवायांग सूत्रमें पर्युषणा संबंधी ७० दिन बाबत पाठको अधिक महीना नहीं होवे तब चार महीनों के वर्षाकाल संबंधी बतलाया है ५, श्रावण आदि अधिक महीने होवे तब वर्षाकालमें पांच महीनों के दश पाक्षिक प्रतिक्रमण सब जैनी करते हैं ६, जैन टिप्पणा विच्छेद होने से लौकिक टिप्पणा मुजब तमाम व्यवहार होता है जिससे श्रावण आदि अधिक महीने होने पर पांच महीनोंका वर्षाकाल सर्व जैनियों को मानना पडता है ७, व्रत पच्चक्खाण, जप, तप आदि धर्म कार्य्य करने में और पुण्य-पाप के कर्म बंधन होने में अधिक महीने के तीस

अधिकमास न होवे तब भाद्रशुदी पंचमीको ५० दिन पूरे होते हैं, इसलिये भाद्रशुदी पंचमीको पर्युषणा करनेका लिखाहै. शालीवाहन राजाके प्रतिष्ठानपुरनगरमें भाद्रशुदी पंचमीको राजाकी तरफसे इन्द्र-ध्वजका महोत्सव होताथा, राजा श्रावक था, राजाने कालिकाचार्यसे छट्ठको पर्युषणा पर्व करनेकी विनति की. छट्ठको ५१ दिन होनेसे शास्त्र आज्ञाकी विराधना होतीथी जिससे छट्ठको पर्युषणा करना मंजूर न करके ४९वें दिन चौथको

दिन तो क्या परन्तु समय मात्र भी गिनती में नहीं छूट सकता, यह भगवान् की आज्ञा है ८, तथापि कई जैनी श्रावणादि अधिक महीने के तीस दिनों को पर्युषणा जैसे उत्तम धर्म कार्य्यों में गिनती करनेका छोड देते हैं यह शास्त्र मर्यादा से और प्रत्यक्ष प्रमाण से भी उचित नहीं है ९, अधिक महीने के अभावमें चार महीनों के वर्षाकाल में पर्युषणा के पीछे सत्तर दिन ठहरने संबंधी समवायांग सूत्र का सामान्य पाठका सहारा लेकर अधिक महीना होने से पांच महीनों के वर्षाकाल में पर्युषणा के पीछे सौ दिन होते हैं, इस प्रत्यक्ष सत्यका निषेध करना किसी प्रकार योग्य नहीं है १०, जैन टिप्पणा में पौष-आषाढ बढते थे तब भी उनको गिनती में लेते थे अब कालानुसार लौकिक टिप्पणामें श्रावणादि बढते हैं उनको भी गिनती में लेने पडते हैं और पर्युषणा पर्व आषाढ चौमासी से पचास दिने करने की आज्ञा है, इसालिये श्रावण बढे तो दूसरे श्रावणमें, भाद्रपद बढे तो प्रथम भाद्रपदमें पर्युषणा पर्वका आराधन शास्त्रानुसार करना चाहिये और कार्त्तिक तक सौ दिन रहते हैं इसमें कोई दोष नहीं है ११, पंचपरमेष्ठि नवकार मंत्रके मूल पांच पदों के पैंतीस अक्षर और ऊपर चार चूलिकाओं के तेंतीस अक्षर मिलकर सब अडसठ अक्षर नवकार मंत्रके होते हैं, इसी तरह से अधिक महीनेको कालचूला कहने परभी उसको गिनती में लेकर तेरह महीनों का एक वर्ष शास्त्रों में कहा है इसलिये कालचूला कहने परभी अधिक महीना गिनती में निषेध नहीं होसकता १२,

मंजूर किये. तब राजाने गुरुमहाराज व चतुर्विध संघके साथ भाद्रशुदी चौथको पर्युषणा पर्वकी आराधना बडे महोत्सवके साथ की. और जैनटिप्पणा विच्छेद होनेसे लौकिक टिप्पणामें हरएक तिथियोंकी वृद्धि होने लगी, कभी संवत्सरी पर्व के दिन छट्ठ न आने पावे इसलिये चतुर्विध सर्व संघने चौथको पर्युषणा पर्व करनेकी मर्यादा कायम रक्खी है और ५० दिने पर्युषणा पर्व करनेकी आज्ञा होनेसे दूसरे श्रावणमें यां प्रथम भाद्रपदमें

विवाह, शादी, प्रतिष्ठा आदि मुहूर्त्त देखकर किये जाने वाले कार्य्य तो चन्द्र-सूर्य्यके ग्रहणमें, अधिक मासमें, क्षय मासमें, मल मासमें, और व्यतीपात-अमावस्या-क्षयतिथि-वृद्धितिथि-सिंहस्थ-गुरु-शुक्रका अस्त-चौमासा आदि बहुत से कारणों में नहीं होसकते, परन्तु पर्युषणा आदि धर्म कार्य्य तो अधिक मास आदि किसी भी कारण में नहीं रुक सकते, इसलिये पर्युषणा आदि धर्म कार्य्य अधिक महीने में करनेका निषेध करना सर्वथा अनुचित है १३, कल्पसूत्र के "अन्तरा वियसे कप्पइ नो से कप्पइ तं रयणिं उवायणा वित्तए" इस पाठानुसार कारण विशेष से भी पचास दिन के अन्दर पर्युषणा करना कल्पता है, परन्तु पचासवें दिनकी रात्रि भी पर्युषणा किये विना उल्लंघन करना नहीं कल्पे, ऐसी खास विशेष शास्त्रों की आज्ञा है १४, तथा "पंचाशतैव दिनैः पर्युषणा युक्तेति वृद्धाः" कल्पसूत्र की टीकाओं के इस पाठानुसार सर्व पूर्वाचार्यों ने श्रावणादि अधिक महीने होवें तब भाद्रपद में पर्युषणा करनेका निषेध करके दूसरे श्रावण में या दो भाद्रपद हों तो प्रथम भाद्रपदमें ५० दिनों की गिनती से पर्युषणा करने की आज्ञा दी है १५. इसी प्रकार विशेष रूपसे पर्युषणा के बाद सत्तर दिन रहने का किसी भी शास्त्र में प्रमाण नहीं है और दो आसोज होने से भी पर्युषणा के पीछे कार्त्तिक तक सौ दिन होते हैं, इसलिये अधिक महीना होनेपर पचास दिन उल्लंघन करने और पर्युषणा के बाद सत्तर दिन रहने का आग्रह करना सर्वथा अनुचित है १६. इस

पर्युषणा पर्वकी आराधना करना जिनाज्ञानुसार उचितहै। यह वर्षाकाल निवासरूप प्रथम समाचारी ॥१॥

वर्षाकालमें चौमासी (श्रावणादि अधिक मास हो तो पांच मास, न हो तो चार मास) रहेहुए साधु-साध्वियोंको चारों दिशा-विदिशाओं में पांच कोस तक जाना आना कल्पे, उपाश्रयसे सब तरफ ढाई २ कोस तक आहारादि के लिये जासकते हैं. यदि पहाड़के मध्यमें उपाश्रय आदिमें ठहरे हों और ऊपर-नीचे वस्ती हो तो वहां परभी ढाई २ कोसतक ऊंचे-नीचे जाना आना कल्पता है, जिससे जाने-आनेमें पांच कोस होते हैं तथा किसी रोगी साधुके दवाई आदिके लिये या किसीने संथारा किया हो उनकी सेवाके लिये दूसरा कोई साधु न हो वहां जाना पड़े तो चार-पांच योजन (२० कोस) तकभी जाना कल्पताहै. गीला हाथ सूके जितने समयको 'यथा-लंद' काल कहते हैं, उतने काल तकभी वहां पर अपना कार्य हुए बाद ठहरना नहीं कल्पे. इसको जघन्य लंद कहते हैं, परन्तु विशेष कारणसे उत्कृष्ट लंद, यानी—पांच रात्रि-दिनतकभी ठहर सकते हैं. उसके बाद शीघ्र अपने

विषयमें तमाम प्रकारकी शंकाओं का समाधान "कल्पद्रुम कालिका" टीका के नवम व्याख्यान की टिप्पणी में और "बृहत्पर्युषणा निर्णय" नामा ग्रन्थ में मैंने विस्तार से लिखा है. पाठकगण उन्हें अवश्य देखें।

चौमासी स्थानपर पीछा आना चाहिये. वर्षा कालमें साधु साध्वी द्रव्य-क्षेत्र-काल और भावसे चार प्रकारके अवग्रह धारण करें. द्रव्य अवग्रहके तीन भेद्—सचित्त, अचित्त, मिश्र. सचित्त अवग्रह—सामान्य शिष्यको और साध्वी हो तो शिष्याको दीक्षा न दें, परंतु किसी विशेष वैराग्यवान् संथारा करनेकी इच्छावाले रोगीको या राजा, मंत्री आदिको दीक्षा दे सकते हैं. अचित्त अवग्रह—वस्त्र-पात्रादि न लें, मिश्र अवग्रह, उपधिसहित शिष्यको दीक्षा न दें १. क्षेत्र अवग्रह—गौचरीके लिये ढाईकोस तक और खास कोई कारण हो तो चार-पांच योजन तक जावें आवें २. काल अवग्रह—अधिक मासके अभावमें भाद्रपद शुक्ल पंचमी से कार्त्तिक सुदी पूनम तक ७० दिन तक एक जगह ठहरें, यह जघन्य कालावग्रह. आषाढ सुदी पूनम से कार्तिक सुदी पूनम तक चार महीनों तक मध्यम कालावग्रह और कभी वर्षा ज्यादा हो, रास्तोंमें कीचड हो तो पांच या छः महीने तक ठहरें यह उत्कृष्ट कालावग्रह ३. भाव अवग्रह—वर्षाकालमें विशेष रूपसे क्रोधादि कषायोंका त्याग करके आठ प्रवचन माताओंका अच्छी तरहसे पालन करना. यथालंद (थोडे समय) तक या वहुत कालतक इन चारों अवग्रहके विना नहीं रहना, अर्थात्—अप्रमादपने हर समय उपयोग पूर्वक रहना चाहिये. यह दूसरी समाचारी ॥२॥

नदीके दोनों बाजु गांव हो बीचमें नदीमें हमेशा बहुत जल बहता हो उसको उल्लंघन कर गौचरीके लिये चारों तरफ पांचकोस तक आना-जाना साधुओंको नहीं कल्पताहै. जिसतरह कुणालानगरीके पास एरावतीनदी में बहुत जल बहताहै, उसको उलांघकर आहारके लिये नहीं जाना परंतु यदि समुदाय अधिक हो या किसी भक्तके बडे तपका पारणादि कारण हो तो जिस नदीमें अल्प जल बहता हो जिससे एक पैर जलमें और एक पैर जमीन पर या जलसे अधर करके नदीका उल्लंघन होसके, उस नदीको पार करके चारों तरफ पांचकोस तक साधुको गौचरी के लिये जाना कल्पता है, यदि इस तरहसे नदी पार नहीं कर सकें और जलको विलो-डकर जाना पडे तो गौचरी के लिये पांचकोस तक जाना-आना नहीं कल्पता है. यह तीसरी समाचारी ॥३॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु—साध्वियोंमें किसीसे गुरुने कहा हो—हे मुनि ! आज अमुक रोगी साधुको आहार लाकर देना, तुम नहीं करना, इसप्रकार गुरुने जिसको आहार लाकर देनेकी आज्ञा दी हो उसीको लाकर दे, परंतु खुद गुरुकी आज्ञा बिना आहार न करे १, इसी तरह गुरुने किसी साधुसे कहा हो, हे महाभाग ! आज तुम्हीं आहार लाकर करना, परंतु रोगी साधुको लाकर नहीं देना, रोगी साधुके लिये दूसरा लाकर देगा या

रोगी साधु आज आहार न करेगा, तब गुरुकी आज्ञासे आपही आहार लाकर करे, रोगीको न दे २, अथवा गुरुने ऐसा कहा हो–हे साधु! आज तू आहार लाकर ग्लानको देना और खुद भी करना, अशक्ति होनेसे उपवास न करना, तब वह साधु आहार लाकर रोगीको दे और आप भी आहार करे ३, अथवा गुरुने ऐसा कहा हो, आज तुम रोगीको आहार न देना और खुद भी न करना, तब गुरुकी आज्ञा विना रोगीको आहार देना और स्वयं भी करना न कल्पे ४. गुरुकी आज्ञा बिना रोगीके लिये आहार लानेसे यदि रोगी न लेवे तो परठना पडे उसमें साधुको दोष लगे, अथवा शर्मसे रोगी आहार कर लेवे तो अजीर्णादि रोगोंकी उत्पत्ति होवे. दही आदिसे प्रमाद बढे, शीरा-क्षीर आदि सरस आहारसे कीटिका-मक्षिकादिका विनाश होनेसे संयम विराधना, अजीर्णादिसे आत्म विराधना और आहार परठनेसे लोगोंमें उड्डार (लघुता) आदि दोष होवे इसलिये सब गुरुकी आज्ञासे करना चाहिये. यह परस्पर आहार देने रूप चौथी समाचारी ॥४॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें निरोगी शरीर वाले, शक्तिवान् युवानोंको विकार करने वाली वस्तु बारंबार खाना नहीं कल्पे. मदिरा १, मांस २, मक्खन ३, सहत ४. ये चार वस्तुएँ सर्वथा लेने के योग्य नहीं हैं.

और दूध १, दही २, घी ३, तेल ४, गुड ५, मिठाई ६. ये वस्तुएँ लेनेके योग्य हैं. तथापि इन विगयोंको चौमासे में बारंबार उपयोगमें नहीं लेना चाहिये. यह विगय त्याग रूप पांचवीं समाचारी ॥५॥

चौमासेमें रहे हुए साधु-साध्वियोंमें कोई वैयावच्च करने वाला साधु गुरुसे पूछे कि आज रोगी साधुको विगय देनी है? जब गुरु कहें-रोगी से पूछो कितनी विगय चाहिये, तब वैयावच्च करने वाला साधु रोगीसे दूध आदिका प्रमाण पूछकर गुरुकी आज्ञासे गृहस्थके घरमें मांगकर रोगी के कहे हुए प्रमाणे वस्तु ले. यदि गृहस्थ अधिक देने लगे तो मना कर दे. जिसपर गृहस्थ कहे-रोगीको चाहिये उतनी उसको देना, बाकी बचे सो आप लेना या अन्य साधुको देना, मेरे यहां बहुत हैं ज्यादे लो. ऐसा आग्रह करे तो अन्य पात्रमें अलग विशेष लेना कल्पे परंतु रोगी के नामसे अधिक लेकर आप खाना या दूसरोंको देना नहीं कल्पे. यह विगय लेने रूप छठी समाचारी ॥६॥

चौमासेमें रहे हुए साधु-साध्वियोंको ऐसे गृहोंमें बिना देखी वस्तु मांगना नहीं कल्पे, जिन्होंको स्थविर आदि साधुओंने श्रावक बनाये हों, धर्म सिखाया हो, प्रीति वाले हों, धर्ममें स्थिर हों, साधुओंको वस्तु मिलने

का विश्वास हो, धर्मरागसे सर्व साधुओंका अभेदभावसे आना जाना हो, गच्छभेद्से, दृष्टिरागसे अथवा स्वार्थसे पक्षपात वाले न हों, घरोंके स्वामिओंने कुटुंब वालोंको और नौकरोंको आज्ञा दे रक्खी हो कि साधु जो मांगे सो देना, अथवा गुणवान् या छोटे वडे आदिका भेद्भाव रहित समान भक्ति वाले हों, ऐसे घरोंमें विना देखी वस्तु मांगनी नहीं कल्पे, क्योंकि वे भक्त होने से साधुको देनेके लिये अपने घरमें वस्तु तैयार न हो तो मूल्यसे मंगावें, मूल्यसे न मिले तो चोरी करें परंतु साधुको तो जरूर ही देवें, इसलिये विना देखी वस्तु किसी भक्तके यहां नहीं मांगनी किंतु जो अभक्त और अपरिचय वाले हों उन्होंके घरोंमें विना देखी वस्तु मांगने में कोई दोष नहीं क्योंकि वस्तु होगी तो देंगे, न होगी तो नहीं देंगे. यह वस्तु याचनेरूप सातवीं समाचारी ॥ ७ ॥

चौमासेमें रहे हुए साधु-साध्वियोंमें जो कोई साधु हमेशा एकासना करताहो, उसको पहले प्रहरमें स्वाध्याय, दूसरे प्रहरमें ध्यान करके मध्यान्हके बाद गौचरीके लिये गृहस्थोंके घरोंमें एक वार जाना-आना कल्पे, परंतु आचार्य १, उपाध्याय २, तपस्वी ३, रोगी ४, वृद्ध ५, लघुशिष्य (जिसके डाढी मूछ नहीं आई हो) ६, इन्होंकी

वैयावच्च करनेवाले साधुको अपने लिये आहार लेनेको गृहस्थोंके घरोंमें दो वार भी जाना कल्पताहै. अर्थात्- तपस्यासे वैयावच्चका अधिक लाभ है, तपस्या करनेवालेसे वैयावच्च नहीं हो सकती और आचार्य, उपाध्याय, रोगी, तपस्वी आदि जब आहार आदि मांगे तब उसे लानेके लिये बारंबार जाने आने में फिरना पडे इसलिये वैयावच्च करनेवाले साधुको दो बार आहार करना कल्पताहै. वर्षाकालमें एकांतरे आहार करनेवालेको गौचरीके लिये एकबार जाना कल्पे, परंतु इतना विशेष है कि उपवासके पारणे पहले प्रहर में 'आवस्सही' कहकर उपाश्रयसे निकल कर उद्गमादि दोष रहित शुद्ध आहार लाकर करे, तक्रादि पीये, पात्रे वगैरह धोकर वस्त्रसे पूंछकर स्वाध्याय आदि करे. उतने आहारसे संतोष रह सके तब तो वैसे ही रहे, अन्यथा भूख लगे और दूसरे दिन उपवास करनाहै इसलिये दूसरी बार भी गौचरी लाकर आहार करना कल्पताहै. चौमासे में दो २ उपवास करनेवाले साधुको पारणेके दिन गौचरीके लिये गृहस्थोंके घरोंमें दो बार जाना कल्पता है. तीन २ उपवास करनेवाले साधुको पारणेके दिन तीन वार गौचरी जाना कल्पताहै. तीन उपवाससे अधिक तप करने वाले साधुको पारणेके दिन जिस समय जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसी समय गृहस्थोंके घरोंमें जाकर आहारादि

लाकर कर सकता है। प्रभातमें अधिक आहार लाकर शाम तक रखनेमें दोष है इसलिये जब जरूरत हो तब लाकर आहार कर लेनेका कहा है. यह गौचरी गमन रूप आठवीं समाचारी ॥८॥

चौमासेमें रहे हुए साधु-साध्वियों में हमेशा आहार करने वालोंको सर्व प्रकारके शुद्ध जल लेने कल्पते हैं. आचारांगसूत्रमें २१ प्रकारके जल बतलाये हैं- आटेकी कठोती धोनेका जल १, पत्ते उबाले हुए का जल २, चांवल धोनेका जल ३, तिलोदक ४, यवोदक ५, तुषोदक ६, ओसामणका जल ७, कांजीका जल ८, उष्ण जल ९, खट्टी वस्तु धोनेका जल १०, बिजोरेका जल ११, द्राक्षका जल १२, कविट्ठका जल १३, अनारका जल १४, खजूरका जल १५, नारियलका जल १६, कषायली वस्तुका जल १७, आंवलेका जल १८, चनोंका जल १९, बोरका जल २०, अम्बाडेका जल २१. ये २१ प्रकारके जल हमेशा आहार करनेवालों को लेने कल्पतेहैं, परंतु रस-गंध-स्पर्शका परिणामांतर होनेका जिनको शुद्ध विवेक हो तो वे समझदार गृहस्थोंको पूछकर या थोडासा चखकर परीक्षा करके ऐसे जल लेसकते हैं, अन्य नहीं. जिसमेंभी चांवलादि के जलका एक प्रहर आदिका काल बतलायाहै, उसके अंदर खलास करदेना परंतु बिना परीक्षाके लेना और शामतक रखना उचित

नहीं, उसमें जीवोंकी उत्पति होनेकी संभावनाहै। चौमासेमें रहे हुए साधुओंमें एकान्तरे उपवास करनेवालेको तीन तरहके जल लेने कल्पतेहैं–आटेका धोवण १, पत्ते उबाल कर ठण्डे पानीसे सींचे वह जल २, चांवलोंका धोवण ३. और दो २ उपवास (बेला २) करके पारणा करनेवालेको–तिलोंका धोवण १, तुषोंका धोवण २, जौका धोवण ३. ये तीन प्रकारके जल लेने कल्पतेहैं और तीन २ उपवास (तेला २) करके पारणा करने वालेको ओसामणका जल १, कांजीका जल २, उष्ण जल ३. ये तीन प्रकारके जल लेने कल्पतेहैं और तीन उपवाससे अधिक तप करनेवाले साधुको तीनवार उबाला आया हुआ उष्ण जल लेना कल्पताहै, उस जलमें अन्नका कुछभी अंश नहीं होना चाहिये. तेले से अधिक तप करने वाले के सहायकारी प्रायः देव अधिष्ठायक होताहै, इसलिये धान्यका अंश रहित शुद्ध गर्म जल पीना कल्पताहै। चौमासे में रहे हुए साधु–साध्वियोंमें किसीने भात-पानीका पच्चक्खाण (अनशन) किया हो उसको सिर्फ गर्म जल ही कल्पताहै वह भी अन्नके कण रहित हो, क्योंकि अन्नकण सहित जल पीनेसे आहारका दोष लगताहै, गर्म जल भी बिना छना हुआ नहीं किंतु वस्त्रसे छाना हुआ होना. वहभी प्रमाण सहित थोडा २ देना, अधिक नहीं, एकबारमें ज्यादे पिलानेसे

अजीर्णादि दोष होनेका संभव है. इसलिये जल पिलाने के पहले गुरुआदि साधुओंको दिखाकर पिलाना परंतु विना दिखाये न पिलाना. यह जल ग्रहणरूप नवमी समाचारी ॥ ९ ॥

चौमासे में रहे हुए साधु-साध्वियोंमें कोई साधु दत्ति संख्याका नियम वाला, अर्थात्—गृहस्थके घरमें आहार-पानीको साधु जावे, तब गृहस्थ कुडछी आदिसे या हाथसे चाहे निमकके स्वाद मात्रही क्यों न हो एकवारमें जितनी वस्तु पात्रमें देवे उसको एक दत्ति कहते हैं. इसप्रकार अभिग्रहरूप तप करने वाला होवे—वह पांच दत्ति आहारकी और पांच दत्ति जलकी, या चार दत्ति आहारकी, पांच जलकी अथवा पांच आहारकी, चार जलकी. जितनी दत्ति रखी हों उतनी ले या कम ले परंतु बढावे नहीं, जिसतरह बडी कुडछी आदिसे २-३ दत्तियोंमें ही जरूरत जितना आहार आजावे तो आहारकी दो दत्ति बची हों उनको जलकी दत्तियों में मिलाकर सात दत्ति जलकी नहीं करनी चाहियें. इसीतरह पानीकी दत्तियोंको आहारकी दत्तियों में नहीं मिलानी, उसदिन उतनीही दत्तियों से संतोष करना परंतु दत्तियोंको इधर उधर मिलाकर गृहस्थोंके घरोंमें दो तीन वार नहीं जाना चाहिये. यह दत्ति संख्यारूप दशवीं समाचारी ॥१०॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वी 'संनिवृत्तचारी' यानी–मना किये हुए घरोंमें आहार–पानी लेनेको नहीं जावे अर्थात्–जो साधु हमेशा शुद्धआहार लेता हो उसको उपाश्रय या शय्यातर के घरसे लेकर सात घरों तकमें जीमन हो वहां आहारके लिये जाना नहीं कल्पे. जीमनवारके घर गोचरी जाना मना किया है उसे त्यागने वालेको 'संनिवृत्तचारी' कहतेहैं. कई आचार्य ऐसा कहते हैं कि उपाश्रयको छोडकर आगेके सात घरोंमें जीमनवार हो तो वहां न जाना चाहिये। और कोई आचार्य ऐसा भी कहतेहैं कि उपाश्रय व उपाश्रयके पासका एकघर छोडकर आगेके सात घरोंमें जाना नहीं कल्पताहै. पहले पक्षमें उपाश्रय सहित सात घर, दूसरे पक्षमें उपाश्रय को छोडकर सात घर, तीसरे पक्षमें उपाश्रय व उपाश्रयके पासका एकघर छोडकर आगेके सात घरोंमें जीमनवार हो वहां आहारके लिये साधुको जाना नहीं कल्पे, क्योंकि उपाश्रयके पासवाले घर विशेष रागी होने से आधाकर्मी आदि आहार देनेमें दोष लगा दें, इसलिये उपाश्रयके पासके घरोंमें जाना मना कियाहै। यह जीमनवार विचाररूप ग्यारहवीं समाचारी ॥११॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें जो साधु करपात्री जिन कल्पी हो उसको ओस, धूमर या छोटी २ बूंदें

गिरतीहों तव गृहस्थके घर आहारके लिये जाना नहीं कल्पे. जिन कल्पी साधुको ऊपरसे न ढका हो ऐसे स्थानमें आहार करना नहीं कल्पे, कदाचित् आधा आहार किया और वर्षा शुरु होजावे तो पहले आहार किया सो किया बाकी बचा उसको एकहाथसे ढककर या हृदयके आगे रखकर अथवा कांखमें रखकर ढके हुए स्थानमें अथवा वृक्षके नीचे जावे परंतु आहार को सचित्त पानी न लगे वैसा करे और सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म अपकाय वर्षतीहो तो जिन कल्पी साधु आहारके लिये नहीं जावे. यह जिन कल्पी साधुके आहार विचाररूप बारहवीं समाचारी ॥१२॥

चौमासेमें स्थविर कल्पी चौदह प्रकारके उपकरणधारी साधुको कंवल भींजकर अंदरकी चद्दर गीली होजावे ऐसी ज्यादा वर्षा होती हो तो गौचरीके लिये जाना नहीं कल्पताहै. परंतु रोगी-तपस्वी आदिके लिये या भूख सहन नहीं होसकती हो और थोडी वारिस होतीहो जिससे अंदर चद्दर या शरीर गीला न होसके ऐसी अल्प वर्षा में चद्दरके ऊपर कंवलसे शरीर ढककर पात्रोंको पडलोंसे ढकेहुए लेकर आहारके लिये गृहस्थोंके घरोंमें जाना आना कल्पताहै। चौमासेमें साधु-साध्वी गौचरी गये बाद ज्यादा वर्षा होने लगे तव किसी गृहस्थके घरमें, आराम (बहुत वृक्षोंके समुह) के नीचे, अन्य किसी साधुके उपाश्रयके नीचे अथवा लोगोंके बैठनेकी ढकी

हुई जगह या किसी वृक्षके नीचे आना कल्पताहै, वर्षा बंद होने पर अपने चौमासी स्थानमें वा गृहस्थोंके घरोंमें आहारके लिये जाना कल्पे. वर्षा होने के समय पूर्वोक्त स्थानोंमें साधु खडा हो वहां पर या समीप वाले गृहमें साधुके आनेके पहले चांवल बनायेहों और पीछे मूंग वगैरह की दाल बनाईहो, तो साधुको चांवल लेने कल्पें, परंतु दाल लेनी नहीं कल्पे १, साधुके आने के पहले दाल बनीहो, पीछे चांवल बनाये हों तो दाल लेनी कल्पे, चांवल लेने नहीं कल्पें २, साधुके आने के बाद चांवल और दाल बनाये हों तो दोनों लेने नहीं कल्पें ३, और यदि साधुके आनेके पहले चांवल-दाल दोनों बनाये हों तो दोनों लेने कल्पते हैं. अथवा चौमासेमें रहे हुए साधु—साध्वी गौचरी लेकर आतेहों और वर्षा अधिक होने लगे तो बगीचा आदि पूर्वोक्त स्थानोंमें ठहरें परंतु पहले लिये हुए आहार—पानीका समय उल्लंघन करना नहीं कल्पे, अर्थात्—वर्षा बंद न होवे तो वहां निर्दोष स्थान देख, प्रमार्जनकर, आहारकर, जल पी, पात्रे साफकर झोलीमें एकत्रित बांध दें और जबतक वर्षा वर्षे तब तक वहीं पर ठहरें, यदि वर्षा बंद न हो तो भी सूर्य्य अस्त होने के पहले उपाश्रयमें आजावें, रात्रिमें बाहर रहना नहीं कल्पे. वर्षाके कारण रात्रिमें अकेले बाहर रहें तो आत्म विराधना, संयम विराधनाका दोष लगे या

उपाश्रयमें रहनेवालोंको उसकी चिंता होवे इसलिये रात्रिमें बाहर रहना नहीं कल्पताहै। चौमासेमें साधु-साध्वी आहारके लिये गयेहों और रास्तेमें वर्षा होने लगे तब वृक्ष आदि पूर्वोक्त स्थानोंमें वर्षा वर्षने से अकेला साधु खडा हो, उसी जगह वर्षा वर्षने से यदि एक साध्वी भी आजावे तो उसके साथ खडे रहना नहीं कल्पे १, एक साधुको दो साध्वियोंके साथ एक जगह खडे रहना नहीं कल्पे २, दो साधुओंको एक साध्वीके साथ खडे रहना नहीं कल्पे ३, दो साधु और दो साध्वियोंको भी साथ में खडे रहना नहीं कल्पे ४, प्रायः दो साधुओंसे या तीन साध्वियोंसे कम विचरना नहीं कल्पता, अतः पांचवां कोई साधु या साध्वी पास में होतो एक जगह खडे रहना कल्पताहै. कदाचित् कारणवश पांचवां न होतो जहां वहुतसे लोग देख सकतेहों या लोगों के जाने आनेका रास्ता हो तो वहां खडे रहना कल्पताहै परंतु एकान्तमें खडे रहना नहीं कल्पता। चौमासेमें साधु-साध्वी आहारके लिये गयेहों और रास्तेमें वहुत वर्षा होने लगे तो आराम आदि पूर्वोक्त स्थानोंमें एकला साधुको अकेली स्त्रीके साथ खडे रहना नहीं कल्पे १, एक साधु दो स्त्रियाँ २, दो साधु एक स्त्री ३, दो साधु दो स्त्रियोंके साथ खडे रहना नहीं कल्पे ४, परंतु कोई पांचवां वृद्ध या वालक हो तो खडे रहना कल्पता है. अथवा

बहुत लोग देख सकतेहों या लोगोंके आने जानेका रास्ताहो तो खडे रहना कल्पताहै. इसी तरह एक श्रावक एक साध्वी, एक श्रावक दो साध्वी, दो श्रावक एक साध्वी और दो श्रावक दो साध्वियोंको भी एक जगह खडे रहना नहीं कल्पे. यह तेरहवीं समाचारी ॥१३॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंमें वैयावच्च करनेवाले साधुको किसी साधुसे पूछे बिना उसके लिये आहार पानी आदि चार प्रकारका आहार लाने को गृहस्थके घर जाना नहीं कल्पताहै, बिना पूछे लानेसे उसकी इच्छा हो तो आहार करे, इच्छा न हो तो न करे, बिना रुची लज्जासे अथवा दाक्षिण्यता से आहार करले तो उसके शरीरमें प्रमाद बढे या अजीर्ण होवे और यदि आहार नहीं करे तो वर्षाकालमें जीवाकुल भूमिमें परठना योग्य नहीं, इसलिये बिना पूछे आहार नहीं लाना. लाने में आत्म विराधना, संयम विराधनाका दोष लगे. यह चौदहवीं समाचारी ॥१४॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंके शरीर कदाचित् वर्षाकी छांटोंसे गीले हो तों उन्होंको अशन, पान, खादीम, स्वादीम आहार करना नहीं कल्पता है. हाथ १, हाथकी रेखाएँ २, नख ३, नखोंके अग्रभाग ४,

भुंआरे ५, होठों के नीचेका भाग (डाढी) ६, होठों के ऊपरका भाग (मूंछ) ७, ये सात स्थान पानी रहने के हैं जब सब सूख जायें तब आहार करें. यह सप्त स्नेह (जल) स्थानरूप पन्द्रहवीं समाचारी ॥१५॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको ये आठ सूक्ष्म जीवोंके स्थान जो आगे बतलानेमें आते हैं उन्होंको समझने, देखने और पडिलेहने चाहियें. जहां २ साधु–साध्वी रहें, बैठें, पात्रादि उपकरण रक्खें या लेवें, वहां २ पडिलेहना अवश्य करनी. प्राण सूक्ष्म १, पनक सूक्ष्म २, बीज सूक्ष्म ३, हरित सूक्ष्म ४, पुष्प सूक्ष्म ५, अंड सूक्ष्म ६. लयन सूक्ष्म ७, स्नेह सूक्ष्म ८. इन सूक्ष्मों को समझ कर उन्होंका बचाव करना. अब इन आठ सूक्ष्मोंको अलग २ कहते हैं:—प्राण-सूक्ष्मके पांच भेद– काले, नीले, पीले, लाल और सफेद कुंथुयें जातिके सूक्ष्म जीव जब नहीं चलें, स्थिर रहें, तब छद्मस्थ साधु–साध्वियों के देखनेमें नहीं आसकते, इनका उद्धार (बचाव) नहीं होसकता, अतः इनको 'अनुद्धरी' कहते हैं, ये चलतेहों तबभी बारीक दृष्टिसे देख सकते हैं, जिस रंगकी वस्तु होती है उसी रंगके कुंथुयें भी उत्पन्न होते हैं. छद्मस्थ साधु–साध्वियोंको इनका स्वरूप समझकर प्रत्येक कार्य प्रसंगसे वारंवार इनकी प्रतिलेखना-प्रमार्जना करनी चाहिये, इनको प्राण सूक्ष्म कहते हैं १. पनक

सूक्ष्म—कृष्ण-नील-पीत-रक्त-शुक्ल ये पांच वर्णकी होतीहै, यह प्रायः वर्षाकालमें विशेष करके भूमि-काष्ठ-वस्त्र-मिट्टीके बर्तन आदिके ऊपर जिस रंगकी वस्तुहो उसी रंगकी पनक (लीलन—फूलन) उत्पन्न होती है, इसको पनक सूक्ष्म कहते हैं २. गेंहुँ-चांवल आदि धान्यके मुंह पर बीजरूप छोटे २ कण होते हैं उनको बीज सूक्ष्म कहते हैं, ये भी पूर्वोक्त पांचों वर्णके होते हैं ३. हरित सूक्ष्म भी पांचों वर्णकी होती है, जो उत्पन्न होनेके समय पृथ्वीके समान वर्णवाले सूक्ष्म अंकुर होते हैं और शीघ्र विनाश होजाते हैं, इसको हरित सूक्ष्म कहतेहैं ४. बड, ऊंबर आदि के फूलों को पुष्प सूक्ष्म कहते हैं, ये भी वृक्षों के वर्ण के समान पांचों प्रकारके होते हैं ५. अंड सूक्ष्म पांच प्रकारके होते हैं—मधु मक्खी के अथवा मत्कुणाके अण्डे १, कोलिकाके अंडे २, कीडियोंके अण्डे ३, ब्राह्मणी-गिलोरी आदिके अण्डे ४, काकीडा वगैरहके अंडे ५, इनको अण्ड सूक्ष्म कहते हैं ६. लयन सूक्ष्म (जीवोंके रहने के घर) पांच प्रकारके होते हैं—पहला ‘ उत्तिंग लयन ’ पृथ्वीमें गोल आकारके छोटे २ खड्डे बनाकर उसमें गर्धभाकार के सूंडवाले जीव रहते हैं, उस खड्डेमें कीडी वगैरह गिरनेसे नहीं निकल सकती उन जीवोंको लोक-रूढिसे बालहस्ति कहते हैं १, दूसरा—‘भृगुलयन ’ तालाब आदिमें जल सूखनेसे पृथ्वी पर पापडी बंध जाती है

उसके नीचे जीव रहते हैं उनको 'भृगुलयन' कहते हैं २, तीसरा–सर्प, चूहे, कीडियें वगैरहके विलोंको 'उद्युत-लयन' कहते हैं ३, चौथा–ताडवृक्षके मूलके जैसे ऊपरसे सकडे नीचेसे चौडे जीवोंके रहनेके घर होते हैं उनको 'तालमूललयन' कहते हैं ४, पांचवां–भ्रमर-भ्रमरिओंके गृहोंको 'शंबूकावर्त्तलयन' कहते हैं ५, इनको लयन सूक्ष्म कहते हैं ७. स्नेहसूक्ष्मभी पांच प्रकारके होते हैं–पहला रात्रिमें आकाशसे जो सूक्ष्म जल गिरताहै, यह ओस सूक्ष्म १, दूसरा वर्फ (हिम) सूक्ष्म २, तीसरा धूंमर (महिका) सूक्ष्म ३, चौथा गडे (करा) सूक्ष्म ४, पांचवां हरी घासपर शीतकालमें पृथ्वीके अन्दरसे तृणोंके अग्रभागमें जल आताहै ५, उसको हरित सूक्ष्म कहते हैं ८. इन आठों प्रकारके सूक्ष्मोंके भेदोंको अच्छी तरहसे समझकर छद्मस्थ साधु-साध्वियोंको वारंवार प्रति लेखना-प्रमार्जना करके उन्होंके जीवोंकी वहुत यत्ना करनी चाहिये. यह आठ सूक्ष्मोंकी यत्नारूप सोलहवीं समाचारी ॥१६॥

चौमासेमें साधु गृहस्थके घरमें गौचरी जावे तब आचार्य आदिसे पूछे, आचार्य–द्वादशांगी सूत्रार्थको पढाने वाले अथवा दिग्बंधन करनेवाले, दीक्षा देनेवाले, गच्छके स्वामी या दिग्मंडलाचार्य, सूत्र सिद्धांत पढाने वाले उपाध्याय, ज्ञानादिमें गिरतेहुए साधुओंको स्थिर करनेवाले और ज्ञानादि पढनेवाले साधुओंकी प्रसंशा

करनेवाले स्थविर, गच्छको ज्ञानादिमें प्रवर्ताने वाले प्रवर्त्तक, अर्थात्–तुम साधु यह सूत्र पढो, तुम यह सूत्र सुनो, उद्देश-समुद्देश आदिके योग वहनकरो इत्यादि ज्ञान संबंधी प्रेरणा करें, दर्शन संबंधी स्याद्वादरत्नाकर, सम्मतितर्क आदि पढाकर धर्म श्रद्धामें दृढ करें, चारित्रमें योगवहन–प्रायश्चित्तशुद्धि–निर्दोष आहारादिकी शिक्षा देते रहें, तुम असुक प्रकारका तप करो, तुम वैयावच्च करो इत्यादि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप-वीर्य आदिमें साधुओंको प्रेरणा करनेवाले प्रवर्त्तक. जिसके पासमें आचार्यादि सूत्रार्थका अभ्यास करें, उनको 'गणि' कहते हैं, गणधर जो तीर्थंकरोंके मुख्य शिष्य, 'गणावच्छेदक' जो साधुओंको साथमें लेकर बाहर क्षेत्रमें विहार करें, गच्छके साधुओंके योग्य क्षेत्रकी तपास करें, उपधि मांगकर साधुओंको दें, गच्छके साधुओंकी व्यवस्था और सूत्रार्थ-उत्सर्ग-अपवादके जाननेवाले गणावच्छेदक इनसे पूछकर अथवा जिस गीतार्थ साधुको आगे करके, बडे-मान कर विचरते हों उनसे बिना पूछे साधुको गौचरी जाना नहीं कल्पताहै, आहारके लिये जानेके समय वंदना पूर्वक हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञा होतो गृहस्थके घर गौचरीको मैं जाना चाहताहूं. ऐसा कहनेसे आचार्यादि आज्ञा दें तो गौचरी जाना कल्पे, यदि आज्ञा न दें तो जाना नहीं कल्पे. इसका कारण कहतेहैं कि गृहस्थोंके

घरों में जानेसे कोई उपद्रव हो तो उसका निवारण करने में आचार्य समर्थ होते हैं, इसलिये आचार्य आदिसे पूछकर गौचरी जाना कल्पताहै. इसीतरहसे विहारभूमि (जिन मन्दिर), और बाहिरभूमि (ठल्ले) अथवा एक गांवसे दूसरे गांव जाना आदि जो २ कार्य करने होवें सब गुरुआदिसे पूछकर करें। चौमासेमें रहे हुए साधुओं में जो कोई साधु दूध-दही-घृतादि विगय लाकर आहार करना चाहे तो पूर्वोक्त विधि से आचार्यादिसे पूछे विना लाना नहीं कल्पताहै, आचार्य विगय लेनेमें लाभ अलाभ जानतेहैं, रोगीको विगय देनेसे बुखारादि होजाये, पुष्टिकें लिये दूधादि देने पर अपुष्टि होजाये, गुरु दीर्घ दृष्टिवाले होते हैं, इसलिये पूछकर लेना चाहिये. इसीप्रकार वर्षाकालमें रहे हुए साधु-साध्वियोंमें किसीके वात, पित्त, कफ, सन्निपात, खून विकार आदि रोगोंका इलाज करानेकी इच्छा हो तो पूर्वोक्त विधिसे आचार्यादिकी आज्ञा लेकर करावें. आचार्य महाराज देश, काल, वय, प्रकृति, योग्य, अयोग्य क्षेत्रादि जानने वाले होते हैं। वर्षाकालमें जो कोई साधु-साध्वी उत्तम तप करनेकी इच्छा करें, तो भी आचार्यादिसे पूछकर करें, तप करनेमें कोई वैयावच्च करनेवाला न हो, औषधादि नहीं मिले, या शरीरकी शक्ति न होवे इत्यादि कारण आचार्य जानते हैं, इसलिये आचार्यसे पूछकर करना चाहिये।

वर्षाकालमें साधु-साध्वियोंमें जो कोई मरणांतिक संलेखना (तपसे शरीर और कर्मनाश) करनेकी इच्छा करें, अर्थात्-अनशन करनेकी इच्छा करें, भात पानीका पच्चक्खाण या पादपोपगमन अनशन करना चाहें अथवा गृहस्थोंके घरोंमें गौचरी आदि किसी कार्यके लिये जाना चाहें, अशनादि चार प्रकारका आहार करना चाहें, उच्चार (ठल्लो), प्रश्रवण (मात्रो) परठाणा चाहें, स्वाध्याय करना चाहें या रात्रिमें धर्म जागरण करनेकी इच्छाहो इत्यादि सब कार्य आचार्यादिसे पूछे विना करने नहीं कल्पतेहैं। साधुको गुरुकी आज्ञा बिना कुछ भी कार्य करना नहीं कल्पताहै. गुरु लाभ-अलाभ, गुण-दोष, हानि-वृद्धि आदि सर्व जानते हैं, यदि योग्यता देखें तो आज्ञा दें अन्यथा नहीं दें। यह गुरु आज्ञासे कार्य्य करनेरूप सतरहवीं समाचारी ॥१७॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु-साध्वियोंको वस्त्र, पात्र, कंवल, ओघा, दंडासन या अन्य उपाधि धूपमें रखनेकी इच्छाहो तब एक साधुसे अथवा बहुतसे साधुओंसे पूछे बिना रखने नहीं कल्पें अथवा गौचरी जानाहो, आहार करना हो, उपाश्रयसे बाहर जिन मंदिर या ठल्ले आदि जानाहो, स्वाध्याय या काउसग्ग करनेकी इच्छाहो, तब एक साधुसे अथवा बहुतसे साधुओंसे प्रार्थना करें कि हे महानुभावो ! जब तक मैं गौचरी लेकर आऊँ और काउ-

सग्गमें रहुँ, तब तक मेरे वस्त्र, पात्र, कंबल आदि उपधिकी आप संभाल रखना, ऐसा कहनेसे एक साधु अथवा बहुतसे साधु आज्ञा दें कि तुम जाओ अपना कार्य करो, तुम्हारी उपधि हम देखेंगे, तब उस साधुको गौचरी जाना यावत् काउसग्ग करना कल्पताहै. यदि कोई साधु प्रार्थना न माने, आज्ञा न दे तो कुछ भी कार्य करना नहीं कल्पताहै. यह अनुमति ग्रहणरूप अठारहवीं समाचारी ॥१८॥

वर्षाकालमें साधु-साध्वियोंको सोनेका पाटा और बैठनेकी चौकी आदि अवश्य लेने चाहियें नहीं तो जीवों की यत्ना नहीं हो सकती. सोनेका पट्टा एक पटियाका मिले तो दो पटियोंका न लेना, वहभी एक हाथसे अधिक ऊंचा, उससे कम नीचा व लिचपिच चूँचूँ शब्द करने वाला हिलता हुआ न होवे तो कीड़ी-कुंथुयें आदि की हानि न हो सके, सर्प आदिभी न चढ सकें ऐसा पाटा नहीं रखने वाला १, यदि पाटा हिलता हो तो पायों के बीचमें वंशाकंबादि लकड़ी डालकर बंद लगाकर दृढकर ले, एक-दो-तीन या उत्कृष्ट चार बंदसे अधिक बंद न लगावे, पक्षमें एक वार बंद खोलकर प्रतिलेखना करलेनी, परन्तु बिना प्रयोजन अधिक वार न खोलना और अधिक बंद होंतो खोलते समय स्वाध्यायमें बाधा आवे, इसलिये चार बंदसे अधिक बंद लगाने वालेको अनर्थक

बंद करने वाला कहते हैं २, जिस साधुके बहुतसे आशन हों उसको 'अमिताशनी' कहते हैं अथवा बहुतसे आशनोंको बारंबार जगह २ स्थानांतर लेजाने में जीवों की हिंसा होती है ३, अपने वस्त्र, पात्र आदि उपकरण धूप में नहीं रखने वालेको 'अनातापि' कहते हैं, वस्त्र-पात्रादिको धूपमें नहीं रखनेसे नीलण फूलण या कुंथुयें आदि जीवोंकी उत्पत्ति होजाती है ४, बहुतसे वस्त्र-पात्रादि उपकरण रखनेसे सब उपभोगमें नहीं ले सकता उसको 'अनाभावित' कहते हैं ५, इरिया-समिति १, भाषा-समिति २, ऐषणा-समिति ३, आदान-भंड-मत्त-निक्षेपणा-समिति ४, उच्चार-प्रश्रवण-खेल जल्ल-सिंघाण पारिठावणिया समिति ५, इन पांचों समितियोंको अच्छी तरहसे नहीं पालने वालेको 'असमित' कहते हैं ६, और बारंबार पडिलेहणा न करे ७, बारंबार प्रमार्जना न करे ८, ऐसे साधुको संयम पालना दुर्लभ होताहै। अब प्रमादी साधुके कर्म बंधनका कारण कहकर, अप्रमादी साधुके कर्म बंधन नहीं होवे सो कहते हैं—एक हाथ ऊंचा, दृढ बंधन वाला, हिलता न हो ऐसा पाटा रखनेवाला १, जो साधु पाटाका बंधन पक्षमें एक वार खोले व चार बंदसे ज्यादे बंद न देनेवाला २, प्रमाण युक्त थोड़े आशन रखने वाला ३, उपधिको धूपमें तपाने वाला ४, पांच समितियों से युक्त भावित आत्मा वाला ५, नियमा-

नुसार शुद्ध क्रिया करने वाला ६, वारंवार पडिलेहणा करनेवाला ७, वारंवार प्रमार्जना करने वाला हो ८, ऐसा साधु सुखसे संयम पाल सकताहै. अव पांच समिति, तीन गुप्तियों के दृष्टांत कहते हैं—

पहली–इरिया-समिति चलनेमें यत्ना करने संबंधी वरदत्तमुनिकी कथा–मिथ्यात्वी देवने रास्तेमें मंडुकिएँ उत्पन्नकीं और हाथीका रूप करके सूंडसे पकडकर वरदत्त साधुको ऊंचा फैंका, साधु जमीन पर गिरते समय जीवदया विचारता हुआ मंडुकियोंकी रजोहरणसे प्रमार्जना करने लगा परंतु अपने शरीर भंगकी कुछभी परवा नहीं की, यह देखकर देवने अपना अपराध क्षमा कराया और स्तुतिकी. दूसरी–भाषा-समितिमें संगत साधुका दृष्टांत–किसी वैरी राजाने वहुत सेना सहित आकर एक नगर घेरा, उस नगरसे संगत साधु निकला, बाहरकी सेना वालोंने पकड लिया और पूछा हे मुनि ! नगरमें कितनी सेना है. साधु बोला–कान सुनते हैं वे बोलते व देखते नहीं, नेत्र देखते हैं, वे सुनते और बोलते नहीं. जीभ बोलतीहै, वह सुनती और देखती नहीं. ऐसा बार २ कहनेसे सेनावालों ने साधुको पाठगांडा जानकर छोड दिया. तीसरी–ऐषणा-समिति में नंदीषेण मुनिका दृष्टांत–वसुदेवजीका जीव पूर्वभवमें नंदीषेणनामा साधु छट्ठ-अठमादिसे पारणा करता और

रोगी आदि साधुओंकी वैयावच्चभी करता, इनकी इन्द्रने सभामें प्रसंशा की, तब परीक्षाके लिये मिथ्यात्वी देव अतिसारी रोगी साधुका रूप करके, एक छोटे शिष्य सहित वनमें ठहरा, छोटा शिष्य नंदीषेण छट्ठका पारणा करता था, वहां आकर बोला तुझको धिक्कार हो ! तू वैयावच्च करने वाला होकर आहार कर रहाहै, और मेरा गुरु अतिसारी रोगी वनमें पडाहै. ऐसा सुनकर नंदीषेण शीघ्र उठा, रोगी के शौचार्थ शुद्ध पानी लेने के लिये घर २ फिरा, देव घर २ में अशुद्ध जल करने लगा तथापि तपके प्रभावसे एक घरसे शुद्ध जल लेकर वनमें आया। रोगी साधुको शौच कराकर कंधेपर बैठाकर रास्तेमें चला, देवने नंदीषेणके कंधेपर दुर्गंधी विष्टा की, मुंहसे गालियें भी दीं, तो भी नंदीषेणने क्रोध नहीं किया, उसकी चिकित्साके विचारमें रहा. ऐसा देखकर देव प्रत्यक्ष होकर नमस्कार करके, स्तुति करके, देवलोकमें गया ३. चौथी—आदान-भंड-मत्त-निक्षेपणा-समितिमें सोमिल मुनिका दृष्टांत—कई साधुओंने प्रच्छन्नकाल होनेसे पडिलेहणा के समयसे पहले ही पडिलेहणा कर ली, जब अवसर हुआ तब वृद्धमुनि बोले हे भद्रो ! फिर पडिलेहणा करो, तब सोमिल साधु बोला—अभी तो पडिलेहणा की है, क्या झोलीमें सर्प उत्पन्न होगये. उसका वचन सुनकर शासन देवीने झोलीमें सर्प उत्पन्न किये, प्रभातमें

सर्पोंको देखकर सोमिल डरा, शासन देवीने प्रतिबोधा—हे साधु आजसे ऐसे उलंठ वचन नहीं बोलना, गुरुके कहनेसे बारंबार पडिलेहणा करनेसे साधुओंके कर्मोंकी बहुत निर्जरा होती है, ऐसा सुनकर सोमिल पडिलेहणामें दृढ हुआ ४. पांचवीं—उच्चार प्रश्रवणादि पारिठावणिया समितिपर—मुनिचन्द्र नामा लघु शिष्यका दृष्टांत—संध्या समय गुरुने कहा हे मुनिचंद्र उठकर थंडिले करो, ऐसा सुनकर लघुशिष्य बोला—आज संध्यामें थंडिले नहीं किये तो क्या रात्रिमें ऊंट आकर बैठेंगे? गुरुने मौन किया. मुनिचन्द्र रात्रिमें मात्रा परठाने के लिये गया शासनदेवीने ऊँट उत्पन्न किये, ऊँटोंने लात प्रहार दिये, डरा हुआ आकर गुरुसे बोला, गुरुने कहा तेने थंडिले करनेके समय उलंठ वचन बोलाथा, इसलिये शासनदेवीने तेरेको शिक्षा दी है, ऐसा सुनकर शासनदेवीके सामने लघु शिष्यने मिच्छामि दुक्कडं दिया और पारिष्ठापनिका समितिमें स्थिर हुआ ५. अब तीनों गुप्तियोंके उदाहरण कहते हैं—पहली—मन-गुप्तिपर—कोंकण साधुने इरियावही पडिक्कमके काउसग्गमें खेतीका विचार किया, गुरुने प्रतिबोधा तब पाप व्योपार विचारनेका मिच्छामि दुक्कडं दिया ६, दूसरी—वचन गुप्तिपर—गुणदत्त साधु अपने सांसारिक माता, भाई वगैरहको वंदना करानेके लिये जाते हुए रास्ते में चौरोंने कहा किसी को

हमारी खबर नहीं देना, ऐसा कहकर छोड दिया. दैवयोगसे मुनिको आगे संसारी सम्बंधी मिले तो भी मुनि ने चौरों की खबर नहीं दी, पीछे से चौर आये मुनिके संबंधियोंको पहिचान लिये, चौरोंने मुनिकी प्रशंसा की, मुनिकी दाक्षिण्यतासे उन्होंको नहीं लूटे ७. कायगुप्तिपर–अरहन्नक साधुका दृष्टांत–अरहन्नक साधु विहार करता हुआ रास्तेमें छोटासा नाला बहता था, सर्व लोगोंको कूदकर उलांघते हुए देखकर मनमें जीवदया विचार कर अपकायकी विराधना बचाने के लिये उस नालेको अरहन्नक साधुने भी कूदकर उलांघा, शासन देवीने पैरों के बीचमें लकडी डालकर गिराया, पैर टूट गया, शासनदेवीने जिन आज्ञा सुनाकर पैर अच्छा करके प्रतिबोधा, साधुभी मिच्छामि दुक्कडं देकर कायगुप्तिमें स्थिर हुआ ८. इस प्रकार साधु-साध्वियोंको वर्षा-काल में पाट, पाटिये काष्टके आसनादि पर बैठना कल्पता है, परन्तु जमीनपर सोना, आसन बिना बैठना नहीं कल्पता, उन्होंकी पडिलेहणा–प्रमार्जना करनी, काजा निकालना, जमीनसे ऊंचे उपकरण रखने और बिना पडिलेह हुए, बिना वापरे हुए नहीं रखने. साधुओं के चौदह उपकरण व साध्वियों के पच्चीस उपकरण होते हैं. सबकी दिनमें दोवार पडिलेहणा करनी. मन, वचन, कायासे उपयोग पूर्वक जयणा करनी, मुंहपत्तिसे मुंह

ढककर बोलना, दिनमें तो देखकर और रात्रिमें यदि कुछ कार्य हो तो दंडासण आदिसे भूमि प्रमार्जनकर चलना, शुद्ध गौचरी लाकर प्रकाशमें देखकर आहार करना, हमेशा सातवार चैत्यवंदन और चारवार सज्झाय करना, चार प्रकारकी विकथा नहीं करनी, अप्रमादीपने स्वाध्याय ध्यान आदि में रहना, ऐसा करने वाले साधु साध्वियों के सुखसे संयम का पालन होताहै। यह उन्नीसवीं समाचारी ॥ १९ ॥

वर्षाकाल में रहे हुए साधु-साध्वियों को ठल्ले—मात्रेकी तीन भूमि पडिलेहणी कल्पती हैं. जिसके दूरकी भूमि पडिलेहणेकी शक्ति न होवे उसको उपाश्रयमें ही अपनी शय्याके दोनों बाजू दूर, मध्य और नजदीक, ऐसी तीन भूमि पडिलेहणी और उपाश्रयके बाहर भी दूर, मध्य, और नजदीक तीनभूमि पडिलेहणी, इस तरह बारह थंडिले उपाश्रय के अंदर व बाहर और बारह दूर, सब चौवीस थंडिले वर्षाकाल में पडिलेहणे चाहियें. यह बीसवीं समाचारी ॥ २० ॥

वर्षाकाल में रहे हुए साधु-साध्वियों को तीन मात्रे लेने कल्पते हैं—ठल्लेका १, मात्रेका २, श्लेष्मका ३. यह इक्कीसवीं समाचारी ॥ २१ ॥

वर्षाकाल में रहेहुए जिनकल्पी साधु को आषाढ चौमासे से हमेशा लोच करना चाहिये, गोलोम मात्र भी केश रखने नहीं कल्पते, ध्रुव लोची होना चाहिये. स्थविर कल्पि साधुको भी शक्ति हो तो हमेशा लोच करना, वैसी शक्ति न हो तो भी संवत्सरी प्रतिक्रमणके पहले अवश्य लोच करना. लोच किये बिना संवत्सरी प्रतिक्रमण्प करना नहीं कल्पताहै. चौमासेमें केश रखनेसे पानीसे गीले होकर अपकायकी विराधना होती है, जूं पडें तो नखूनसे खुजलाने पर विराधना होती है, चमडीमें घाव होते हैं, इसलिये गोलोम प्रमाणभी केश नहीं रखने, शक्ति होनेपरभी मुंडन करावे अथवा कैंचीसे केश कटावे तो तीर्थंकरकी आज्ञाकी विराधना होवे, अन्य साधुओंका भी लोच करानेमें मन कम होनेसे मिथ्यात्वकी प्ररूपणाका प्रसंग आवे, संयम विराधना, आत्म विराधनाका दोष लगे, नाई द्रव्यादि मांगे अथवा सचित्त जलसे हाथ आदि धोए, जिससे पश्चात् कर्म लगे, जिनशासनकी हीलना होवे, इसलिये मुख्य वृत्ति (उत्सर्ग मार्ग) से लोच ही कराना चाहिये परंतु यदि लोच कराने में बुखार आदि हो, बालकसे सहन नहीं होसके, रोवे, कोई मंद श्रद्धावाला संयम छोडदे ऐसा हो तो अपवाद मार्गसे उसके मुंडन करा सकते हैं. यदि मस्तक में फोडे वगैरह होनेसे मुंडनभी न होसके तो कैंचीसे

केश कतर लेने चाहियें, पन्द्रह २ दिनमें पाटेका बंधन खोलकर उसकी पडिलेहणा करनी और पन्द्रह दिनमें आलोयणा ले लेनी. लोच नहीं कर सकताहो तो महीने २ मुंडन करावे या पक्ष २ में केश कटवा ले, मुंडनमें 'लघु-मास' केश कटवानेमें 'गुरुमास' प्रायश्चित्त देनेका निशीथसूत्रमें कहाहै. तरुण साधुको चार महीनेमें लोच करना कल्पे, वृद्ध साधुको चक्षुका तेज कम आदि कारण हो तो छः महीने या सालभरमें लोच करना कल्पे, वर्षाकालमें स्थविर कल्पि या जिन कल्पि सबको अवश्य लोच करना कल्पताहै. यह बाईसवीं समाचारी ॥२२॥

वर्षाकालमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको पर्युषणामें संवत्सरी प्रतिक्रमण किये बाद क्लेश कारक वचन बोलना नहीं कल्पताहै. तिसपरभी जो कोई साधु क्लेश कारक बचन बोले तो उस साधुसे दूसरे साधु ऐसा कहें हे आर्य ! तुमको ऐसा बचन कहना नहीं कल्पता है, अर्थात्–पर्युषणासे पहले कदाचित् क्लेश कारक वचन कहे हों तो संवत्सरी प्रतिक्रमणमें शुद्धभावसे मिच्छामि दुक्कडं देकर क्षमत क्षामणे करलिये जाते हैं. फिरभी पर्युषणा पर्वके बाद क्लेशके बचन कहे और मना करनेसेभी नहीं माने तो उस साधुको जिसतरह तंबोली सडे पानको निकाल देताहै, उसीतरह गच्छसे निकालदेना. अतः क्रोध, मान, माया, लोभादि कषाय साधुओंको नहीं करने. तथा

क्रोधपिंड १, मानपिंड २, मायापिंड ३ और लोभपिंड ४. ये चार पिंड लेने योग्य नहीं हैं:—

"कोहे घेवरखग्गो, माणे सेवइय खुड्डए नायं । माये आसाढभूई, लोहे केसरिय साहुत्ति ॥ १ ॥"

क्रोधपिंड जैसे—घेवरीयो साधु क्रोध करके गृहस्थको शराप देकर भय बतलाकर उसके घरसे घेवर वहोर लाया १, मानपिंड जैसे—सेवभोजी साधु एक स्त्री के साथ मान करके सभामें उसके पतिके पास जाकर बोला—श्वेत अंगुली १, बग उड़ाने वाला २, तीर्थ में स्नान करने वाला ३, किंकर ४, हृदन ५, लडके रमाने वाला ६, ऐसे छः पुरुष स्त्री के वशमें होते हैं. वैसा तू भी न हो तो मुझे सेव वहोरा. उसने सभामें सेव वहोरानेका मंजूर किया और घरमें आकर अपनी स्त्री को ऊपरकी मंजल किसी कार्यके लिये चढाकर निसरणी हटा ली, फिर साधुको बुला कर घी खांड सहित सेवका पात्र भर दिया, तब वह साधुभी नाकके ऊपर अंगुली फिराता हुआ उस स्त्री की तर्जना करके सेव वहोर लाया २, माया पिंड जैसे—आषाढ भूति मुनिने नये २ साधुके रूप बनाकर मोदक लिये ३, लोभपिंड जैसे—एक साधु मासक्षमणके पारणेमें सिंहकेसरिये मोदक देखकर धर्मलाभकी जगह सिंहकेसरिये २ ऐसा घर २ में कहते हुए फिरता हुआ देखकर एक श्रावकने घरमें बुलाकर सिंहकेसरिये मोदकोंका

थाल भरकर दिखाया, जिससे मुनिका चित्त ठिकाने आगया ४. इस प्रकार क्रोध-मान-माया और लोभ से साधुको आहार नहीं लेना. यह तेईसवीं समाचारी ॥ २३ ॥

वर्षा कालमें रहे हुए साधु-साध्वियों में से किसीके आपसमें क्लेश हुआ हो, रत्नाधिक बडे मुनि दोषवान् हों, तो भी छोटा साधु बडे साधुको खमावे, यह विधिमार्ग है, कभी शिष्य विधिका जानने वाला न हो या अहंकारी हो तो बडे मुनि शिष्यको खमावें. आप खमना, दूसरों से खमाना. आप उपशम करना, दूसरों को उपशम करवाना. किसी कारणसे गुरु आदि के साथ क्लेश हुआ हो तब राग-द्वेषको छोडकर शुद्ध भावसे क्षमत क्षामणे करना और सूत्रार्थका पूछना वगैरह विनयसे रहना. जो क्षमाकरे वह आराधक होता है, जो क्षमा नहीं करता वह आराधक नहीं होता, अर्थात्–क्रोधी साधु जिन–आज्ञाका विराधक होता है. निश्चय करके क्षमाही चारित्र धर्मका सार है. श्रावकों को भी जिस तरह उदायन राजाने चंडप्रद्योतनके साथ क्षमत क्षामणे किये थे, उसी तरह परस्पर क्षामणे करने चाहियें. उसका दृष्टांत कहते हैं—

चंपा नगरी में जन्मसे लोलपी कुमारनंदी सुनारने धन देकर सुन्दर रूप वाली पांचसौ स्त्रियोंसे पाणिग्रहण

किया, एक दिन हासा–प्रहासाका रूप देखकर मोहित हुआ, उनसे प्रार्थना की, तब वे बोलीं–तू पंचशैल आवेगा, तो तेरा मनोरथ पूर्ण होगा. ऐसा कहकर गईं, कुमारनंदीभी एकवृद्ध नाविकको करोड द्रव्य देकर नाव में बैठकर पंचशैलकी तरफ चला, समुद्रमें एक जगह जलके भ्रमरमें वट वृक्षके नीचे नाव घूमने लगी. तब वृक्षकी साखा पकडकर ऊपर चढकर वहां भारंड पक्षीके पैरं पकडकर पंचशैल द्वीपमें पंचशैल पर्वत पर गया; वहां की अधिष्ठात्री हासा-प्रहासा व्यन्तरी बोलीं–पीछा अपने घर जाकर हमारे ध्यानसे 'इंगिनीमरण' कर, जिससे हमारा पति होवेगा, ऐसा कहकर उठाकर घर पहुंचा दिया. इंगिनीमरण करने की इच्छा वाले कुमारनंदी को उसके मित्र नागिल श्रावकने मना किया, तो भी इंगिनींमरणसे मरकर पंचशैल पर्वत पर हासा-प्रहासाका पति 'विद्युनमाली' नामक देव हुआ. एकदा इन्द्रादिदेव नंदीश्वर द्वीप गये, विद्युनमाली भी हासा-प्रहासा सहित मृदंग बजाता हुआ वहां गया परन्तु बारंबार गलेमें से मृदंग उतारता हुआ, उसके पूर्वभव के मित्र नागिल श्रावक दीक्षा लेकर बारहवें देवलोकमें देव उत्पन्न हुआ था उसने देखा और बोला अरे मित्र ! तेने तुच्छ सुखके लिये जन्म हारा. अव तेरा निस्तार होनेके लिये धर्म मार्ग बतलाता हूँ–तू गोशीर्ष चन्दन की श्रीमहावीर भगवान् जीवित

स्वामीकी प्रतिमा बनाकर पूजा कर, जिससे जन्मान्तरमें तेरेको बोधिबीज की प्राप्ति होगी. तब उसने भी श्री महावीर स्वामी की प्रतिमा बनाकर पूजी और अंत समय पेटीमें बंद करके जहाज के लोगोंको देकर वीतभयपत्तन भेजी. प्रतिमाकी पेटी बाजारमें रखी, देवाधिदेवके नामसे सब मिथ्यात्वियोंने पेटी खोलने का प्रयत्न किया, परन्तु नहीं खुली. प्रभावती रानी प्रभुकी श्राविका थी उसने देवाधिदेव श्रीमहावीर स्वामीका नाम उच्चारण किया, पेटी खुल गई. प्रभावती प्रतिमाको घरमें देरासरमें स्थापित कर पूजन करने लगी. एकदा प्रभावती रानीने अपना अल्प आयुः जानकर 'मैं देवगतिमें जाऊंगी, तब आपको कष्टके समय सहायता दूंगी' ऐसा उदायन राजासे कहकर आज्ञा लेकर दीक्षा ली, बादमें उस प्रतिमाकी पूजा उदायन राजा करता था, कुब्जादासी पूजाके उपकरण जल वगैरह सामग्री लातीथी, एक समय गंधार श्रावक वहां यात्राके लिये आया, बीमार होगया, कुब्जा ने अच्छी सेवा की, तुष्टमान होकर रूप-परावर्त्तिनी १ और सौभाग्य-कारिणी २ ये दो गुटिकायें कुब्जादासी को देकर उस श्रावकने दीक्षा ली. कुब्जादासी रूपपरावर्त्तिनी गुटिका खाकर सुन्दर रूपवती हुई. राजाने ऐसी दिव्य रूपवाली देखकर पहचानी नहीं, पूछा, उसने गुटिका खानेका स्वरूप कहा, तब राजाने 'सुवर्णगुलिका'

नाम किया. दूसरी गुटिका भी चंडप्रद्योतन की मैं सौभाग्यवती होऊँ, ऐसा विचार कर खाई, चंडप्रद्योतनने भी दूसरी वैसीही चन्दनकी प्रतिमा बनवाकर, उदायन राजाके घर देरासरमें स्थापित करके, मूल प्रतिमाके साथ सुवर्ण-गुलिकाको अनलगिरी हाथीपर बैठाकर उज्जैयनी ले आया. प्रभातमें पूजाके लिये उदायन राजा देरासरमें गया, तब मूल प्रतिमा और सुवर्ण-गुलिकाको चंडप्रद्योतन हरण करके लेजानेकी मालूम हुई. उसके बाद दश मुकुट बद्ध राजाओं सहित बडी सेना लेकर उज्जैयनी पर चला. रास्तेमें उदायन राजाकी सेनाको पहले लोद्रपुर पत्तनमें, दूसरे पोकरणमें, तीसरे अजमेरके पास पुष्करमें, इन तीनों जगह प्रभावती देवीने जलकी सहायता दी. इस प्रकार उदायन राजा अनुक्रमसे मालवा देशमें आकर चंडप्रद्योतनको दूत भेज कर कहलाया कि सुवर्ण-गुलिका तुझको दी. परन्तु जीवित-स्वामीकी प्रतिमा दूतके साथ पीछे भेजो. चंडप्रद्योतनने यह सुनकर दूतको निकालदिया, युद्धके लिये तैयार हुआ, संग्राममें प्रभावती देवीकी सहायतासे उदायनराजाने चंडप्रद्योतनको जीतकर यह 'मेरी दासीका पतिहै' ऐसे लेख वाला सोनेका पट्ट उसके मस्तक पर बंधवाकर पैरोंमें सोनेकी बेडी डालकर उज्जैयनीमें अपनी आज्ञा प्रवर्त्ताकर, उस प्रतिमाको राजा उठाने लगा, प्रतिमा उठी नहीं.

वीतभयपत्तनमें उपद्रव होने वालाहै, इससे यह प्रतिमा वहां नहीं आवेगी. ऐसी देव-वाणी सुनकर प्रतिमा को वहीं रखकर चंडप्रद्योतनको साथमें लेकर अपने नगरकी तरफ चले. रास्तेमें वर्षाकाल आया. मालव देशमें कीचड़ अधिक होनेसे आगे नहीं जासके, उदायन राजा एक ऊंची जगह पर अपनी सेना सहित ठहरे. दश राजा भी अलग २ जगह ठहरे (वहां अब भी मालव देशमें दशपुर नामक नगरहै). सुख पूर्वक वर्षाकाल व्यतीत करते हुए पर्युषणा पर्व आये, उसदिन उदायन राजाने चंडप्रद्योतन के लिये भोजन तैयार करनेका रसोइयेसे कहकर आपने पौषध लिया, रसोइया चंडप्रद्योतनके पासमें आकर बोला–उदायन राजाने आज उपवास करके पौषध लियाहै, आपके लिये क्या भोजन बनावें? चंडप्रद्योतनने विचार किया आज मेरेको जहर देकर मारेगा, ऐसे भयसे पौषधका मिष (बहाना) करके बैठगया, उपवास करलिया और रसोइयेसे बोला मेरेभी आज उपवासहै. यह बात उदायन राजा सुनकर 'स्वधर्मी बंधा होवे तो मेरेको पौषध कैसे कल्पे, भयसे भी यह मेरा स्वधर्मी हुआहै' ऐसा विचार कर पौषधशालासे उठकर, बेड़ी तुड़ाकर, आपसमें क्रोध भावके क्षमत क्षामणे कर मिच्छामि दुक्कडं देकर, साथमें संवत्सरी प्रतिक्रमण करके, प्रभातमें पारणा करवाकर उज्जैयनी

नगरी भेज दिया. इसी प्रकार पर्युषणा पर्व आनेसे साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविकाओंको आपसमें शुद्ध भावसे क्षमत क्षामणे करने चाहियें. यह चौवीसवीं समाचारी ॥ २४ ॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको तीन उपाश्रय रखने कल्पते हैं, जिस उपाश्रयमें ठहरे हों उसमें प्रातःकाल १, गौचरीके समय २, मध्यान्ह ३, और तीसरे प्रहर ४, ऐसे चारवार चौमासेमें प्रमार्जना करनी. शीत व उष्ण कालमें मध्यान्ह विना तीनवार प्रमार्जना करनी, यह विधि निर्जीव उपाश्रयकी है परन्तु जीवाकुल उपाश्रयमें तो बारंवार पडिलेहणा-प्रमार्जना करनी चाहिये और दूसरे दो उपाश्रयों में भी हमेशा दृष्टि पडिलेहणा करनी, तीसरे दिन दंडासनसे प्रमार्जना करनी. यह पच्चीसवीं समाचारी ॥ २५ ॥

चौमासेमें रहे हुए साधु–साध्वियोंको किसी दिशा अथवा विदिशामें गौचरी वगैरहको जाना हो तो गुरु आदिसे कहकर जाना कल्पे. जिस दिशा-विदिशामें जावें उसका नाम मुनियोंसे कह देना चाहिये, इसका कारण कहते हैंः–बहुत करके वर्षाकालमें श्रमण भगवंत साधु-मुनि तपस्या करके दुर्बल होते हैं इसलिये यदि कहीं पर थककर बैठजावें या गिरजावें अथवा मुर्च्छित होजावें तो जो दिशा बतला कर गये हों तो उस दिशामें

तपस्वी मुनिकी तपास होसके. यह छब्बीसवीं समाचारी ॥ २६ ॥ वर्षाकालमें साधु-साध्वियोंको रोगी आदि साधुके लिये वस्त्र, औषध, पथ्य, वैद्य-चिकित्सादिके लिये चार पांच योजन तक जाना आना कल्पताहै, वहां जबतक कार्य्य हो तबतक ठहरें, कार्य्य होने बाद उस रात्रिको भी वहां पर रहना नहीं कल्पे, वहां से कोस दो कोस चलकर बीचमें रहें, परंतु वहां रहना नहीं कल्पे. यह सत्ताईसवीं समाचारी ॥ २७ ॥

अब अट्ठाईसवीं साधु-धर्म समाचारी कहते हैं:—साधु धर्ममें उपशमही सारहै, जो जानते या अजानते कुछ दोष लगा हो उनका निशल्य होकर मिच्छामि दुक्कडं देना. जिसतरह—मृगावती साध्वीने चंदनबाला साध्वीके पैरों में पडकर मिच्छामि दुक्कडं देती हुई केवलज्ञान उत्पन्न किया, इसीतरह मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये. परंतु कुम्हार और लघु शिष्यने जैसा मिच्छामि दुक्कडं दिया, वैसा मिच्छामि दुक्कडं नहीं देना, इसमें कुछ कार्य सिद्धि नहीं होती. और सासु-जमाईके विवादमें घी-क्षीरके परस्पर मिलाप हुआ, उसका यहां पर लौकिक दृष्टांत बतलाते हैं:—एक जमाई सासुके घर बहुत दिनोंसे लडाई मिटानेको आया, सासुने क्षीर बनाई, जमाईको भोजन करनेको बैठाया, खांड सहित क्षीर परोसी, घी मेंहंगा होनेसे घरमें था, तो भी नहीं परोसा, घी दुकानसे ले आऊं

ऐसा कह कर गई. पीछेसे जमाईने छींके पर जमे हुए घीकी रखी हुई हंडिया देखी, उसको तपाकर पीछी रखदी और विचार किया सासु कृपणहै, घी घरमें है तो भी लेनेको गई है. सासु आकर बोली दुकानमें घी नहीं मिला, जमाई बोला—हे सासुजी ! थोडा बिंदुमात्रभी घी की हंडियामें घी होतो डालो, लूखेका दोष मिटाओ, ऐसा कहनेसे सासुने जमे हुए घी के भरोसे, इसमें कहां है, ऐसा कहती हुई जमाईकी क्षीरकी थाली पर हंडिया उल्टी करदी, सब घी गिर गया, यह देखकर सासु बोली—जमाई पुत्रके समान होते हैं. इसलिये मैं भी आज आपके साथ भोजन करूंगी, जमाई बोला बहुत अच्छा. तब सासु साथमें भोजन करती हुई अपनी तरफ घी लानेको बोली—आपने उस दिन मेरी पुत्रीको पीटी, अमुक दिन गालियें दीं, उस दिन रक्त वस्त्र मांगा सो भी नहीं दिया और आप होलीको, अक्षयतीजको, दिवालीको नहीं आये, ऐसा कहती हुई क्षीरमें अंगुलियोंसे बारंबार रेखा करती हुई घीको अपनी तरफ खींचती हुई देखकर जमाई भी धूर्त्ताई करके सासु से बोला पहले किया सो सब भूल जाओ 'आजसे अलिया गलिया' ऐसा कहकर हाथसे क्षीरमें घी मिलाकर बोला जो मेरे बचन पर विश्वास नहीं है तो मैं तुम्हारे सामने कौश पी जाऊँ, ऐसा कहकर सब क्षीर पी गया. यह लौकिक दृष्टांतमें

जैसे—सासु-जमाईके विवादमें घी क्षीरका परस्पर मिलाप हुआ, वैसेही धर्ममें भी सर्व प्रकारके विरोध भूलकर मिलाप कर लेना चाहिये. ऐसा विचार कर पर्युषणा पर्वमें विशेष करके कषायोंका त्याग करना और अच्चंकारी भट्टा वगैरहके दृष्टांत सुनकर कषायरूपी शल्य बिलकुल नहीं रखना. यह पर्युषणा समाचारी कही.

अब इसका फल कहते हैंः—स्थविर कल्पी साधु-साध्वियोंको हमेशा इस प्रकार संयमका पालन करना चाहिये. यद्यपि जिन कल्पियोंकाभी कुछ आचार बतायाहै, तोभी स्थविर कल्पी साधुओंका विशेष आचार बतलायाहै, उसी प्रकार यथायोग्य मर्यादा सहित, मोक्ष मार्ग साधनरूप, तत्त्वस्वरूप ज्ञान पूर्वक भगवान्‌की आज्ञानुसार मन, बचन, कायासे जावजीव तक अच्छी तरह शुद्ध श्रद्धासे संयमका आराधन करनेवाले, दूसरोंको उपदेश देकर यथोक्त विधिसे आराधना करवाने वाले, अपने दोषोंकी शुद्धि करनेवाले बहुतसे साधु—साध्वी संसारसे तीर प्राप्त होते हैं; अर्थात्—उसी भवमें सिद्ध होते हैं, केवलज्ञान पाते हैं, कर्म बंधनोंसे छूटतेहैं, सर्व प्रकारसे कर्मरूप ताप जानेसे शीतलता पाते हैं, अधिक क्या कहना—सर्व इंद्रिय व मन संबंधी दुःखोंका अंत करते हैं, कदाचित् कई उस भवमें मोक्ष नहीं जासकें तो दूसरे भवमें मोक्ष जातेहैं, कितनेही तीसरे भवमें सिद्ध बुद्ध

होते हैं परंतु सात-आठ मनुष्योंका भव उल्लंघन नहीं कर सकते, अर्थात्—शुद्ध संयम पालन करनेवाले उत्कृष्ट सात-आठ भवोंमें अवश्यही मोक्ष जातेहैं. यह साधु-धर्मस्वरूप अट्ठाईसवीं समाचारी ॥ २८ ॥

यह अधिकार भगवान्के कथनानुसार भद्रबाहुस्वामीने कहाहै सो बतलातेहैं:—तिसकाल तिससमयमें श्रमण भगवान् श्रीमहावीर स्वामीने राजगृह नगरमें, गुणाशिलचैत्यमें, समोवसरणमें, बहुत साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, देव और देवियोंकी बडी पर्षदामें बचन योग्यसे कल्प आराधनका फल दिखाकर पर्युषणा कल्प नामक अध्ययनकी प्ररूपणा की. वह सूत्र सहित, अर्थ सहित, एक महीना बीस दिन जानेसे पर्युषणा करने इत्यादि प्रयोजन सहित, उत्सर्गसे लोचही करना, शिरमें तकलीफ हो तो अपवादसे मुंडन कराना इत्यादि उत्सर्ग—अपवाद सहित, व्याकरण प्रश्नोत्तर-सहित, भूलनेके स्वभाव वाले शिष्यों पर कृपा करके ऐसा बारंबार उपदेश दिया. जैसे श्रीमहावीर स्वामीने गणधरादिको उपदेश दिया, वैसेही कल्पसूत्र नामक सूत्रकी रचना करके श्रीभद्रबाहु स्वामीने चतुर्विध संघके आगे उपदेश दिया. इसी प्रकार पूर्वाचार्योंकी परंपरानुसार हमने भी श्रीगुरु महाराजके प्रसादसे यथाबुद्धि श्रीसंघके आगे मंगलके लिये श्री कल्पसूत्रको तीन अधिकार सहित

वांचकर सुनायाहै. इसमें मूलसूत्र, काना, मात्रा, अक्षर, अर्थ ज्यादा कम कहनेसे जो दोष लगाहो उसका संघके समक्ष मिच्छामि दुक्कडं हो. संघको भी श्री कल्पसूत्र सुनते समय पर्वके दिनोंमें निद्रा, विकथा या प्रमादसे अभक्ति, आशातनाका दोष लगा हो उसका मन, वचन, कायासे मिच्छामि दुक्कडं देना चाहिये. इस पर्वमें बहुतसे भव्यजीव दान देते हैं, शील पालते हैं, तप करते हैं, जिनपूजा भक्ति करते हैं, कई स्वधर्मियोंका वात्सल्य, प्रभावना आदि करते हैं और कई भावना भाते हैं ये सर्व कार्य्य मुक्ति देने वाले होते हैं ॥ इति शुभं ॥

श्रीकल्पसूत्रवरनाममहागमस्य, गुढार्थभावसहितस्यगुणाकरस्य ।
लक्ष्मीनिधेर्विहितवल्लभकामितस्य, व्याख्यानमाप नवमं परिपूर्त्तिभावम् ॥९॥

सर्व मंगल मांगल्यं, सर्व कल्याण कारणं । प्रधानं सर्व धर्माणां, जैनं जयति शासनम् ॥ १ ॥

॥ साधु समाचारी नामक नवम व्याख्यान संपूर्ण ॥ ९ ॥

॥ इति श्री कल्पसूत्रकी लक्ष्मीवल्लभगणि विरचित कल्पद्रुम कलिका नामक टीकाका हिंदी भाषांतर समाप्त ॥

॥ श्री कल्पसूत्र (हिन्दी भावार्थ) संपूर्ण ॥